WWW.GRADESETTER.COM

आर्थिक एवं सामाजिक विकास

[नोट: आर्थिक एवं सामाजिक विकास के इस भाग को इस पुस्तक के 'राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय महत्व की समसामयिक घटनाएं' खण्ड के अंतर्गत उल्लिखित भारतीय अर्थव्यवस्था में नवीनतम प्रगति के परिप्रेक्ष्य में पढ़ें।]

1. अर्थशास्त्र, अर्थव्यवस्था एवं विकास

अर्थशास्त्र क्या है?

नियंत्रि अनुसार, अर्थशास्त्र वस्तुओं के उत्पादन व उपभोग तथा समाज
उद्यम विधियों के विश्लेषण से संबंधित विषय है। पर इस एल. रोबिन्सन
एक रीति हुए कहते हैं कि, "अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो मानव
... वैकल्पिक साधनों एवं उनके उद्देश्यों के मध्य सह-संबंधों
है।"

अर्थशास्त्र वस्तुओं के चयन का अध्ययन है तथा इसमें सीमित
स्वा ... चित उपयोग करने का अध्ययन किया जाता है। यह चयन व्यक्तियों
क्या, ... र भिन्न-भिन्न हो सकता है। प्रो. पॉल सेम्युलसन भारत में गायों
स्थापि ... स्पष्ट करते हैं कि, "भारत में गायों की भारी संख्या में उपलब्धता
का खत ... भोजन/प्रोटीन के घटक के रूप में उपयोग में नहीं लाया जाता
... पवित्र माना जाता है"। अतः सर्वसम्मत परिभाषा के अनुसार,
तरह पूंजी ... उपयोगों के चयन का अध्ययन है, जिसमें दुर्लभ उत्पादन
है। मिश्रित ... श्यों की पूर्ति हेतु तैयार किया जाता है। इन अभीष्ट उद्देश्यों
होता है (... ओं एवं सेवाओं का उत्पादन किया जाए? इन वस्तुओं एवं
निजी क्षे ... किनके लिए किया जाए? आदि विषय शामिल हैं।

अर्थव्यव ... निष्कर्ष निकालने हेतु जब रेखा गणितीय आकलन विधियों का
जाता है, तो यह अन्य सामाजिक/व्यावहारिक विज्ञानों के समीप प्रतीत
होता है; यह और वैज्ञानिक बन जाता है जब इसमें सांख्यिकी की आकलन विधि
वे प्रायो ... क तर्क विधि का प्रयोग किया जाता है। तथापि, अर्थशास्त्र को अन्य विज्ञानों
के साथ ... क धरातल पर रखना असंगत होगा क्योंकि इसे प्रयोगों के कठोर नियमों
में नि ... त नहीं किया जा सकता। अर्थशास्त्र एक यथार्थ विज्ञान नहीं है; इसके
सिद्धा ... दैव प्रामाणिक आवर्ती नहीं होते हैं। कई बार तो इसके सिद्धांत अनुमानों
पर ... रित होते हैं तथा सत्य से बहुत दूर होते हैं। इन सबके बावजूद भी अर्थशास्त्री
... व संस्थानिक स्तर पर नीति-निर्णायक विषयों में सहायता प्रदान करते हैं।
राष्ट्र ... अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अर्थशास्त्री सरकारों कई विभिन्न कार्यक्रमों को
... करने के लिए नीतियां तैयार करते हैं तथा कई निर्णयों के परिणामों को
... करने में सहायता प्रदान करते हैं ताकि भविष्य में निर्णय लेने के लिए
... अनुमान लगाये जा सकें।

... गतिविधियां

अर्थ ... में कुछ मूलभूत अवधारणाएं हैं। उदाहरण के लिए, सारी गतिविधियां
आ ... गतिविधियां नहीं हैं। इस प्रकार वे कानून सम्मत गतिविधियां, जिनके
परिवरूप वस्तुओं का उत्पादन होता है तथा जिनके लिए कोई व्यक्ति या
सं ... प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से मूल्य चुकाने हेतु तैयार रहते हैं, आर्थिक गतिविधियां
क ... हैं। इस गतिविधि से आय का निर्माण होता है जो वास्तव में विभिन्न
व्य ... द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन हेतु उपयोग में लाई जाती है।

वस्तुएं एवं सेवाएं: एक आर्थिक वस्तु से अभिप्राय किसी भौतिक वस्तु से
है, ... प्राकृतिक या मानवनिर्मित हो सकती है तथा जिसका बाजार में मूल्य होता
है; दूसरी ओर, सेवाओं (बैंकिंग व चिकित्सा) से तात्पर्य उन आर्थिक वस्तुओं
से अहस्तांतरणीय व अस्पृश्य हैं तथा जिनके उपयोग के लिए व्यक्ति को मूल्य
चुकाना पड़ता है। गैर-आर्थिक वस्तुएं वे हैं जिनके लिए लोगों को राशि का भुगतान
नहीं करना पड़ता है, जैसे—पंखे की अपेक्षा प्राकृतिक हवा आदि।
... वस्तुएं, उपभोग की वस्तुएं हो सकती हैं, जैसे—मिठाई, कपड़े या पूंजीगत वस्तु
... मशीन, तथा प्रिंटिंग प्रेस। पूंजीगत वस्तुओं का उपयोग अन्य सेवाओं व

वस्तुओं के उत्पादन हेतु किया जाता है। वस्तुओं को टिकाऊ व गैर-टिकाऊ की श्रेणी में वर्गीकृत किया जा सकता है। इस प्रकार यदि फल व सब्जियां उपभोग के लिए गैर-टिकाऊ वस्तुएं हैं, तो कुछ किस्म के रसायन भी गैर-टिकाऊ पूंजीगत वस्तुएं हैं। इसके उदाहरण, पेन, कपड़े धोने की मशीन, व रेफ्रीजरेटर हैं। अधिकांश पूंजीगत वस्तुएं टिकाऊ होती हैं।

मूल्य: वस्तुएं व सेवाएं मानव मांग की पूर्ति हेतु उत्पादित/उपलब्ध की जाती हैं। जैसा कि ज्ञातव्य है कि, मानव इच्छाओं की कोई सीमा नहीं है, तो उन्हें स्वाभाविक (खाना) तथा पूरक (मनोरंजन, उच्च शिक्षा) के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है। उपयोगिता के रूप में 'मूल्य' विभिन्न मांगों की पूर्ति की प्रवीणता है। विनिमय के संदर्भ में 'मूल्य' वह है जो वस्तुओं व सेवाओं के विनिमय से प्राप्त होता है। धन के संदर्भ में 'मूल्य' वस्तुओं व सेवाओं के बदले किया गया भुगतान है। मूल्य उपयोगिता से संबंधित है, इसका एक स्पष्ट उदाहरण जेमस्टोन (Gemstone) का पेपर वेट, काटने वाले औजार तथा आभूषण के रूप में उपयोग किया जाना है—यहां प्रत्येक चरण में इसका मूल्य बढ़ता जाता है।

उत्पादक: मूलभूत रूप से उत्पादक तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम वे जो खाद्य पदार्थ या अन्य फसलों तथा वानिकी उत्पादन से संबंधित हैं इन्हें प्राकृतिक उत्पादन भी कह सकते हैं। खदानों से पत्थर, खानों से खनिज आदि प्राथमिक उत्पादक कहलाते हैं। ऐतिहासिक रूप से भी ये मानव की प्रारंभिक उत्पाद संबंधी गतिविधियां थीं। द्वितीय प्रकार के उत्पादकों में वे उत्पादक आते हैं जो विभिन्न उद्योगों में कच्चे माल द्वारा वस्तुओं के निर्माण में संलग्न हैं। ये मानवनिर्मित वस्तुएं होती हैं तथा इस रूप में प्रकृति में नहीं पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए, प्राथमिक क्षेत्र द्वारा उत्पादित कपास से सूती कपड़ों व धागों का निर्माण। तृतीय प्रकार के उत्पादक तृतीयक उत्पादक कहलाते हैं। यह क्षेत्र वास्तव में वस्तुओं की बजाय सेवाएं उपलब्ध कराता है। इनके अंतर्गत परिवहन, बैंकिंग, बीमा, शैक्षिक सेवाएं तथा उत्पादन की वृद्धि हेतु नवीन व अधिक क्षमतावान उपायों के लिए अनुसंधान की गतिविधियां आदि शामिल हैं। इन सेवाओं से अन्य आर्थिक गतिविधियों को सहयोग प्राप्त होता है।

उपभोक्ता: इतिहास के प्रारंभिक चरणों में उत्पादक व उपभोक्ता दोनों का एक ही पक्ष था। लोग अपने उपभोग मात्र के लिए उत्पादन करते थे। विशिष्टीकरण के परिणामस्वरूप वस्तुओं के आदान-प्रदान करने की व्यवस्था अस्तित्व में आई। प्रथम स्तर के इस प्रकार के आदान-प्रदान में एक वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु ली जाती थी—इस प्रकार की व्यवस्था को वस्तु-विनिमय कहा जाता था। धीरे-धीरे विनिमय के माध्यम के विचार के विषय में प्रगति हुई। मुद्रा का प्रचलन होने लगा तथा उत्पादकों को विक्रेता एवं क्रेता को उपभोक्ता कहा जाने लगा। इस प्रकार बाजारों का उद्भव हुआ जहां उत्पादक अपने उत्पादों को बेचता था तथा उपभोक्ता उन्हें अपनी मांगों की पूर्ति करने के लिए खरीदता था। यह स्वाभाविक है कि उत्पादक किसी-न-किसी स्तर पर अपनी उत्पादित वस्तुओं और अन्य की उत्पादित वस्तुओं का उपभोक्ता भी होता है।

विभिन्न आर्थिक व्यवस्थाएं

वह विस्तृत संरचना या व्यवस्था, जिसके अंतर्गत आर्थिक गतिविधियां नियोजित की जाती हैं, आर्थिक व्यवस्था या अर्थशास्त्र कहलाती है। प्राचीन अर्थव्यवस्था में अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए एक व्यक्ति द्वारा अपने व्यक्तिगत संसाधनों का उपयोग किया जाता था। जीवन निर्वाह वाली अर्थव्यवस्था में एक किसान द्वारा मात्र अपने परिवार के निर्वाह हेतु उत्पादन किया जाता है। यह सरल प्रक्रिया वर्तमान विश्व में अप्रभावी होगी, जहां "क्या उत्पादन किया जाए?" अप्रत्यक्ष रूप से वास्तविक

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

उपभोक्ता के निर्णयाधीन है। वस्तुओं का उपभोग व सेवाओं का उपयोग करने वाली 'इकाई' परिवार, श्रम आदि उत्पादक संसाधनों की पूर्ति करती है। दूसरी तरफ संस्थाएं (कंपनियां) हैं जो क्या उत्पादन किया जाए? जैसे विषयों पर निर्णय लेती हैं तथा उसी के अनुसार संसाधनों का उपयोग करती हैं। इस प्रकार यदि सीमित संसाधनों से उच्चतम संतुष्टि प्राप्त करनी है तो कंपनियों व घरेलू क्षेत्र के मध्य तालमेल होना आवश्यक है। दोनों के मध्य जिन विषयों पर विचार किया जाता है, उनमें प्रमुख हैं—किन वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन किया जाए? उन्हें किस प्रकार उत्पादित किया जाए? कितनी मात्रा में उत्पादित किया जाए तथा घरेलू क्षेत्र में उन्हें किस प्रकार वितरित किया जाए? इस प्रकार आर्थिक व्यवस्था घरेलू व संस्थागत क्षेत्रों के मध्य अंतर्संबंधों का निर्माण करती है तथा इस संदर्भ में विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों की व्याख्या करती है।

यह उल्लेखनीय है कि, चाहे किसी भी प्रकार की अर्थव्यवस्था हो पर क्या व कितना उत्पादन किया जाए जैसे आधारभूत सिद्धांत सदैव उपस्थित रहते हैं। उत्पादक को सदैव उत्पादन प्रक्रिया प्रारंभ करने से पूर्व उत्पादन कारकों की उपलब्धता को सुनिश्चित करना होता है। इन कारकों में तकनीक, कार्य-कुशलता, कच्चा माल व अन्य संसाधन शामिल हैं। उत्पादक या निर्माता को सदैव अपने उत्पादन लागत को ध्यान में रखते हुए अपने सर्वोत्तम निर्गतों का आकलन करना होता है। इसके अतिरिक्त उसे मांग का अनुमान लगाना होता है तथा उत्पादित वस्तुओं के लिए मूल्य निर्धारित करते हुए यह सुनिश्चित करना होता है कि उसे लाभ प्राप्त हो सके।

किस प्रकार उत्पादन किया जाए, की प्रक्रिया जानने के अतिरिक्त उत्पादन-कर्ता को यह भी निर्णय करना होता है कि वह विभिन्न संसाधनों—श्रम, यंत्रों व कच्चा माल आदि, का किस प्रकार समुचित उपयोग करे ताकि कम-से-कम लागत में वस्तु का उत्पादन हो सके। उस स्थिति को संसाधनों का कुशलतम उपयोग माना जाता है, जब उत्पादक अधिकतम लाभार्जन करता है पर, आर्थिक गतिविधियों का एकमात्र उद्देश्य धनोपार्जन व लाभ प्राप्ति नहीं होना चाहिए।

पूंजीवादी या मुक्त अर्थव्यवस्थाः वस्तु विनिमय में धन के उपयोग के पश्चात् वस्तु का मूल्य निर्धारित किया जाने लगा तथा उसका विक्रय किया जाने लगा। जीवन निर्वाहक अर्थव्यवस्था बाजार अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गई। बाजार अर्थव्यवस्था में व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बल दिया गया है, चाहे वह उपभोक्ता हो या कम्पनी या संस्था का स्वामी। प्रायः बाजार अर्थव्यवस्था को पूंजीवाद के समान माना जाता है क्योंकि इसमें उत्पादक का उत्पादन साधनों पर पूर्ण स्वामित्व होता है तथा उत्पादक को अधिकतम लाभार्जन की स्वतंत्रता होती है। पूंजी भौतिक संपत्तियां हो सकती हैं। ये भौतिक संपत्तियां भूमि, इमारतें, मशीनों या कंपनियों के स्वामित्व व संचालन हेतु अन्य वित्तीय संपत्तियां हो सकती हैं। मूल्य संरचना संसाधनों के अन्य मुद्दों का वितरण करता है।

उपभोक्ता द्वारा वस्तु की मांग की तीव्रता का अनुमान उसके द्वारा उपभोग्य वस्तु के बदले में धन की मात्रा देने को तैयार रहने से लगाया जा सकता है। यदि वर्तमान मूल्य पर आपूर्ति की जा रही वस्तु के बाद भी उसकी मांग में वृद्धि होती है तो वस्तु के मूल्य में भी वृद्धि होती है। इसके परिणामस्वरूप कम्पनी का अधिक लाभ होता है तथा उत्पादक कारकों को भी अधिक धनोपार्जन (कमाई) होती है। अतः उद्योग में संसाधनों की वृद्धि की जाती है तथा आपूर्ति को और अधिक बढ़ाया जाता है। दूसरी ओर यदि उपभोक्ता की मांग में कमी आती है तो वस्तु के मूल्य में भी कमी आ जाती है, इस स्थिति में कम्पनी को हानि होती है अतः उद्योग से संसाधनों को हटा दिया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि, उपभोक्ता की इच्छाओं का प्रकटन मूल्य व्यवस्था द्वारा प्राप्त किया जाता है तथा समाज के उत्पादक संसाधनों को तद्नुसार निश्चित किया जाता है। बाजार अर्थव्यवस्था में पूर्व उल्लिखित मुद्दों को बाजार में लोगों के निर्णय के अनुसार सुलझाया जाता है।

बाजार अर्थव्यवस्था सैद्धांतिक रूप से जितनी सरल प्रतीत होती है वास्तव में उतनी सरल नहीं है।

बाजार अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्द्धा, जिस पर बाजार अर्थव्यवस्था आधारित है, की समाप्ति की आशंकाएं होती हैं। उदाहरणस्वरूप, यदि समाज में किसी विशेष प्रकार के श्रम पर किसी एक नियोक्ता या व्यापारी का वर्चस्व हो तो वह अपनी इस स्थिति का भरपूर लाभ उठाते हुए अपने कर्मियों को भिन्न-भिन्न वेतन दे सकता है पर, सरकार इस विषय पर कर्मियों को न्यूनतम निश्चित वेतन कर सकती है। इसी तरह, बाजार में मात्र एक विक्रेता की उप[illegible] को निरुत्साहित कर सकती हैं, परिणामस्वरूप उपभोक्ता की[illegible] तथा वह कोई चयन नहीं कर पाएगा।

इसके अतिरिक्त कुछ सामुदायिक महत्व की सेवाएं हैं[illegible] रक्षा, पुलिस, तथा न्याय सेवाएं सम्मिलित हैं। इन सेवाओं[illegible] मूल्य' निर्धारित करना अव्यवहारिक होगा।

कई अवसरों पर तो प्रतिस्पर्द्धा स्वयं अक्षमता व अकुशल[illegible] है। उच्च पैमाने पर मिलने वाले उत्पादन का लाभ लघु[illegible] कभी-कभी ही प्राप्त होता है। प्रतिस्पर्द्धात्मक विज्ञापन व नकल वि[illegible] संसाधनों की बरबादी ही है[illegible]स्तव में विज्ञापन की आधिक[illegible] के चयन को परिवर्तित कर देता है। जिस व्यवस्था में नि[illegible] उद्देश्य हो उसमें समाज का हित सुनिश्चित नहीं होता है। कभी-कभी भी इसका लाभ प्राप्त हो सकता है, जैसे—एक विक्रय केंद्र उपभोक्ताओं[illegible] करने के लिए 'कार पार्क' का निर्माण करता है तो यह जन-साधार[illegible] वाहनों के जमघट द्वारा उत्पन्न समस्या को भी दूर करता है। एक का[illegible] अपने कारखाने की चिमनियों से निकलने वाली हानिकारक गैसों[illegible] नहीं करता है जबकि कारखाने के आस-पास का समाज निश्[illegible] दुष्प्रभावित होता है। मात्र लाभ प्राप्ति के उद्देश्य के कारण उप[illegible] उपयोग में नहीं लाये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त धनी वर्ग के[illegible] में सर्वाधिक प्रभाव होता है। इस प्रभाव के कारण संसाधनों[illegible] की आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन की बजाय धनी वर्ग हेतु[illegible] के उत्पादन के लिए किया जा सकता है।

बाजार अर्थव्यवस्था से धन व आय के असमान वितरण[illegible] हो जाती है। वास्तव में लाभ प्राप्ति का उद्देश्य कार्यक्षमता को ग[illegible] उत्पादित वस्तुओं को उनके स्वामियों द्वारा संभावित उच्च मूल्य[illegible] तथा निर्माता कम्पनियां उत्पादन के लिए कम-से-कम लागत लगाकर अधिक-से-[illegible] लाभार्जन करना चाहती हैं। इसके अतिरिक्त, उपार्जन (earning) का[illegible] उत्पादित वस्तुओं के खरीददार का निर्धारण करता है—यदि कम्पनी अच्छी व[illegible] का उत्पादन करती है या कार्यक्षमता में सुधार करती है या कर्मचारियों द्वारा अ[illegible] कुशलतापूर्वक कार्य किए जाने पर उन्हें पुरस्कृत करती है, जिससे उनकी क्रय[illegible] में वृद्धि होती है। इस प्रकार स्पष्टतया मूल्य व्यवस्था प्रमुख नियामक है जो वि[illegible] वस्तुओं के लिए उपभोक्ता की वरीयताओं/चुनावों को दर्ज करता है, इन वरी[illegible] को वह कम्पनी को सूचित करता है ताकि वे उस वस्तु विशेष के उत्पादन हेतु सं[illegible] को उपयोग में लाएं तथा वस्तुओं के अंतिम ग्राहक का निर्णय करे।

समाजवादी अर्थव्यवस्थाः समाजवादी अर्थव्यवस्था में योजना निर्माण[illegible] प्रत्येक निर्णय एक प्रभुत्वशाली समूह द्वारा लिया जाता है जिनमें क्या, कि[illegible] व किस प्रकार तथा किसके लिए उत्पादन किया जाये? आदि विषय शामिल[illegible] हैं। यह केंद्रीय प्राधिकरण लोगों की मांग के संदर्भ में वस्तुओं के वितरण[illegible] अनुमान लगाता है। यह वस्तुओं के उत्पादन के लिए संशाधनों को निर्देशित[illegible] है तथा बाद में यह निर्णय लेता है कि वस्तुओं का वितरण किस प्रकार[illegible] जाये? वस्तुओं के वितरण के संबंध में "प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानु[illegible] नीति पर बल दिया जाता है न कि उसके द्वारा भुगतान की क्षमता पर। अर्थव्य[illegible] की कुशलता मांगों का शुद्ध अनुमान लगाना तथा इस संदर्भ में संसाधनों के [illegible] करने पर निर्भर है। एक समाजवादी अर्थव्यवस्था निर्देशित अर्थव्यवस्था है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में जहां कई गुण हैं वहीं बाजार अर्थव्यवस्था की[illegible] कुछ दोष भी हैं। योजना बनाने वाली प्रभुत्वशाली केंद्रीय संस्था यह देख सकती[illegible] कि समाज में संसाधनों का समान वितरण हो रहा है या नहीं। यह प्रतिस्पर्द्धा के प्र[illegible] को समाप्त कर सकती है तथा लाभ प्राप्ति के उद्देश्यों से सर्वथा मुक्त रहती है[illegible] प्रकार यह अपनी एकाधिकारी शक्तियों का प्रयोग समाज के कल्याण के लिए[illegible] पैमाने पर उत्पादन करने के लिए करती है। यह केंद्रीय संस्था धन के असमान वि[illegible] की अनुमति प्रदान कर सकती है। यह श्रमिकों को रोजगार प्रदान करने के[illegible] से भी नियुक्त कर सकती है, इस प्रकार की व्यवस्था साधारण तौर पर लाभ[illegible] नहीं होती है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

समाजवादी अर्थव्यवस्था किसी भी प्रकार से एक पूर्ण अर्थव्यवस्था नहीं है क्योंकि उपभोक्ताओं की संतुष्टि मापने का कोई स्पष्ट पैमाना नहीं है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में निर्णय लेने के लिए बहुत सारे अधिकारियों को शामिल किया जाता है जिससे लाइसेंसीकरण, आवेदन भरने व लालफीताशाही जैसी नौकरशाही गतिविधियों में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त निर्णय लेने की गति बहुत धीमी होती है। इसके अतिरिक्त बहुत अधिक अधिकारियों को शामिल करने से भ्रष्टाचार की आशंका भी होती है।

यह भी उल्लेखनीय है कि, संसाधनों पर शासन के स्वामित्व से व्यक्तिगत उत्प्रेरणाओं में कमी आएगी व व्यक्तिगत प्रयासों व पहलों पर दुष्प्रभाव पड़ेगा। नियंत्रित श्रम से लोगों में कार्य के प्रति असंतुष्टता बढ़ेगी तथा उत्पादन का स्तर निजी उद्यमी के उत्पादन से भी कम हो सकता है।

एक केंद्रीकृत योजना संस्था में लोगों के लिए क्या उत्पादन किया जाये, कितना उत्पादन किया जाये तथा उसे कैसे वितरित किया जाये? आदि विषयों के निर्धारण हेतु नेतागण उत्तरदायी होते हैं। इस स्थिति में समन्वय की कठिनाइयां उत्पन्न होना अवश्यंभावी है व अर्थव्यवस्थाओं के लिए सामान्यतः समाज के लिए राजनैतिक निहित स्वार्थ सदैव अच्छे नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त एक बार जब कोई संस्था या दल क्या, किसके तथा कितना जैसे मामलों पर तथा उत्पादन के सभी कारकों पर नियंत्रण स्थापित कर लेता है तो इससे राजनीति के सहारे तानाशाही व्यवस्था उत्पन्न होने का खतरा हो जाता है।

- **मिश्रित अर्थव्यवस्थाः** यह आवश्यक नहीं है कि एक अर्थव्यवस्था सदैव पूरी तरह पूंजीवादी व पूरी तरह समाजवादी हो, यह एक मिश्रित अर्थव्यवस्था हो सकती है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में कुछ महत्वपूर्ण उद्योगों का स्वामित्व शासन के हाथों में होता है (जैसा कि समाजवादी व निर्देशित अर्थव्यवस्था में) तथा अन्य उद्योगों को निजी क्षेत्रों के स्वामित्व हेतु छोड़ दिया जाता है (बाज़ार अर्थव्यवस्था व पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की भांति)। शासन के स्वामित्व वाले उद्यमों को 'सार्वजनिक क्षेत्र' कहा जाता है, क्योंकि उनके लिए पूंजी जनता से ग्रहण की जाती है। इन सार्वजनिक क्षेत्रों की नीतियां सरकार द्वारा बनाई जाती हैं या कम-से-कम सरकार की विचारधारा द्वारा प्रभावित होती हैं। निजी क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले संस्थानों का स्वामित्व व्यक्तियों के हाथों में होता है, पर निजी उद्यमियों को भी सरकार द्वारा जनहित में बनाये गए कुछ कानूनों व नियमों का पालन करना होता है। वास्तव में यदि किसी नियम व कानून की व्यवस्था नहीं हुई तो प्रबल बाजार अर्थव्यवस्था में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

निजी व सार्वजनिक क्षेत्रों के अतिरिक्त संयुक्त क्षेत्र के उद्योग भी हो सकते हैं, जिनका स्वामित्व संयुक्त रूप से निजी शेयर धारकों व सरकार या सार्वजनिक क्षेत्रों के पास होता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्था का स्पष्ट उदाहरण है। भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि, कुछ सार्वजनिक क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयां भी उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करती हैं जिनका उत्पादन निजी क्षेत्र की इकाइयों द्वारा किया जाता है, उदाहरण के रूप में, स्टील, घड़ियां, रसायन तथा टैक्सटाइल उद्योग हैं। जहां एक ओर यह तर्क दिया जाता है कि, मिश्रित अर्थव्यवस्था में दोनों क्षेत्रों के मध्य स्वस्थ प्रतिस्पर्धा से क्षमता व कुशलता में वृद्धि होती है वहीं दूसरी ओर कहा जाता है कि, इससे अनावश्यक रूप से नकली वस्तुओं के निर्माण में संसाधनों की बरबादी होती है। यह कहा जाता है कि, सरकार को आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र के उन आधारभूत संरचना वाले क्षेत्र के उद्योगों के लिए सार्वजनिक संसाधनों पर ध्यान देना चाहिए, जिनके लिए निजी क्षेत्र के उद्यमी प्रवृत्त नहीं होते हैं या चलाने में असमर्थ होते हैं।

आर्थिक उदारीकरण के इस दौर में भारत सरकार धीरे-धीरे अर्थव्यवस्था के कई क्षेत्रों को अपनी पकड़ से मुक्त कर रही है ताकि वह केवल सार्वजनिक कल्याण की गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित कर सके।

राज्य की भूमिका

एक देश अर्थव्यवस्था में निम्नलिखित भूमिका निभाता है–

(i) राज्य नियामक की भूमिका अदा करता है जिसके अंतर्गत वह विभिन्न समूहों, वर्गों, हित समूहों, लोगों के हितों की अधिकतम अभिवृद्धि के लिए आर्थिक नीतियों का कार्यान्वयन कराता है।

(ii) राज्य एक उद्यमी की भूमिका भी निभाता है। यह ऐसे कार्यों को अपने हाथ में लेता है जिसमें निजी क्षेत्र नहीं आ सकता या उनकी भागीदारी से करता है ताकि सभी नागरिकों एवं वर्गों का विकास एवं कल्याण हो सके।

(iii) राज्य नियोजन निर्माण एवं कार्यान्वयन की भूमिका भी पूरी करता है। इसके अंतर्गत यह देश में उपलब्ध संसाधनों का राष्ट्रीय प्राथमिकता के अनुसार आवंटन करता है।

आर्थिक विकास एवं संवृद्धिः बदलती अवधारणाएं

आर्थिक विकास अध्ययन के प्रति चेतना विगत 60 वर्षों में बढ़ी है। आर्थिक विकास अध्ययन की पृष्ठभूमि में अफ्रीका, एशिया व लैटिन अमेरिका के नव-स्वतंत्र राष्ट्रों में विकास की तीव्र उत्कंठा कार्यरत थी साथ ही शीत युद्ध के काल में विचारधाराओं के संघर्ष ने भी आर्थिक विकास के अध्ययन को प्रोत्साहित किया। नव-स्वतंत्र राष्ट्र, विकसित राष्ट्रों की तरह विकास करना चाहते थे, जिसके लिए उन्होंने विकसित राष्ट्रों के विकास अनुभव का लाभ उठाने का निर्णय किया। शीत युद्ध के काल से आरंभ नव क्लासिकी अर्थव्यवस्था व मार्क्सवादी अर्थशास्त्रीय अवधारणा (नियोजित अर्थव्यवस्था) के मध्य वैचारिक संघर्ष, सोवियत रूस के पतन के पश्चात् समाप्तप्राय हो गया और विकास को लेकर बाजार आधारित नव क्लासिकी अर्थशास्त्र का नीति-निर्धारण में वर्चस्व हो गया। विश्व व्यापार संगठन की स्थापना, नव-क्लासिकी अर्थशास्त्र की अवधारणा को प्रोत्साहन देती प्रतीत होती है।

अधिकांश विकासशील राष्ट्रों ने विकास के लिए हेरॉल्ड-डोमर मॉडल पर आधारित नियोजन के माध्यम से आर्थिक विकास का प्रयास किया, परंतु 70 के दशक तक आते-आते जब विकासशील राष्ट्रों को वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हुए तब नियोजन रणनीति पर प्रश्न-चिन्ह उठाये गए। हार्शमैन ने नियोजन रणनीति की विफलता की पृष्ठभूमि में नव-क्लासिकी अवधारणा की अस्वीकृति व नवमार्क्सवादियों को माना है। नव-मार्क्सवादियों का मानना था कि विकसित व विकासशील राष्ट्रों के मध्य व्यापार से अल्पविकास ही बढ़ेगा। इसके लिए वे दो कारण देते थे—*प्रथम*, अल्प विकसित/विकासशील राष्ट्रों में कृषि क्षेत्र में अत्यधिक अधिशेष का होना व *द्वितीय*, औद्योगीकरण का विलम्ब से होना। नियोजन काल में विकासशील राष्ट्रों ने तीव्र पूंजी संचयन, औद्योगीकरण और अल्प रोजगाररत मानव शक्ति को गतिमान करने की नीति अपनाई। सोवियत रूस के पतन व 70 एवं 80 के दशक में दक्षिण कोरिया, हांगकांग, ताइवान व सिंगापुर जैसी मुक्त बाजार विकास अवधारणा पर आधारित अर्थव्यवस्थाओं के उभार ने नव-क्लासिकी सिद्धांतों के प्रति विश्वास को बढ़ाया है। इन आर्थिक विकास अवधारणाओं का मानना है कि

आर्थिक विकास एवं आर्थिक संवृद्धि में अंतर

आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth)	आर्थिक विकास (Economic Development)
• आर्थिक संवृद्धि से अर्थ है कि देश के उत्पादन में समय के साथ-साथ क्या वृद्धि हुई है।	• आर्थिक विकास की संकल्पना अधिक व्यापक है और उसमें प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ यह देखा जाता है कि अर्थव्यवस्था के आर्थिक व सामाजिक ढांचे में क्या परिवर्तन हुए हैं।
• आर्थिक संवृद्धि की जांच के लिए राष्ट्रीय आय के आंकड़ों का विश्लेषण करना होता है।	• आर्थिक विकास का अनुमान मुख्य रू से ढांचागत परिवर्तनों के आधार प लगाया जाता है।
• आर्थिक संवृद्धि के अंतर्गत अधिक साधनों की व्यवस्था करके उनकी उत्पादकता बढ़ाकर उत्पादन स्तर बढ़ाया जाता है।।	• आर्थिक विकास के लिए उत्पादन साधनों की संरचना में परिवर्तन आवश्यक होता है।
• आर्थिक संवृद्धि के द्वारा न तो गरीबी एवं बेरोजगारी का निवारण किया जा सकता है और न ही सामाजिक न्याय प्राप्त किया जा सकता है।	• यद्यपि आर्थिक विकास के लिए आ संवृद्धि पर्याप्त नहीं है, तथापि जरूरी है, बिना आर्थिक संवृद्धि के विकास की कल्पना भी नहीं की जा

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

विकासशील देशों के लिए पृथक आर्थिक सिद्धांतों की आवश्यकता नहीं है बल्कि विकासशील राष्ट्रों के विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण से निर्धन व समृद्ध राष्ट्र, दोनों को लाभ होगा।

कोई राष्ट्र विकास कर रहा है या नहीं इस तथ्य के अन्वेषण का पारंपरिक अस्त्र सकल घरेलू उत्पाद की संवृद्धि दर रहा है। यदि सकल घरेलू उत्पाद की संवृद्धि दर 5-7% वार्षिक की दीर्घ अवधि तक कायम रही हो, तब ऐसा स्वीकार किया जाता है कि राष्ट्र विकास पथ पर है। परंतु सकल घरेलू उत्पाद में संवृद्धि के साथ-साथ समानुपातिक ढंग से यदि जनसंख्या भी तीव्र गति से वृद्धि कर रही हो तब आर्थिक विकास वास्तव में उतना नहीं होगा। इसलिए आर्थिक विकास का आकलन करने के लिए प्रति व्यक्ति आय संवृद्धि दर एक बेहतर संकेतक है क्योंकि यह जनसंख्या वृद्धि दर के साथ सामंजस्य स्थापित कर वास्तविक स्थिति को सामने रखता है। यह संभव है कि आर्थिक संवृद्धि के साथ-साथ आर्थिक असमानताओं में भी वृद्धि हो रही हो, अतः आर्थिक विकास के संदर्भ में किसी नतीजे पर पहुंचने से पूर्व आय असमानताओं के संदर्भ में भी जानकारी पाना आवश्यक हो जाता है।

पारंपरिक तौर पर यह स्वीकार किया जाता है कि आर्थिक विकास के साथ-साथ अर्थव्यवस्था के कृषि क्षेत्र में उत्पादन व रोजगार सृजन में कमी आती है जबकि विनिर्माण व सेवा क्षेत्र का महत्व बढ़ जाता है। विकास की पारंपरिक अवधारणा में गैर-आर्थिक संकेतकों, जैसे—साक्षरता में वृद्धि तथा स्वास्थ्य सेवाएं इत्यादि को भी शामिल किया जाता रहा है। परंतु संपूर्णता में 60 एवं 70 के दशक के दौरान विकास को सकल घरेलू उत्पाद या प्रति व्यक्ति आय में तीव्र वृद्धि से संबद्ध करके देखा गया। इसी के माध्यम से अर्थव्यवस्था में रोजगार उत्पन्न होने व अन्य अवसर उपलब्ध होने को स्वीकार किया गया जो अंततः ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करती है, जिसके माध्यम से विकास के आर्थिक व सामाजिक लाभों का बेहतर वितरण हो पाता है।

50 एवं 60 के दशक में तृतीय विश्व के देशों ने संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित संवृद्धि लक्ष्यों को प्राप्त करने में तो सफलता प्राप्त की परंतु इन राष्ट्रों में निर्धनता का स्तर पूर्ववत् बना रहा। 1970 के दशक में पारंपरिक विकास अवधारणाओं का त्याग किया गया और विकास अवधारणाओं को पुनः परिभाषित किया गया। विकास की नवीन परिभाषा में विकास को निर्धनता के उन्मूलन या उसमें कमी, असमानता तथा बेरोजगारी में कमी को संवृद्धि के साथ संबंधित किया गया। 'विकास के द्वारा वितरण' नवीन नारे के रूप में उभर कर सामने आया। विकास के अर्थ के संदर्भ में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ड्यूडले सीर्स के अनुसार, "एक राष्ट्र के आर्थिक विकास के संदर्भ में ये प्रश्न पूछने चाहिए कि निर्धनता की क्या स्थिति है? बेरोजगारी की क्या स्थिति है? असमानता की क्या स्थिति है? यदि इन तीनों में पूर्व के उच्चतर स्तर में कमी आई है तब संबद्ध राष्ट्र के लिए यह काल विकास का रहा होगा। परंतु यदि इन में से दो या तीनों में वृद्धि हुई है, तब चाहे प्रति व्यक्ति आय दुगुनी हो गई हो, इस काल को विकास का काल कहना अनुचित होगा।"

इस प्रकार विकास एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत आर्थिक संवृद्धि के साथ-साथ सामाजिक संरचना, राष्ट्रीय संस्थानों व नागरिकों की दशा में अत्यधिक परिवर्तन आता है एवं असमानता में कमी आती है व निरपेक्ष निर्धनता का उन्मूलन हो जाता है।

महबूब-उल-हक के अनुसार, मानव विकास हेतु चार महत्वपूर्ण घटक हैं—

(i) लोगों की अवसरों तक एक समान पहुंच होनी चाहिए।

(ii) गुणवत्तापरक जीवन के अवसर बने रहने चाहिए ताकि आने वाली पीढ़ियां समान खुशहाली के अधिकार से वंचित न हों।

(iii) लोगों का सशक्तिकरण आवश्यक हो, ताकि वे मुक्त रूप से अपनी पसंद का चुनाव कर सकें। यह राजनीतिक लोकतंत्र, आर्थिक उदारवाद (अत्यधिक नियंत्रणों से मुक्ति), शक्ति का विकेन्द्रीकरण और निर्णय लेने एवं क्रियान्वयन में लोगों की व्यापक सहभागिता को प्रोत्साहित करने की दशाओं के सृजन का आह्वान करना है। इसमें स्वास्थ्य एवं शैक्षिक मोर्चों पर निवेश, ऐसी दशाओं के सृजन जिसमें लोगों की साख एवं ऋण तथा उत्पादक संपत्ति तक पहुंच हो, की आवश्यकता है और लिंग असमानता को न्यूनतम करना होगा ताकि महिला एवं पुरुष समानता के आधार पर प्रतियोगिता/प्रतिस्पर्द्धा कर सकें।

(iv) लोगों में निवेश और उनके लिए वृहद्-आर्थिक माहौल तैयार करने से उनकी अधिकतम क्षमता को प्रयोग करना संभव होगा। उत्पादकता बेहद महत्वपूर्ण है। हालांकि, यह नहीं भूलना चाहिए कि मानव, विकास का अंतिम साध्य होते हैं।

1971 में डॉ. गॉलेट ने विकास के व्यापक अर्थ में तीन आधारभूत केंद्रीय मूल्यों—जीवन-संपोषण, आत्म-सम्मान एवं स्वतंत्रता—में अंतर किया। विकास की मूलभूत जरूरतें उपागम 1970 में विश्व बैंक द्वारा शुरू किया गया। तीन मुख्य घटक अंतर्संबंधित हैं। जीवन संपोषण के निम्न स्तर के परिणामस्वरूप आत्म सम्मान और स्वतंत्रता का अभाव उत्पन्न होता है। आत्म सम्मान और पसंद की स्वतंत्रता का अभाव गरीबी का दुष्चक्र उत्पन्न करता है।

सामाजिक विकास

सामाजिक विकास सामूहिक मानव विकास की अपेक्षा आगे का पड़ाव है। यह विकास के अधिकार पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा को प्रतिबिम्बित करता है। यह विकास एक मानवाधिकार है और इच्छाओं एवं महत्वाकांक्षाओं से स्वतंत्रता एक मूल अधिकार है। इस संदर्भ में, निर्धनता मानवाधिकार का उल्लंघन है और निर्धनता से स्वतंत्रता एक अखण्ड एवं आवश्यक अधिकार है। सामाजिक विकास यह देखता है कि लोगों को उनके अधिकार प्राप्त हों।

समावेशी संस्थान अवसरों तक समान पहुंच को प्रोत्साहित करते हैं, प्रत्येक को सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति में योगदान हेतु सक्षम बनाते हैं और प्रत्येक को उस प्रगति में भागीदार बनाते हैं। सुघटित समाजों में, पुरुष एवं महिलाएं साझा जरूरतों को पूरा करने के लिए साथ-साथ काम करते हैं, बाधाओं को पार करते हैं और विविध हितों को देखते हैं। जिम्मेदार या जवाबदेह संस्थान प्रभावी, दक्ष एवं निष्पक्ष तरीके से लोगों के हितों के प्रति पारदर्शी एवं संवेदनशील होते हैं।

सामाजिक विकास की प्रक्रिया में समाज के निर्धन एवं अन्य सीमांत समूहों को शामिल किया जाता है। निर्धनता, निम्न आय से अधिक की स्थिति है। यह कमजोरी, वंचना एवं अलगाव, गैर-जिम्मेदार संस्थाएं एवं अशक्तता की स्थिति भी है। सामाजिक विकास में समुदायों तक सेवा प्रदायन में सुधार, और स्थानीय सरकारों को जिम्मेदार बनाने का कार्य निहित है।

पर्यावरण के प्रति बढ़ती चेतना से संवहनीय विकास की अवधारणा सामने आई है। पर्यावरण व विकास पर स्थापित ब्रंटलैण्ड (Bruntland) आयोग के अनुसार, "विकास के संवहनीय होने के लिए यह आवश्यक है कि वह वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति इस प्रकार करे कि भावी पीढ़ी की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता पर विपरीत प्रभाव न पड़े।"

इस प्रकार विकास अवधारणा को मानवीय स्वरूप प्रदान करने के साथ-साथ पर्यावरण पर विकास प्रक्रिया के नकारात्मक परिणामों के प्रति भी चेतना जगाने के प्रयास किये जा रहे हैं।

सतत् विकास

औद्योगिकीकरण में आज सभी देश विकास को तरजीह दे रहे हैं। इन देशों को इस बात की अहमियत नहीं है कि विकास की दिशा कैसी है। विकास की इस चकाचौंध में दौड़ लगाने से पहले इन देशों को टिकाऊ या सतत् विकास की अवधारणा को ध्यान में रखना चाहिए। सतत् विकास एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें उपलब्ध संसाधनों का इस तरह से उपयोग किया जाए कि वर्तमान जरूरतों को पूरा करने के साथ भावी पीढ़ी की जरूरतों में कटौती न होने पाए। इसमें पर्यावरण को क्षति पहुंचाए बिना संसाधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग किया जाता है। सतत् विकास अवधारणा का सर्वप्रथम प्रयोग 1970 के पूर्वार्द्ध में अर्थव्यवस्था के संदर्भ में 'आर्थिक पारिस्थितिकीय तंत्र के साथ संतुलन' के रूप में किया गया। सतत् विकास अवधारणात्मक रूप से तीन भागों में बांटा जा सकता है—(i) पर्यावरणीय (ii) आर्थिक सततता (iii) सामाजिक-राजनीतिक सततता।

सतत् विकास की अवधारणा में क्षीण सततता, मजबूत सतता पारिस्थितिकीय विचार शामिल हैं। सतत् विकास केवल पर्यावरणीय मुद्दे नहीं करता। वर्ष 1987 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने ब्रटलैंड रिपोर्ट जारी की जिसमें गया कि सतत् विकास एक ऐसा विकास है जिसमें वर्तमान जरूरतों एवं

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

की पूर्ति में कठिनाई न हो तथा उन्हें समझौता न करना पड़े।

एजेंडा-21 ने सूचना, समन्वय एवं सहभागिता को विकास निर्माण की कुंजी माना है तथा इन्हें परस्पर रूप से गुंथा हुआ बताया है। इसने जोर दिया है कि सतत् विकास में प्रत्येक सूचना का उपयोग एवं आदान-प्रदान किया जाता है। इसने इस बात की आवश्यकता पर बल दिया है कि सभी प्रकार की विकास प्रक्रिया में पर्यावरणीय एवं सामाजिक पहलू के साथ सहयोग एवं समन्वय किया जाना चाहिए। इससे बढ़कर एजेंडा-21 ने निर्णय-निर्माण में व्यापक जन सहभागिता को शामिल करने पर बल दिया है जो सतत् विकास की प्राप्ति में एक आधारभूत पूर्व आवश्यकता है।

कहा जा सकता है कि सतत् विकास विकासशील विश्व पर विकास करने की सीमाओं को आरोपित करता है। विकसित देशों ने अपने विकास क्रम में पर्यावरण को अंधाधुंध रूप से प्रदूषित किया, अब वही देश चाहते हैं कि विकासशील देशों को प्रदूषण स्तर को घटाने के प्रयास करने चाहिए। कुछ का मानना है कि, सतत् विकास के कार्यान्वयन का अर्थ होगा—आधुनिक पूर्व जीवन शैली में लौटना।

सतत् विकास के संदर्भ में वैश्विक सीमाओं को पारिस्थितिकीय प्रभाव के संदर्भ से समझा जा सकता है, जो उस दबाव का परिचायक है, जो मानवीय कार्यकलाप पारिस्थितिकी तंत्र पर डालते हैं। उनकी तुलना जब जैव क्षमता (उपयोगी जैव सामग्री सृजित करने और मानव द्वारा सृजित अपशिष्ट पदार्थों को खपाने की पारिस्थितिकी तंत्र की क्षमता का पैमाना) से की जाती है तो हमें पता चलता है कि हम लाभ कमा रहे हैं या घाटा उठा रहे हैं। 1992 में रियो डी जेनेरो में आयोजित 'यूनाइटेड नेशंस कॉन्फ्रेंस ऑन एनवायरमेंट एंड डेवलपमेंट (यूएनसीईडी) ने इस मत को रखा कि निर्धनता से निपटने और सतत् विकास प्राप्त करने के लिए आर्थिक संवृद्धि आवश्यक थी। इस सम्मेलन में एजेंडा 21 को स्वीकार किया गया जो सतत् विकास प्राप्त करने के लिए एक वैश्विक कार्य योजना का ब्लूप्रिंट है। एजेंडा 21 के क्रियान्वयन की प्रगति करने की समीक्षा के उद्देश्य से 1993 में संयुक्त राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् (ECOSOC) के अंतर्गत सतत् विकास आयोग (सीएसडी) की स्थापना की गई।

संयुक्त राष्ट्र के 'वर्ल्ड सम्मिट आउटकम डॉक्यूमेंट' 2005 ने संदर्भित किया कि आर्थिक विकास, सामाजिक विकास और पर्यावरणीय संरक्षण को सतत् विकास के अंतर्आश्रित एवं परस्पर समर्थित स्तंभ के तौर पर माना जाए।

हरित विकासः हरित विकास कुछ हद तक सतत् विकास से भिन्न है। हरित विकास इस बात को महत्व देता है कि इसके प्रस्तावक आर्थिक और सांस्कृतिक चिंताओं पर पर्यावरणीय सततता पर क्या सोचते हैं। सतत् विकास के प्रस्तावक मानते हैं कि वे एक ऐसा संदर्भ देते हैं जिसमें समस्त सततता सुधरती है, जहां पूरी तरह हरित विकास असंभव है।

संयुक्त राष्ट्र ने सतत् विकास लक्ष्यों को अपनाया

सितम्बर 2014 में आयोजित संयुक्त राष्ट्र महासभा के 69वें सत्र का मुख्य उद्देश्य पश्च-2015 विकास एजेंडा के निर्माण प्रक्रिया में योगदान के दृष्टिगत् अंतर्क्रियात्मक एवं सहभागी रूप से चुनिंदा विषयों पर सदस्य देशों एवं सभी सम्बद्ध हिस्सेदारों के लिए गहन विमर्श का अवसर प्रदान करना था।

सभी नेतागण इस बात पर सहमत हुए कि सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों (एमडीजी) ने 2000-2015 के अंत तक विकास पर वैश्विक कार्य और सहयोग हेतु एक साझा रूपरेखा प्रदान की। एमडीजी को पूरा करने की अंतिम समयावधि के आगे, सतत् विकास लक्ष्यों (एसडीजी) के लिए मुक्त कार्यशील समूह (ओडब्ल्यूजी) ने पश्च-2015 काल के लिए प्रस्तावित 17 सतत् विकास लक्ष्यों पर सहमति दी।

जैव क्षमता विश्व भर में समान रूप से व्याप्त नहीं है। दुर्भाग्यवश कम आय वाले देशों का सबसे छोटा फुटप्रिंट होता है, लेकिन वे सबसे बड़ी पारिस्थितिकीय हानियों को झेलते हैं। संयुक्त राष्ट्र के सामान्य परिदृश्य यह इंगित करते हैं कि यदि वर्तमान आबादी और खपत की प्रवृत्ति जारी रहती है तो वर्ष 2030 तक हमें अपने भरण-पोषण के लिए दो पृथ्वियों की जरूरत पड़ेगी।

सतत् विकास लक्ष्य (एसडीजी): पश्च-2015 एजेंडाः 1. गरीबी के सभी रूपों को सर्वग समाप्त करना।

2. भुखमरी को समाप्त करना, खाद्य सुरक्षा प्राप्त करना और पोषण में सुधार लाना तथा सम्पोषणीय कृषि को बढ़ावा देना।

3. स्वास्थ्य सुनिश्चित करना और हर उम्र में सभी के लिए तंदुरूस्ती को बढ़ावा देना।

4. समावेशी और साम्यपूर्ण स्तरीय शिक्षा सुनिश्चित करना और सबके लिए आजीवन पठन-पाठन के अवसरों को बढ़ावा देना।

5. लिंग संबंधी समानता हासिल करना और सभी महिलाओं एवं बालिकाओं का सशक्तिकरण।

6. सबके लिए जल और स्वच्छता की उपलब्धता और स्थायी प्रबंधन सुनिश्चित करना।

7. सबके लिए वहनीय, विश्वसनीय और आधुनिक ऊर्जा की उपलब्धता सुनिश्चित करना।

8. सबके लिए स्थायी, समावेशी और सतत् आर्थिक विकास, पूर्ण एवं लाभकारी तथा उचित रोजगार को बढ़ावा देना।

9. समुत्थानशील अवसंरचना निर्मित करना, समावेशी एवं संपोषणीय औद्योगिकरण को बढ़ावा देना तथा नवोन्मेष को प्रोत्साहित करना।

10. देशों के भीतर और आपस में भी असमानता कम करना।

11. शहरों और मानव बस्तियों को समावेशी, सुरक्षित, समुत्थानशील और सम्पोषणीय बनाना।

12. सम्पोषणीय खपत और उत्पादन पैटर्न सुनिश्चित करना।

13. जलवायु परिवर्तन एवं इसके प्रभावों का मुकाबला करने के लिए तत्काल कार्रवाई करना।

14. सतत् विकास के लिए महासागरों, समुद्रों और समुद्री संसाधनों का संरक्षण करना एवं सम्पोषणीय तरीके से उपयोग करना।

15. पृथ्वी के पारिस्थितिकी तंत्रों का संरक्षण, पुनरूद्धार करना एवं उनके सम्पोषणीय उपयोग को बढ़ावा देना।

16. संपोषणीय विकास के लिए शांतिपूर्ण व समावेशी सोसाइटियों का संवर्धन करना, सबके लिए न्याय सुलभ करना और सभी स्तरों पर प्रभावी, जवाबदेही व समावेशी संस्थाओं का निर्माण करना।

17. कार्यान्वयन के तरीके सुदृढ़ करना और सम्पोषणीय विकास हेतु वैश्विक भागीदारी को पुनः सक्रिय करना।

पूंजी और सतत् विकासः सतत् विकास इस बात पर निर्भर करता है कि समाज आर्थिक, सामाजिक एवं प्राकृतिक पूंजी का प्रबंध किस प्रकार करता है। इस पूंजी के उपभोग का कोई विकल्प नहीं है तथा जिसे संभवतः टाला नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए यह सही है कि प्राकृतिक पूंजी को आवश्यक रूप से आर्थिक पूंजी से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता। यद्यपि यह संभव हो सके कि हम कुछ ऐसे तरीके खोज लें जो कुछ प्राकृतिक संसाधनों का स्थान ले सकें लेकिन यह जरूरी नहीं है कि ये तरीके एवं उपाय पारिस्थितिकीय तंत्र द्वारा दी जाने वाली सेवाओं को भी बदस्तूर जारी रख सकें। जैसे कि ओजोन परत और अमेजन के वनों द्वारा जलवायु स्थिरीकरण के लिए जाने वाले कार्य को क्या हमारे नए तकनीकी उपाय प्रतिस्थापित कर सकेंगे? वास्तव में प्राकृतिक पूंजी, सामाजिक पूंजी और आर्थिक पूंजी अक्सर पूरक होती हैं। एक और बाधा जो सततता कायम करने के मार्ग में आती है, वह है—कई प्राकृतिक संसाधनों का बहु-कार्यात्मक होना। उदाहरण के लिए वन न केवल कागज के लिए कच्चा माल प्रदान करते हैं अपितु जैवविविधता प्रबंध, जल बहाव नियमन एवं कार्बनडाइऑक्साइड अवशोषण भी करते हैं। प्राकृतिक एवं सामाजिक पूंजी के ह्रास में एक और समस्या इनकी आंशिक अनुलक्रमणीयता है। जैव विविधता में हानि अक्सर निश्चित होती है। ऐसी ही स्थिति सांस्कृतिक विविधता के साथ भी है क्योंकि वैश्वीकरण के बढ़ने से कई मूल भाषाएं सोचनीय रूप से तेजी से विलुप्त होती जा रही हैं।

यदि प्राकृतिक और सामाजिक पूंजी के ह्रास से इतने महत्वपूर्ण परिणाम सा आ रहे हैं तो प्रश्न उठता है कि इन दुष्परिणामों के उन्मूलन के लिए व्यवस्थित उ क्यों नहीं किए जा रहे हैं? इसके लिए वर्ष 2007 में कोहेन और विन ने चार की बाजार विफलता को जिम्मेदार माना है।

1. हालांकि प्राकृतिक एवं सामाजिक पूंजी के ह्रास से लाभ निजी उठाया जाता है जबकि इससे होने वाले नुकसान की कीमत अक्स को उठानी पड़ती है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

2. प्राकृतिक पूंजी के ह्रास के प्रति सामाजिक जागरूकता नहीं है जिसके कारण समाज इसके महत्व का अवमूल्यन करता है।
3. सूचनाओं का असमंजित होना जिसके कारण प्राकृतिक एवं सामाजिक पूंजी ह्रास के कारण एवं प्रभाव स्पष्ट नहीं हो पाते।
4. प्राकृतिक एवं सामाजिक पूंजी के ह्रास के आभास को समझना आर्थिक सिद्धांत के विपरीत है जिसके कारण अधिकतर कंपनियां संसाधन आवंटन में व्यावसायिक सोच को लेकर ईमानदारी नहीं रख पातीं।

भारत में सतत् विकासः भारत में सतत् विकास के लिए सरकार अनेक कार्यों को कर रही है। इसके अंतर्गत वनारोपण एवं सामाजिक वानिकी, मृदा संरक्षण व परती भूमि विकास कार्यक्रम, कृषि, जलवायु प्रादेशीकरण, वाटरशेड प्रबंधन, फसल चक्र के नियम का पालन, शुष्क कृषि विकास, जीवमण्डल विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय अभ्यारण्य, जलग्रस्त भूमि संरक्षण, मैंग्रोव संरक्षण, तटीय पारिस्थितिकी एवं मलिन बस्तियों में सुधार कार्यक्रम शामिल हैं। उल्लेखनीय है कि इन कार्यक्रमों के सफल कार्यान्वियन के लिए अधिकाधिक जनसहभागिता की आवश्यकता है। जिसके परिणामस्वरूप सतत् विकास संभव एवं साकार हो सकेगा।

भारत में सतत् विकास की अवधारणा में अब विभिन्न प्रकार की सामाजिक, स्वच्छ तकनीक (स्वच्छ ऊर्जा, स्वच्छ जल एवं सतत् कृषि) तथा मानव संसाधन तत्व जैसी विकास योजनाओं को समेट लिया गया है जिसने केंद्र एवं राज्य सरकारों के साथ-साथ सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र का ध्यान भी अपनी ओर खींचा है। वस्तुतः भारत अपने सकल घरेलू उत्पादन के मापन में प्राकृतिक संसाधन संपदा के ह्रास को एक मुख्य तत्व के रूप में शामिल कर रहा है जिससे भारत की राष्ट्रीय आय गणना 'हरित गणना' हो जाएगी।

भारतीय सतत् विकास परिषदः परिषद का कार्य पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों के अनुकूल संवृद्धि दर को बढ़ाना है। साथ ही पिछले 50 वर्षों में भारत के प्राकृतिक संसाधनों के नुकसान की मात्रा को भी निर्धारित करना है। परिषद् के अध्ययन को 'लुकिंग बैक टू थिंक अहड' शीर्षक से प्रकाशित किया गया। इसमें वैकल्पिक विकास मार्ग हेतु ऐसी रणनीति अपनाने की बात की गई जिससे सतत् विकास का भविष्य सुरक्षित हो सके और साथ ही 1997-2047 के बीच हमारे प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण स्थिति का मात्रात्मक अवलोकन संभव हो सके।

गौरतलब है कि ग्रीन इंडिया-2047 मिशन के तहत् इस बात की समीक्षा की जाती है कि वर्ष 1997 से भारत ने पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधन के परिप्रेक्ष्य में क्या खोया है और क्या पाया है?

ग्रीन इंडिया प्रोजेक्ट को आगे बढ़ाने के लिए टेरी संस्थान, भारतीय सतत् विकास परिषद के अंतर्गत एक अध्ययन संचालित कर रही है जिससे 1997-2007 के दशक में भारत की प्राकृतिक संपदा की हानि और वृद्धि का विश्लेषण भौतिक एवं आर्थिक दोनों संदर्भ में हो सकेगा। इसके पश्चात् यह देश को सतत् विकास के मार्ग पर आगे बढ़ने की रणनीति का सुझाव देगा। इसके अतिरिक्त इस अध्ययन में ऊर्जा एवं जलवायु परिवर्तन की चुनौती का भी विश्लेषण किया जाएगा।

भारतीय सतत् विकास परिषद् ने पर्यावरण एवं विकास के संदर्भ में व्यापक उद्देश्यों के साथ भारत और अंतरराष्ट्रीय समुदाय का आपसी सहयोग मजबूत किया है। ये उद्देश्य हैं–

- विकास रणनीति के साथ समन्वित पर्यावरणीय मुद्दों की चुनौती का विश्लेषण करना ताकि भारत में सतत् विकास का पैटर्न स्थापित किया जा सके।
- विभिन्न स्तर पर भारत सरकार की एजेंसियों से प्राप्त सुझाव एवं अनुशंसाओं के तहत् निर्देशों एवं रणनीतियों का निर्माण करना।
- भारत में पर्यावरण एवं विकास से जुड़े मामलों के बारे में सूचना प्रदान करना तथा इसको प्रकाशित करना तथा सतत विकास के प्रचलन को प्रोत्साहित करना।

विजन 2025: भारत के लिए सतत् विकास रोडमैपः यह पहला कार्यक्रम था–जिसे भारतीय सतत् विकास परिषद के अंतर्गत 1-2 नवम्बर, 2007 के दौरान आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में विभिन्न क्षेत्रों से कई नेताओं ने भाग लिया। इसमें सतत् विकास की चुनौतियों से निपटने हेतु व्यापक विचार-विमर्श हुआ। सम्मेलन के अंतर्गत निम्नलिखित बातों पर विचार-विमर्श हुआ–

- अनिवार्य सेवाओं तक सार्वभौमिक एवं समान पहुंच सुनिश्चित करना।
- ग्रामीण विकास हेतु द्वितीय हरित क्रांति लाना।
- शहरी केंद्रों को सतत् विकास के मुख्य इंजन के रूप में तैयार करना।
- संवृद्धि के लिए आधारभूत ढांचा तैयार करना।
- भारत के लिए भविष्य में ऊर्जा आपूर्ति सुनिश्चित करना।
- जल का तार्किक प्रयोग सुनिश्चित करना।
- विकास एवं संवृद्धि के प्राकृतिक संसाधन आयाम निर्धारित करना।

समावेशी विकास

विकास प्रक्रिया नए आर्थिक अवसरों का सृजन करती है जो असमान रूप से वितरित किए जाते हैं। गरीब एवं वंचित तबका सामान्यतः बाजार विफलता एवं परिस्थितियों के कारण इन अवसरों का लाभ नहीं उठा पाता। परिणामस्वरूप गरीब और अमीर के बीच की खाई और चौड़ी हो जाती है। अतः विकास गरीबी कम करने का माध्यम बनने की बजाए बाजार द्वारा निर्धारित होता है। हालांकि सरकार ऐसे वंचित वर्गों की संपूर्ण सहभागिता हेतु नीतियां एवं कार्यक्रम बना सकती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि समावेशी विकास न केवल नए आर्थिक अवसरों का सृजन करता है अपितु इन अवसरों तक समाज के सभी वर्गों की पहुंच को सुनिश्चित करता है। यदि विकास सामाजिक अवसर कार्यों में बढ़ोत्तरी करता है तो इसे समावेशी विकास कहते हैं जो दो तत्वों पर निर्भर करता है–

(i) जनसंख्या को औसत अवसरों की उपलब्धता,
(ii) अवसरों की जनसंख्या में वितरण प्रकृति

समावेशी विकास के अंतर्गत शामिल तत्वः • समावेशी विकास में गति एवं पैटर्न दोनों शामिल होते हैं, जो आपस में जुड़े हुए हैं। अतः उन्हें साथ में लेकर चलना होगा।

• इसके अंतर्गत रोजगार सृजन के दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य को केंद्रित किया जाता है। इसमें आय के पुर्नवितरण की अपेक्षा वंचित वर्गों की आय में बढ़ोत्तरी की जाती है।

• समावेशी विकास की नीति अधिकतर सरकारों की सतत विकास की रणनीति का एक मुख्य तत्व है।

• यह बाजार साधनों द्वारा नियंत्रित विकास को सरकार के साथ मिलकर अपेक्षाकृत रूप से सबके लिए सरल बना देती है।

• समावेशी विकास को मात्र रोजगार सृजन या आय वितरण के विशेष लक्ष्य के रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता।

• समावेश विकास में न केवल कंपनी अपितु व्यक्ति को भी विश्लेषण के तौर पर शामिल किया जाता है।

समावेशी विकास उत्तरदायित्व एवं सतत वृद्धि के सृजन के साथ-साथ संपत्ति एवं कल्याण दोनों के न्यायिक वितरण को संभव करता है। सामाजिक सुघटता तथा मानव गरिमा इसका केंद्र होती है। यह अवसरों की पहुंच को आवश्यक रूप से व्यापक करता है। समावेशी विकास वैश्वीकरण के प्रवाह को व्यापक कर इसे सभी वंचित वर्गों तक पहुंचाता है। इसके दो मुख्य पारस्परिक स्तंभ हैं–

1. *सततः विकासः* वर्तमान विकास प्रतिरूप से बाहर रह गए लोगों को शामिल कर उनके लिए उपक्रमों एवं उत्तरदायी नेतृत्व की व्यवस्था कर आर्थिक अवसरों को मुहैया कराता है।

2. *अवसरों के विकेंद्रीकरणः* अवसरों के विकेंद्रीकरण को समावेशी विकास सुनिश्चित करता है। इसके लिए यह सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र और नागरिक समाज के बीच भागीदार कर शिक्षा, स्वास्थ्य, आधारभूत ढांचा में निवेश करता है।

सु-शासन तंत्र के द्वारा समावेशन को जोड़ा जा सकता है तथा निर्णय-निर्माण और जवाबदेहिता इन स्तंभों के विकास के लिए मूलाधार हैं।

समावेशी विकास की आवश्यकताएंः • कृषि क्षेत्र में सतत् कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता बढ़ाई जानी चाहिए। देश के 70 प्रतिशत खेतिहर मजदूर इस स्थिति में नहीं हैं कि विकासशील कृषि उत्पादकता में निवेश कर सकें।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

- निम्न उत्पादकता फसलों (चावल, दाल, बाजरा) में निवेश की अपेक्षा उच्च उत्पादकता फसलों (काजू, कैस्टर) में निवेश बढ़ाए जाने की आवश्यकता।
- कृषि बीमा, भंडारण सुविधा, सिंचाई व्यवस्था, बांध एवं टैंक बनाकर ग्रामीण क्षेत्रों को शहरी बाजार से जोड़ा जाना चाहिए।
- कामगारों का व्यावसायिक शिक्षा द्वारा कौशल विकास किया जाना चाहिए।
- स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल, ग्रामीण रोजगार इत्यादि कार्यक्रमों में अधिक वित्त प्रवाह एवं तीव्र कार्यान्वयन किया जाना चाहिए।
- सरकार को नीतियों एवं कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने और भ्रष्टाचार से बचाने के लिए जल्द से जल्द जवाबदेहिता सुनिश्चित की जानी चाहिए।
- स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की दर में कमी करने और टीकाकरण जैसे विकास कार्यक्रमों में वंचित समूहों को शामिल करने के लिए भागीदारी बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- अध्यापकों को छात्रों की अनुपस्थिति को कम होने के कारणों के बारे में जानना चाहिए और क्षमता विकास के कार्यक्रमों को बढ़ाया जाना चाहिए।
- ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार वृद्धि, विशेष रूप से अकुशल श्रमिकों के लिए, सरकारी धन का प्रयोग कुशलतापूर्वक किए जाने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम योजना को जवाबदेहिता और कुशलतापूर्वक वित्त आवंटन के द्वारा निर्धारित समय तक कार्यान्वित करना होगा अन्यथा यह अपना उद्देश्य खो देगी।
- समावेशी विकास के अंतर्गत ग्रामीण आधारभूत ढांचे का निर्माण, जिसमें स्वास्थ्य, रोजगार एवं शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, जो इसके सतत विकास को साकार करता है अन्यथा विकास वृद्धि के तमाम लक्ष्य धूल-धूसरित हो सकते हैं।

वित्तीय समावेशन: वित्तीय समावेशन समिति का गठन केंद्र सरकार द्वारा जून 2006 में सी. रंगराजन की अध्यक्षता में किया गया जिसने जनवरी 2008 में अपनी रिपोर्ट सौंपी। समिति द्वारा परिभाषित वित्तीय समावेशन के अंतर्गत, एक प्रक्रिया है जिसमें जरूरत मंद कमजोर वर्गों तथा निम्न आय वर्गों तक उचित लागत में वित्तीय सेवाओं की सामयिक एवं पर्याप्त पहुंच सुनिश्चित हो सके।

वित्तीय समावेशन समिति वित्तीय समावेश की तुरंत आवश्यकता पर बल देती है। इस संबंध में समिति ने राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (एन.एस.एस.ओ.) के आंकड़ों का संदर्भ लिया है। इसके अनुसार 46 मिलियन कृषक परिवार, जो कुल कृषक परिवारों का 51.4 प्रतिशत है, न तो संस्थागत और न ही गैर-संस्थागत स्रोत से साख प्राप्त करता है।

रिपोर्ट के अनुसार, 22 प्रतिशत लोगों ने अनौपचारिक साधनों से तथा 27 प्रतिशत ने औपचारिक साधनों से तथा अन्य ने भी अनौपचारिक साधनों से ऋण प्राप्त किया। औपचारिक साधनों से ऋण प्राप्ति का अनुपात भी क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में भिन्न है। यह अनुपात उत्तर-पूर्व और पूर्वी क्षेत्र में विशेष रूप से निम्न है।

समिति ने वित्तीय समावेशी क्षेत्र के निर्माण के लिए आधारभूत रणनीति को चिन्हित किया है, जिसमें चार तत्व शामिल किए गए हैं—(i) मौजूदा औपचारिक साख वितरण तंत्र के अंतर्गत प्रभावी उपाय करना; (ii) सीमांत एवं अर्द्ध सीमांत तथा गरीब गैर कृषक परिवारों के बीच क्रेडिट खपत क्षमता में सुधार के उपाय सुझाना; (iii) प्रभावी साख पहुंच के लिए नए मॉडल को शामिल करना; (iv) तकनीक आधारित समाधान ढूंढने पर बल देना।

अल्पविकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाएं

'अल्पविकसित' शब्द की कोई एक निर्धारित व्याख्या नहीं की जा सकती, क्योंकि इसे अलग-अलग देशों के संदर्भ में अलग-अलग मानदंडों और परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। उदाहरणस्वरूप, पश्चिमी अर्थशास्त्री इसे सामान्यतः विकास-शून्यता से जोड़कर देखते हैं। यही कारण है कि वे एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिण अमेरिका के अधिकांश देशों को इस वर्ग की सूची में शामिल कर लेते हैं। इसकी तुलना में दूसरे अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण उनसे भिन्न है। वे अल्प विकास या विकास-शून्यता को विकास की कमी के अलावा भी, अन्य कई तत्वों से जुड़ा मानते हैं। इस संदर्भ में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जैकब वाइनर की परिभाषा तर्क आधारित है। वाइनर अल्पविकसित अर्थव्यवस्था उसे मानते हैं, जिसमें उच्चतर जीवन स्तर के लिए अपने यहां की पूंजी या श्रम-शक्ति अथवा प्राकृतिक संसाधनों का या सामूहिक रूप में इन सभी का समुचित और कारगर ढंग से उपयोग करने की बेहतर संभावनाएं हों। यदि ऐसी किसी अर्थव्यवस्था में पहले से ही प्रतिव्यक्ति आय का स्तर काफी ऊंचा है, तो वह इन संसाधनों का उपयोग वहां की अधिकांश जनता के लिए करे, जिसका जीवन स्तर ज्यादा निचले स्तर का नहीं है। हालांकि, अल्पविकास की कोई सर्वसम्मत परिभाषा देना संभव नहीं है, लेकिन, ऐसी कुछ व्याख्याएं हैं, जिन्हें इसका संकेतक तो माना ही जा सकता है।

'विकासशील अर्थव्यवस्था' शब्द इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि यद्यपि, ये देश अभी अल्पविकसित हैं, परंतु, इन देशों में विकास की प्रक्रिया शुरू की जा चुकी है जो इस प्रकार हैं; (i) कृषि का प्रमुख्य, (ii) प्राथमिक उत्पादों द्वारा निर्देशित निर्यात, (iii) अल्प पूंजी-संचयन, (iv) तीव्र जनसंख्या वृद्धि तथा उच्च निर्भरता अनुपात, (v) अल्प रोजगार तथा बेरोजगारी का ऊंचा तथा बढ़ता स्तर, (vi) श्रम उत्पादकता का निम्न स्तर, (vii) निम्नस्तरीय रहन-सहन, (viii) तकनीकी पिछड़ापन, (ix) निम्न आय तथा आय की असमान व्यापकता।

विकास के विभिन्न चरण एवं संरचनात्मक परिवर्तन

अक्सर तर्क दिया जाता है कि विकास की ओर अग्रसर देशों को कुछ विशेष परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है। हर स्थिति अथवा चरण की अपनी कुछ विशेषताएं और लक्षण होते हैं। इन स्थितियों अथवा चरणों की पहचान करते हुए यह आकलन किया जा सकता है कि कोई देश विकास के किस दौर में पहुंच गया है।

उत्पादन के प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक चरण

'चरण-सिद्धांत' फिशर द्वारा 1939 में तथा क्लार्क द्वारा 1940 में प्रतिपादित किया गया था। ऐसे ही एक सिद्धांत में कहा गया है कि उत्पादन के प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक चरण देश को विकास का आधार प्रदान करते हैं। माना गया है कि कोई भी देश अपनी विकास यात्रा की शुरूआत प्राथमिक उत्पादक के रूप में करता है। जब जीवन की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है, तो संसाधनों को विनिर्माण अथवा दूसरी श्रेणी की गतिविधियों में लगाया जाने लगता है। परिणामस्वरूप लोगों की आय बढ़ने लगती है तथा उन्हें सुख-सुविधाएं उपलब्ध होने लगती हैं। विनिर्मित वस्तुओं का बाजार अत्यधिक संतृप्ति की स्थिति में पहुंच जाता है। अतः संसाधनों को तीसरी श्रेणी की गतिविधियों की ओर मोड़ दिया जाता है और ऐसी वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, जो मांग के अनुरूप अधिक-से-अधिक स्थिति-सापेक्ष हों। इस पद्धति में कम विकसित देश प्राथमिक उत्पादन वाली स्थिति के समरूप आ जाते हैं, उनसे अधिक विकसित देश विनिर्मित वस्तु उत्पादक का स्तर प्राप्त कर लेते हैं तथा पूर्ण विकसित देश एक बड़े सेवा क्षेत्र का रूप ले लेते हैं।

व्यापक तौर पर इस अवधारणा की पुष्टि हुई है कि कम आय वाले देशों में उपलब्ध कुल श्रम-शक्ति का 65 प्रतिशत से ज्यादा कृषि में लगा हुआ है, जबकि उद्योगों में सिर्फ 20 प्रतिशत ही कार्यरत है। इसके विपरीत उच्च आय वाली अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र में मात्र 5 प्रतिशत श्रम-शक्ति लगी हुई है, लेकिन उद्योगों में इसका प्रतिशत 30 है। जहां तक अन्य सेवा क्षेत्रों में श्रम-शक्ति की भागीदारी का प्रश्न है, उसमें भी यही रुझान स्पष्ट परिलक्षित होता है। यहां भी अन्य सेवाओं में संलग्न श्रम-शक्ति का प्रतिशत पूर्ण विकसित देशों के मुकाबले कम विकसित देशों में बहुत कम है। लंबे समय से विकसित देशों में कुल श्रम-शक्ति का 60 प्रतिशत अन्य सेवाओं में संलग्न है। सामान्य बात है कि जिस अर्थव्यवस्था में प्रतिव्यक्ति आय जितनी कम होगी, वहां उतने ही अधिक अनुपात में श्रम-शक्ति कृषि क्षेत्र में कार्यरत होगी और जहां प्रतिव्यक्ति आय जितनी अधिक होगी, वहां उतने ही ज्यादा लोग अन्य सेवाओं में कार्यरत होंगे।

उत्पादन के वृत्तखंडीय वितरण या फैलाव से श्रम-शक्ति का वृत्तखंडीय वितरण या फैलाव परिलक्षित होता है; लेकिन अविकास, औद्योगीकरण तथा अर्थव्यवस्था की प्रौढ़ता की पहचान करते समय कुछ सावधानियां बरतनी आवश्यक हैं। इनका आकलन करते हुए संबंधित देशों या अर्थव्यवस्थाओं के विभिन्न गतिविधियों में लगे संसाधनों के कठोर अनुपात का भी ध्यान रखना होगा।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

विकास तथा औद्योगीकरण में संबंध

विश्व के देशों पर दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि अधिकांश देशों में जीवन-स्तर तथा औद्योगिक गतिविधियों में लगाए गए संसाधनों के हिस्से में कोई नजदीकी संबंध नहीं दिखाई देता। कम-से-कम एक विशेष स्तर तक तो ऐसा ही लगता है। बहुत कम देश ऐसे रहे हैं, जो मुख्यतः कृषि के बल पर ही संपन्न बने हैं। ऐसे देशों में कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड जैसे कुछ देशों के नाम ही सामने आते हैं। शोध से यह भी पता चला है कि जहां कुल सकल घरेलू उत्पादन में उद्योगों का हिस्सा सबसे तेज गति से बढ़ता है, वहां सकल घरेलू उत्पाद का विकास भी अपेक्षाकृत तेजी से बढ़ता है। यहीं पर कैलडोर (Kaldor) के विकास सिद्धांतों पर एक नजर डालना उपयुक्त रहेगा। ये सिद्धांत विकसित तथा विकासशील देशों में व्यापक तौर पर आजमाए जा चुके हैं। इनके अनुसार—(i) सकल घरेलू उत्पाद के विकास तथा विनिर्मित उत्पाद के विकास के बीच परस्पर गहरा सकारात्मक संबंध; (ii) विनिर्माण में उत्पादकता के विकास तथा विनिर्माण उत्पादन के विकास के बीच परस्पर गहरा सकारात्मक संबंध, तथा; (iii) विनिर्माण से इतर उत्पादकता के विकास तथा विनिर्माण उत्पादन के बीच परस्पर गहरा सकारात्मक संबंध होना आवश्यक है।

अपरिहार्य सरकारी हस्तक्षेप

प्रश्न उठता है कि, विकासशील देश अपने यहां प्रगति और विकास की रफ्तार बढ़ाने के लिए ऐसे क्या ढांचागत बदलाव लाएं, जो औद्योगिक गतिविधियों के अनुकूल हों? स्पष्ट है कि, प्रत्येक वस्तु बाजारी तत्वों के भरोसे छोड़ी नहीं जा सकती, आखिर शासन या सरकारी हस्तक्षेप का कुछ तो महत्व है और किन्हीं मामलों में यह आवश्यक भी होता है। विकास के लिए औद्योगीकरण जरूरी है तथा इसे व्यावहारिक रूप देने के लिए थोड़ी सुरक्षा तो आवश्यक है ही। आज कई राष्ट्र विकसित देशों की श्रेणी में गिने जाते हैं; लेकिन, इन सभी ने औद्योगीकरण के प्रारंभिक दौर में अपने उद्योगों को किसी-न-किसी रूप में संरक्षण दिया था। यहां तक कि दक्षिण-पूर्व एशिया के सफल देशों में भी बैंकिंग पद्धति के रूप में राज्य का अत्यधिक हस्तक्षेप रहा है।

संवृद्धि एवं विकास मापन

1. प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद का पैमाना

विकसित और विकासशील देशों के बीच विकास के अंतर को मापने का एक पैमाना या मानदंड प्रतिव्यक्ति आय भी है। इस तुलना के लिए हर देश की आय को स्थानीय मुद्रा से प्रचलित साझा या अंतरराष्ट्रीय मुद्रा में परिवर्तित किया जाता है, जो आम तौर पर अमेरिकी डॉलर में होती है तथा इस परिवर्तित राशि को उस देश की जनसंख्या से भाग देकर वहां की प्रतिव्यक्ति आय निकाल ली जाती है। मुद्रा परिवर्तन की इस प्रणाली को 'विनिमय दर पद्धति' (एक्सचेंज रेट मैथड) कहा जाता है।

1960 और 1970 के दशकों में प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद की विकास दर को विकास के आर्थिक सूचकांक के तौर पर प्रयोग में लाया जाता था। इसका उपयोग यह जानने के लिए किया जाता था कि किसी देश में अपनी जनसंख्या वृद्धि दर के मुकाबले उसकी उत्पादन दर अपेक्षाकृत तेज गति से बढ़ाने की क्षमता कैसी है। वास्तविक प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद का पैमाना अभी भी यह जानने के लिए मोटे तौर पर इस्तेमाल किया जाता है कि एक औसत नागरिक को मूल उत्पाद तथा अन्य सेवाएं और सुविधाएं कहां तक उपलब्ध हैं?

प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद को विकास के पैमाने के रूप में उपयोग करने में कुछ बड़ी समस्याएं सामने आती हैं। इसमें जीविका या भरण-पोषण से जुड़ी गैर-बाजारीकृत वस्तुएं (नॉन मार्केटेड सब्सिसटेंस प्रोडक्शन, जिन्हें किसान अपने उपभोग के लिए रख लेता है), गृहिणी का श्रम एवं कल्याण तथा आय वितरण के आधार जैसे मुद्दे शामिल नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त अधिकांश विकासशील देशों में आय संबंधी सही-सही नकारियां या रिपोर्ट प्राप्त करने में भी कई समस्याएं हैं। फिर विनिमय दरों में ी देशों की बहुत-सी वस्तुओं के मूल्य सही-सही परिलक्षित नहीं होते। आधारिक ना तथा अन्य कई सेवाओं, जैसे—गैर-व्यापारीय आइटम के मूल्य भी विनिमय को प्रभावित नहीं करते। अतः विनिमय दरों के आधार पर सभी देशों की को डॉलर में परिवर्तित करने से गरीब देशों की आय का सही मूल्यांकन नहीं ा।

2. क्रय-शक्ति समानता पद्धति

प्रतिव्यक्ति आय पद्धति की विसंगति दूर करने के लिए 'पी.पी.पी. मैथॅड' अर्थात् क्रय-शक्ति समानता पद्धति का विकास किया गया। इसके तहत प्रतिव्यक्ति आय का आकलन वहां की क्रय-शक्ति समानता के आधार पर किया जाता है।

इस पद्धति के अंतर्गत बहुत-सी वस्तुओं तथा सेवाओं की सूची तैयार कर विभिन्न देशों में ऐसी प्रत्येक वस्तु और सेवा के औसत मूल्य के आधार पर उनके अंतरराष्ट्रीय मूल्य निर्धारित किए जाते हैं। इसके बाद इन अंतरराष्ट्रीय मूल्यों के अनुसार संबंधित देश के उत्पादों का मूल्यांकन करके वहां की राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया जाता है। यह पद्धति किसी भी देश के लिए वहां के उत्पाद के अंतरराष्ट्रीय मूल्यन की तुलना में घरेलू मुद्रा व्यय के औसत का काम करती है। डॉलर में आंकी गई क्रय-शक्ति समानता (पी.पी.पी.) के आधार पर विकासशील देश, विकसित देशों के मुकाबले बेहतर स्थिति में दिखते हैं, बजाय इसके कि, जब प्रति व्यक्ति विशुद्ध सकल राष्ट्रीय उत्पाद को पैमाने के तौर पर इस्तेमाल किया जाए।

3. मानव विकास के अभिसूचक

समय के साथ यह अनुभव किया गया कि प्रति व्यक्ति आकलन आर्थिक विकास को सही रूप में परिलक्षित नहीं करते। यह सोचा गया कि दूरगामी लाभ समग्र रूप में तथा प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पाद या तो लोगों को नौकरी तथा अन्य लाभकारी अथवा आर्थिक अवसरों में खप जाएंगे या फिर ऐसी परिस्थितियां तैयार करेंगे, जिनमें विकास के आर्थिक और सामाजिक लाभों का व्यापक वितरण हो सके। लेकिन, हर बार ऐसा नहीं होता था। प्रति व्यक्ति ऊंचे सकल राष्ट्रीय उत्पाद अथवा पी.पी.पी. का अर्थ स्वास्थ्य तथा शिक्षा जैसे विकास के सामाजिक-आर्थिक पैमानों में समान प्रगति अथवा कल्याण से नहीं था। 1960 के दशक में यह देखा गया कि बहुत-से विकासशील देशों ने प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद के पैमाने पर विकास के मोर्चे पर काफी सफलता प्राप्त की, लेकिन सामाजिक-आर्थिक विकास की दृष्टि से वे उन कुछ देशों से पीछे रहे जिनका सकल राष्ट्रीय उत्पाद नीचा रहा था। अतः विकास को मापने अथवा उसका मूल्यांकन करने के लिए कुछ नए अभिसूचक तैयार किए गए।

जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचकांकः 1980 के दशक में मौरिस ने जीवन की भौतिक गुणवत्ता के अभिसूचक (फिजिकल क्वालिटी ऑफ लाइफ इंडेक्स = पी. क्यू.एल.आई.) के विकास का काम शुरू किया।

एक सरल संश्लिष्ट अभिसूचक (पी.क्यू.एल.आई.) तैयार करने के लिए 1 वर्ष की आयु में जीवन की प्रत्याशा, शिशु-मृत्यु दर तथा साक्षरता सहित तीन संकेतकों का प्रयोग किया गया है।

एक से सौ तक के पैमाने पर जीवनावधि, शिशु मृत्यु-दर तथा साक्षरता प्रतिशत ज्ञात कर लेने के बाद तीनों दरों को समान महत्व देते हुए उनके औसत द्वारा उस देश का संश्लिष्ट अभिसूचक निकाल लिया गया।

इस पद्धति से आकलन करने के बाद यह तथ्य सामने आया कि प्रतिव्यक्ति निम्न सकल राष्ट्रीय उत्पाद वाले अधिकांश देशों का पी.क्यू.एल.आई. भी नीचा ही रहता है, जबकि प्रतिव्यक्ति उच्च सकल राष्ट्रीय उत्पाद वाले देशों का पी.क्यू.एल. आई. भी ऊंचा रहता है, हालांकि, इनके सकल राष्ट्रीय उत्पाद तथा पी.क्यू.एल.आई. के बीच परस्पर उतना घनिष्ठ संबंध नहीं होता। लेकिन, पी.क्यू.एल.आई. भी एक संपूर्ण पैमाना नहीं बन सका। उसकी सबसे बड़ी कमजोरी यह रही कि इसमें 'जीवन की गुणवत्ता' के अंतर्गत गिनी जाने वाली विशेषताएं शामिल नहीं थीं। 'जीवन की गुणवत्ता' में सुरक्षा, न्याय, तथा मानवाधिकार आदि विशेषताएं शामिल हैं। अतः इस कमी को पूरा करने के लिए 1990 में 'मानव विकास सूचकांक' यानी ह्यूमन डेवलपमेंट इंडेक्स (एच.डी.आई.) तैयार किया गया।

मानव विकास सूचकांकः यह सूचकांक अथवा इंडेक्स, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के अंतर्गत संयुक्त राष्ट्र द्वारा हर वर्ष तैयार किया जाता है। यह तीन अलग-अलग संकेतकों पर आधारित है—(i) आवश्यक उत्पादों तथा सेवाओं से मिली संतुष्टि के मूल्यांकन के लिए प्रतिव्यक्ति आय; (ii) स्वास्थ्य और पोषण, शिशु मृत्यु-दर तथा अन्य क्षेत्रों में हुई प्रगति को मापने के लिए जीवन प्रत्याशा—एक सामाजिक संकेतक, तथा; (iii) शैक्षिक स्तर, जिसके बारे में बच्चों द्वारा स्कूलों में बिताए गए वर्षों से आकलन किया जा सकता है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

मानव विकास सूचकांक (HDI) में तीन आधारभूत सूचकांक प्रयोग में लाए जाते हैं। वर्ष 2010 से निम्नलिखित संकेतकों को माना गया।

एचडीआई के स्वास्थ्य आयाम का मूल्यांकन जन्म के समय जीवन प्रत्याशा द्वारा किया जाता है। इसके शैक्षिक पक्ष का मापन 25 वर्ष या उससे अधिक आयु के व्यस्कों के विद्यालय में शिक्षा के वर्षों द्वारा, एवं विद्यालय में दाखिला लेने की आयु में आ चुके बच्चों द्वारा अपेक्षित स्कूली शिक्षा के वर्षों के औसत/मध्यमान द्वारा किया जाता है। इस प्रकार शिक्षा का मापन दो स्तरों पर किया जाता है। जीवन स्तर आयाम (Standard of living dimension) को प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (GNI) द्वारा मापा जाता है। बढ़ती सकल राष्ट्रीय आय के साथ, आय की घटती हुई महत्ता को दर्शाने के लिए मानव विकास सूचकांक आय का लघुगणक (logarithm of Income) प्रयोग में लाया जाता है। फिर तीनों एचडीआई आयाम की सूचियों के प्राप्तांकों को ज्यामितिय मध्यक (geometric means) के माध्यम से एक संयोजित सूची में जोड़ दिया जाता है।

एचडीआई की गणना हेतु ज्यामितिय मध्यक का सर्वप्रथम प्रयोग 2010 में किया गया। किसी भी आयाम में घटिया प्रदर्शन इस ज्यामितिय मध्यक में प्रत्यक्ष रूप से प्रतिबिंबित हो जाता है। अब किसी एक पक्ष में निम्न उपलब्धि की रेखांगत रूप से क्षतिपूर्ति किसी अन्य पक्ष में हुई उच्च उपलब्धि द्वारा नहीं की जा सकती है। ज्यामितिय मध्यक ने विभिन्न पक्षों में स्थानापन्नता के स्तर को काफी कम कर दिया है। उदाहरण के लिए अब यह सुनिश्चित हो गया है कि जीवन प्रत्याशा सूचकांक में यदि एक प्रतिशत की कमी होगी तो उसका मानव विकास सूचकांक पर उतना ही प्रभाव पड़ेगा, जितना कि आय अथवा शिक्षा सूचकांक में एक प्रतिशत कमी होने पर होगा। अतः, उपलब्धियों की तुलना के आधार के रूप में, यह विधि एक साधारण औसत की अपेक्षा सभी पक्षों की स्वाभाविक भिन्नताओं को लेकर अधिक सचेत है।

मानव विकास सूचकांक में प्रति व्यक्ति आय की भूमिका को जानबूझ कर कम किया गया है। ऐसा अधिकतम मूल्य की सीमा 75,000 डॉलर प्रति वर्ष तक निर्धारित करके किया गया है। अधिकतम मूल्य 75,000 डॉलर निर्धारित करने का अर्थ यह है कि जिन देशों की सकल राष्ट्रीय आय 75,000 डॉलर से अधिक है, तो केवल प्रथम 75,000 डॉलर की गणना ही मानव विकास के लिए की जाएगी। इस विधि द्वारा एचडीआई के निर्धारण में अधिक आय की भूमिका के प्रभुत्व को रोका जा सकता है। (हालांकि इस जोड़-तोड़ के बावजूद भी, प्रति व्यक्ति आय एवं समग्र एचडीआई के बीच उच्च पारस्परिक सह-संबंध अत्यन्त स्पष्ट रहता है: इसका कारण संभवतः यह हो सकता है कि आर्थिक वृद्धि अन्य आयामों के विकास को गति देने के लिए ठोस आधार प्रदान करती है।)

एचडीआई सशक्तिकरण आंदोलनों अथवा सुरक्षा की समग्र अनुभूति जैसे कारकों विशेष रूप से गुणवत्तापरक जीवन को प्रदर्शित नहीं करता। इन पहलुओं की पहचान के लिए, मानव विकास रिपोर्ट कार्यालय अब असमानता संबंधित मामलों सहित, जीवन के अन्य पहलुओं, के मूल्यांकन हेतु कुछ अतिरिक्त संयोजित सूचियां उपलब्ध कराता है।

बहुआयामी गरीबी सूचकांक: वैश्विक बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI) वर्ष 2010 में, ऑक्सफोर्ड गरीबी एवं मानव विकास इनिशिएटिव (OPHI) तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) द्वारा विकसित किया गया। इसने पूर्ववर्ती मानव गरीबी सूचकांक (HPI) को प्रतिस्थापित किया जो कि 1997 से 2009 के मानव विकास प्रतिवेदनों में प्रकाशित होता रहा है।

इस सूचकांक ने उन्हीं तीन आयामों, नामतः स्वास्थ्य, शिक्षा तथा जीवन स्तर का प्रयोग किया, जिनका प्रयोग एचडीआई ने भी किया। बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI) इन तीन आयामों एवं 10 सूचकों में उपस्थित अभावों को चिन्हित करता है। ये सूचक हैं: स्वास्थ्य (शिशु मृत्यु दर, पोषण); शिक्षा (स्कूली शिक्षा के वर्ष, नामांकन); तथा जीवन स्तर (जल, सफाई, विद्युत, खाना पकाने का ईंधन, घर, संपत्ति)। एमपीआई तीन आयामों के संदर्भ में विभिन्न वंचनाओं को प्रदर्शित करता है जिनका प्रत्येक निर्धन व्यक्ति सामना करता है। एमपीआई बहुआयामी गरीबी की व्यापकता तथा गहनता दोनों को प्रदर्शित करता है। व्यापकता (Incidence) से यहां अर्थ है—जनसंख्या में बहुआयामी रूप से निर्धन लोगों का अनुपात, जोकि भारित सूचकों (Weighted Indicators) के 33 प्रतिशत अथवा अधिक वंचनाओं का सामना करते हैं। गहनता (Intensity)) से यहां अर्थ है कि किसी समय विशेष में प्रत्येक गरीब द्वारा अनुभव किए गए अभावों की औसत संख्या। इन दोनों के द्विगुणन द्वारा हमें बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI) का परिमाण प्राप्त होता है।

एमपीआई (MPI) का प्रयोग गरीबी में रह रहे लोगों की व्यापक तस्वीर पेश करने, विभिन्न देशों, विश्व के विभिन्न क्षेत्रों, तथा देशों के अंतर्गत मौजूद प्रजातीय समूहों, ग्रामीण/शहरी स्थिति, अन्य महत्वपूर्ण पारिवारिक एवं सामुदायिक अभिलक्षणों के बीच तुलनाओं को करने के लिए किया जा सकता है। यह संसाधनों के प्रभावी आवंटन में सहायता करता है क्योंकि इसके द्वारा अत्यधिक गहन गरीबी वाले लोगों को लक्षित करना संभव हो जाता है। यह रणनीतिक रूप से सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों (MDGs) को संबोधित करने तथा नीतिगत हस्तक्षेप के प्रभावों की निगरानी करने में सहायता कर सकती है। एमपीआई का उपयोग राष्ट्रीय स्तर पर भी किया जा सकता है। इसके लिए ऐसे संकेतकों तथा विशिष्ट भारकों (Weights) का प्रयोग किया जा सकता है जो देश अथवा प्रदेश के हिसाब से उचित हो। इसका प्रयोग राष्ट्रीय गरीबी उन्मूलन योजनाओं में भी किया जा सकता है; तथा इसे समय के साथ परिवर्तनों के अध्ययन हेतु भी किया जा सकता है।

असमानता-समायोजित मानव विकास सूचकांक: इसके तहत् न केवल स्वास्थ्य, शिक्षा तथा आय के आधार पर देश के औसत मानव विकास की जानकारी प्राप्त होती है अपितु इसके वितरण के बारे में भी पता लगता है। एचडीआर 2010 में एचडीआई तथा आईएचडीआई के बीच अंतर करते हुए कहा गया है कि किसी भी समाज में यह माना जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति का एक 'वैयक्तिक एचडीआई' प्रत्येक वैयक्तिक एचडीआई के बराबर है (अर्थात् औसत व्यक्ति का एचडीआई है)। परंतु वास्तविक जगत में विभिन्न लोगों के बीच अंतर होते हैं तथा औसत एचडीआई वैयक्तिक एचडीआई स्तरों से अलग होता है। एचडीआई में प्रत्येक आयाम के औसत मूल्य में असमानता के अनुसार कटौती की जाती है। इस प्रकार एचडीआई की गणना में आयु संभावना, स्कूलों में व्यतीत वर्षों तथा आय में असमानताओं को शामिल किया जाता है। यदि लोगों के बीच कोई असमानता न हो तो आईएचडीआई, एचडीआई के बराबर होगा। परंतु जैसे-जैसे असमानता में वृद्धि होगी, आईएचडीआई, एचडीआई से और नीचे चला जाएगा।

लिंग-असमानता सूचकांक: मानव विकास रिपोर्ट 1995 में दो विश्वव्यापी लिंग सूचकांक शामिल किए गए—लिंग संबंधित विकास सूचकांक तथा लिंग शक्तिकरण माप (जीईएम)। लिंग संबंधित विकास सूचकांक (जीडीआई) में उपलब्धियों का उन्हीं मूलभूत-आयामों द्वारा माप करने का प्रयास किया गया जिन्हें एचडीआई में शामिल किया गया था अर्थात् जीवन संभावना, ज्ञान की उपलब्धि तथा आय, परंतु इसमें एचडीआई का लिंग-अनुसार समायोजन किया गया। मूलभूत मानव विकास में जितनी लिंग-असमानता होगी, देश का जीडीआई, एचडीआई की तुलना में उतना ही कम होगा। लिंग शक्तिकरण माप (जीईएम) की सहायता से यह जानने का प्रयास किया गया कि क्या महिलाएं आर्थिक व राजनैतिक जीवन में पूरी तरह हिस्सा ले पाती हैं अथवा नहीं।

असमानता सूचकांक के रूप में, लैंगिक असमानता सूचकांक (GII), को मानव विकास के तीन महत्वपूर्ण पक्षों में लैंगिक असमानताओं का मापन करता है। ये पक्ष हैं—प्रजनन स्वास्थ्य (Reproductive Health), इसका मापन मातृ मृत्यु दर अनुपात तथा किशोर जन्म दर द्वारा किया जाता है; सशक्तिकरण (Empowerment), इसका मापन महिलाओं द्वारा संसद में प्रतिनिधित्व का अनुपात तथा 25 वर्ष या उससे अधिक आयु के ऐसे पुरुषों व व्यस्क महिलाओं का अनुपात जिन्होंने कम-से-कम माध्यमिक शिक्षा तो प्राप्त की हो; आर्थिक प्रस्थिति (Economic Status), इसको श्रम बाजार में भागीदारी के रूप में प्रदर्शित किया जाता है तथा इसका मापन 15 वर्ष व इससे अधिक के पुरुषों व महिलाओं के श्रम बल भागीदारी दर से किया जाता है। IHDI की ही रूपरेखा पर बने जीआईआई (GII) को इस प्रकार से अभिकल्पित किया गया जिससे महिलाओं और पुरुषों के बीच उपलब्धियों के वितरण में मतभेद को भलीभांति प्रकट कर सके। यह लैंगिक असमानता की मानव विकास लागतों का मापन करता है: जितना अधिक लैंगिक असमानता सूचकांक (GII) का मान होगा उतनी ही अधिक महिलाओं तथा पुरुषों के बीच विषमता होगी, तथा उतनी ही अधिक मानव विकास की क्षति होगी।

भारत के मामले में, आलोचकों के अनुसार, मात्र संसदीय प्रतिनिधित्व द्वारा

SPECTRUM

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

सशक्तिकरण को मापना ही सटीक तस्वीर नहीं देता, क्योंकि यह स्थानीय स्तर पर महिलाओं की महत्वपूर्ण भागीदारी की उपेक्षा करता है।

1. ग्रीन जीडीपी

हरित सकल घरेलू उत्पाद (ग्रीन जीडीपी) आर्थिक संवृद्धि का एक सूचकांक है जिसमें परम्परागत सकल घरेलू उत्पाद की गणना आर्थिक गतिविधियों की पर्यावरणीय लागत के संदर्भ में की जाती है। यह एक मापन है जो बताता है कि एक देश सतत् आर्थिक विकास के लिए किस प्रकार तैयार है। ग्रीन जीडीपी जैवविविधता की हानि का मुद्रीकरण करती है और जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पन्न लागत का लेखा-जोखा करती है। कुछ पर्यावरणीय विशेषज्ञों के अनुसार, प्रति व्यक्ति अपशिष्ट या प्रति वर्ष कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन जैसे भौतिक संकेतकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

पारम्परिक रूप से राष्ट्रीय आय का आकलन 'किसी देश में एक निश्चित समयावधि के भीतर अंतिम रूप से उपभोग के लिए उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के मौद्रिक मूल्य के योग' के रूप में किया जाता है लेकिन इसमें किसी भी स्तर पर इस तथ्य पर विचार नहीं किया जाता कि प्राथमिक वस्तुओं के उत्पादन में प्राकृतिक संसाधनों की कितनी मात्रा प्रयुक्त की गई है? या द्वितीयक/तृतीयक क्षेत्रों के उत्पादन की प्रक्रिया में जीवाश्म ईंधन को जलाने से पर्यावरण को कितनी और किस सीमा तक क्षति पहुंची है? जिन प्राकृतिक संसाधनों को विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन हेतु प्रयुक्त किया गया है उनकी वास्तविक लागत क्या है? या उत्पादन प्रक्रिया के दौरान प्राकृतिक संसाधनों—जल, वायु, वन, पहाड़, समुद्र आदि को जो क्षति हुई है उसकी क्षतिपूर्ति की लागत कितनी है? इस प्रकार राष्ट्रीय आय की गणना में पारम्परिक रूप से ऐसी अनेक आगतों को छोड़ दिया जाता है, जो राष्ट्रीय आय में वर्ष दर वर्ष योगदान देते हैं। राष्ट्रीय आय लेखा में पारिस्थितिकी प्रणाली से प्राप्त सेवाओं और वस्तुओं के प्रवाह में होने वाले परिवर्तनों पर विचार ही नहीं किया जाता। जब किसी देश में प्राकृतिक पूंजी का अपक्षय हो जाता है, तो उसका आकलन पूंजी ह्रास के रूप में राष्ट्रीय आय लेखांकन में किया जाना चाहिए, लेकिन ऐसा किया नहीं जाता।

इस प्रकार पारम्परिक सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी.एन.पी.) के आकलन में पारिस्थितिकी प्रणाली के अनेक घटकों जैसे कि भूमि की उर्वरा शक्ति, आर्द्र प्रदेशों की जैव-पुनर्मध्यस्थता, फसलों के परागण, कार्बन को अलग-थलग करना, वनों द्वारा मृदा क्षरण की रोकथाम तथा मैंग्रोव द्वारा आंधियों और बाढ़ की रोकथाम आदि की उपेक्षा की जाती है।

अतः 'ग्रीन जी.एन.पी.' एक दी हुई समयावधि में प्रति व्यक्ति उत्पादन की वह अधिकतम सम्भावी मात्रा है, जोकि देश की प्राकृतिक सम्पदा को स्थिर बनाए रखते हुए प्राप्त की जा सकती है। 1995 ई. में ग्रीन जी.एन.पी. प्रारंभ किया गया था एवं इसमें अभी तक 192 देशों को शामिल किया गया है। आस्ट्रेलिया व इथियोपिया का ग्रीन जी.एन.पी. की सूची में प्रथम व अंतिम स्थान है, जबकि भारत का 173वां स्थान है।

[ग्रीन जी.एन.पी. ⇒ कुल वृद्धि – प्राकृतिक (पर्यावरणीय) ह्रास]

वर्ष 2004 में तत्कालीन चीन के प्रधानमंत्री वेन जियाबाओं ने घोषणा की कि, चीन जीडीपी सूचकांक के स्थान पर ग्रीन जीडीपी सूचकांक का प्रयोग करेगा। इसके अनुरूप, चीन की 2004 के लिए पहली ग्रीन जीडीपी लेखांकन रिपोर्ट सितम्बर, 2006 में प्रकाशित हुई। इसने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के प्रतिशत के तौर पर प्रदूषण के कारण वित्तीय हानि को प्रदर्शित किया। हालांकि, चीन द्वारा राष्ट्रीय लेखांकन में ग्रीन जीडीपी प्रयोग को 2007 में बंद कर दिया गया, जब यह स्पष्ट हुआ कि पर्यावरणीय क्षति समायोजन ने राजनीतिक रूप से अस्वीकार्य स्तर तक संवृद्धि दर तक घटा दिया, ग कुछ प्रांतों में शून्य तक हो गई।

भारत में, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) पर्यावरण संबंधी लेखा करता है। इस प्रक्रिया को पर्यावरण ऑडिट के संचालन के लिए 2002 में दिशा-निर्देशों की शुरुआत के साथ औपचारिक रूप दिया गया था। व्यापक देश दिए गए हैं जो, भारत के लेखा परीक्षकों को यह जांचने की शक्ति प्रदान के क्या लेखांकन किए गए संस्थान घोषित सतत् विकास एवं पर्यावरणीय जहां अधिपात्रित है, संबंधी प्रयासों पर वांछित ध्यान दे रहे हैं। इस प्रकार, र्यावरण अंकेक्षण, अनुपालन लेखा परीक्षा तथा निष्पादन लेखा परीक्षा के व्यापक ढांचे के अंतर्गत केंद्र स्तर पर प्रधान लेखा परीक्षा निदेशक कार्यालय (विज्ञान विभाग) और राज्य स्तर पर राज्य महालेखाकार द्वारा किया जाता है, तथा राज्य स्तर पर यह राज्य के महालेखापाल (Accountant General) द्वारा किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में, अधिक से अधिक राज्यों ने पर्यावरण लेखा परीक्षा को अपना लिया है। ये सभी रिपोर्ट पानी के मुद्दों, वायु प्रदूषण, अपशिष्ट, जैव विविधता तथा पर्यावरण प्रबंधन प्रणाली के पर्यावरण विषयों के साथ संव्यवहार करती हैं।

जुलाई 2013 में, उत्तराखण्ड देश का ऐसा पहला राज्य था तथा जिसने एक 'सकल पर्यावरण उत्पाद (GEP) राज्य के प्राकृतिक संसाधनों की एक मापन प्रणाली को तालिकाबद्ध करने का फैसला किया, जो हर वर्ष जीडीपी के आंकड़ों के साथ जारी किया जाएगा। नवीन हरित मानकों का निरूपण इस उद्देश्य से किया गया कि यह राज्य के ग्लेशियरों, जंगलों, नदियों, हवा की गुणवत्ता, मिट्टी, आदि की स्थिति पर वार्षिक रूप से नूतन जानकारी दे सके। ये आंकड़े राज्य के पर्यावरण के संबंध में आर्थिक गतिविधियों का संकेत तो दे ही सकते हैं साथ-साथ संरक्षण रणनीति के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण भी बन सकता है। यह निर्णय राज्य में आई विनाशकारी बाढ़ के बाद लिया गया था। परन्तु कुछ भी ठोस कार्य धरातल पर दिखाई नहीं दिया। फिर 2016 में यह कहा गया कि राज्य का आर्थिक व सांख्यिकी विभाग सकल पर्यावरण उत्पाद (GEP) की गणना करने के लिए अध्ययन करेगा तथा राज्य के हरित लेखांकन (Green Accounting) की रूपरेखा प्रदान करेगा, एक ऐसी वृहद रूपरेखा बनाने पर भी चर्चाएं हुई हैं जिसमें हवा, पानी, नदियों, ग्लेशियरों, मत्स्य पालन, भूमि, आर्द्रभूमि तथा खनिज के मुद्रीकरण की बात रखी गई जिससे राज्य अपनी प्राकृतिक पूंजी का लेखा-जोखा रख सके।

हरित राष्ट्रीय लेखांकन पर पार्थादास गुप्ता समिति: हरित लेखांकन पर पर्यावरणीय अर्थशास्त्री केनेथ ऐरो के विचार अत्यधिक उपयोगी व सटीक हैं। केनेथ ऐरो व पार्थादास गुप्ता के अनुसार भारत की वास्तविक हरित आर्थिक विकास दर अपने वर्तमान स्तर 5.3 प्रतिशत से 2.5-3.0 प्रतिशतांक तक कम हो सकती है यदि हरित लेखांकन में पर्यावरणीय घटकों तथा मानव की खुशहाली को भी शामिल कर लिया जाए, तो इस तथ्य को सिद्धांततः स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने पार्थादास गुप्ता की अध्यक्षता में हरित निवल राष्ट्रीय उत्पाद (जी.एन.एन.पी.) के आकलन हेतु कार्यविधि एवं मानकों के निर्धारण हेतु सुझाव देने के लिए विशेषज्ञ समूह का गठन अगस्त 2011 में किया। गौरतलब है कि पार्थादास गुप्ता कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के पर्यावरणीय अर्थशास्त्री हैं। इस समूह से अपेक्षा की गई कि वह जैव-विविधता तथा पारिस्थितिकी प्रणाली सेवाओं पर आर्थिक संवृद्धि के प्रभावों का मापन करेगा। पारिस्थितिकी प्रणालियों के मूल्य निर्धारण से संबंधित आंकड़े जुटाना यद्यपि एक अति दुरूह कार्य है, तथापि इससे सरकार को सम्पोषणीय दृष्टि से बेहद कारगर निर्णय लेने में मदद मिलेगी। गौरतलब है कि वर्ष 2015 तक केंद्र सरकार न केवल सामान्य रूप से समझे जाने वाले वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद के आंकड़े और तथ्य जारी करेगी, अपितु पर्यावरणीय लागतों तथा उसके प्रभावों पर विचार करते हुए संशोधित सकल घरेलू उत्पाद के भी आंकड़े जारी किए जाएंगे।

समिति ने अपनी रिपोर्ट अप्रैल 2013 में सौंप दी। रिपोर्ट ने राष्ट्रीय लेखांकन के नए आयाम का आह्वान किया है। दासगुप्ता रिपोर्ट ने दो महत्वपूर्ण अनुशंसाएं की हैं।

पहला, इसने हमारे राष्ट्रीय लेखांकन में नए प्रकार की पूंजी को शामिल करने का आह्वान किया है। परम्परागत राष्ट्रीय लेखा में केवल भौतिक पूंजी (इसे विनिर्मित या पुनर्उत्पादित पूंजी भी कहा गया) की ही गणना की गई। रिपोर्ट में राष्ट्रीय संपत्ति और मानव संपत्ति, जो जनसंख्या के कौशल एवं सुख समृद्धि के साथ-साथ प्राकृतिक संपत्ति—राष्ट्रीय पारिस्थितिकी, भूमि, जल एवं मृदा संसाधन इत्यादि हैं, दोनों ही विचारों को शामिल करने का आह्वान किया गया है। दूसरे, रिपोर्ट ने आर्थिक संवृद्धि का एक नया आयाम प्रस्तावित किया है, जिसे प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद संवृद्धि के स्थान पर प्रति व्यक्ति संपत्ति में संवृद्धि के तौर पर परिभाषित किया ग है। यह संभव है, उदाहरणार्थ, कि वन संसाधन से समृद्ध लकड़ी का निर्यात क वाला देश के प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद में प्रभावी रूप से वृद्धि हो रही जबकि इसकी प्रति व्यक्ति संपत्ति घट रही हो, क्योंकि इसकी प्राकृतिक संपत्ति जीडीपी संवृद्धि के लिए विनष्ट किया जा रहा है।

रिपोर्ट इस नए आयाम पर विचार विमर्श एवं तर्क प्रस्तुत करती है, जह

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

प्रति व्यक्ति संपत्ति में परिवर्तन के विचार को शामिल करते हैं। प्रति व्यक्ति संपत्ति पीढ़ी दर पीढ़ी एक देश के नागरिकों की खुशहाली का मापन करती है जबकि प्रति व्यक्ति जीडीपी ऐसा नहीं करती। आखिरकार, इसके द्वारा हम जानते हैं कि अपनी संवृद्धि की हमने बतौर प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण की कितनी कीमत चुकाई है।

राष्ट्रीय संपत्ति के मूल्य का आकलन एक दुरूह कार्य है। हम, उदाहरणार्थ, भारत के वनाच्छादन की मात्रा को विश्वसनीय तौर पर जान सकते हैं, लेकिन यह तुलनात्मक रूप से जानना मुश्किल है कि इस वनाच्छादन द्वारा प्रदान की गई सेवाओं की कीमत या मूल्य कितना है, जिसकी इस नई युक्ति एवं उपागम में आवश्यकता है। यह रिपोर्ट कठिनाइयों को समझती है और इन युक्तियों के क्रियान्वयन हेतु एवं दीर्घावधिक रोड मैप प्रस्तुत करती है।

5. सकल राष्ट्रीय खुशहाली

भूटान के तत्कालीन राजा, जिग्मे सिंग्ये वांगचुक, ने 1972 में सकल राष्ट्रीय खुशहाली (जीएनएच) को सामने रखा। उन्होंने इस युक्ति का प्रयोग एक ऐसी अर्थव्यवस्था के निर्माण, जो बौद्ध धर्म के आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित भूटान की अद्वितीय संस्कृति का पल्लवन करेगी, के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जाहिर करने के लिए की। जीएनएच में चार आधारभूत तत्व शामिल हैं, नामतः आर्थिक आत्मनिर्भरता, स्वच्छ पर्यावरण, देश की संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्द्धन, और सुशासन (लोकतंत्र)। भूटान के योजना आयोग का नाम अब सकल राष्ट्रीय खुशहाली आयोग है। भूटान में किसी भी परियोजना के अनुमोदन से पहले उसे जीएनएच प्रभाव मूल्यांकन उत्तीर्ण करना होता है। जीएनएच प्रक्रिया के एक हिस्से के तौर पर देश का शासन 'लोकतांत्रिक सवैधानिक राजतंत्र' में परिवर्तित किया गया।

GNH की अवधारणा, जिसके कि आरंभ में चार स्तंभ थे, में अब नौ और क्षेत्र सम्मिलित किए गए हैं। ऐसा जीएनएच (GNH) के बारे में व्यापक समझ बनाने तथा जीएनएच के मूल्यों की समग्र शृंखला को प्रतिबिम्बित करने हेतु किया गया। ये नौ क्षेत्र हैं मनोवैज्ञानिक कल्याण, स्वास्थ्य, शिक्षा, समय का उपयोग, सांस्कृतिक विविधता व लचीलापन, सुशासन, सामुदायिक जीवन, पारिस्थितिक विविधता एवं समृद्धि, तथा जीवन स्तर। ये डोमेन भूटान के लोगों के कल्याण के प्रत्येक घटक को प्रदर्शित करता हैं। 'कल्याण' (wellbeing) शब्द से यहां तात्पर्य सकल राष्ट्रीय खुशी (Gross National Happiness) की अवधारणा द्वारा निर्धारित मूल्यों व सिद्धांतों के अनुरूप 'अच्छे जीवन' की संतोषप्रद दशाओं अथवा शर्तों से है।

जीएनएच (GNH) सूचकांक, एकल सूचकांक के रूप में उन 33 संकेतकों से तैयार किया गया है जो नौ डोसेन के अंतर्गत वर्गीकृत हैं। जीएनएच सूचकांक का निर्माण एक बहुआयामीय पद्धति, जिसे एलकायर-फॉस्टर (Alkire-Foster) विधि कहा जाता है, के आधार पर किया गया है।

जुलाई 2011 में, संयुक्त राष्ट्र संघ ने भूटान द्वारा प्रायोजित एक प्रस्ताव को अनुमोदित किया, जिसका शीर्षक था 'हैप्पीनेसः टुवर्डस ए होलिस्टिक अप्रोच टु डवलपमेंट'। इस प्रस्ताव को 68 देशों ने सह-प्रायोजित किया। इसने घोषित किया कि खुशी एक आधारभूत मानवीय लक्ष्य है तथा सार्वभौमिक आकांक्षा है; उत्पादन व खपत की अव्यवहारिक पद्धति टिकाऊ विकास में बाधक है; तथा कल्याण व खुशी को बढ़ाने, गरीबी उन्मूलन एवं स्थिरता वृद्धि हेतु एक समावेशी न्यायसंगत व संतुलित दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

द वर्ल्ड हैपीनेस रिपोर्ट, खुशी के आंकलन हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ सतत् विकास समाधान नेटवर्क (United Nations Sustainable Development Solutions Network) द्वारा प्रकाशित की गई। रिपोर्ट के अनुसार खुशी के न्यूनतम सात मौलिक तत्व बताए गए: सबसे ज्यादा खुश देशों में रहने वाले लोगों में अधिक जीवन प्रत्याशा होती है, अधिक सामाजिक समर्थन होता है, जीवन के निर्णय लेने से संबंधित अधिक स्वतंत्रता, कम भ्रष्टाचार, अधिक उदारता, कम असमानता एवं उच्च प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद होता है।

संतुलित तथा असंतुलित विकास

संतुलित विकास की रणनीति के लिए कई भिन्न-भिन्न उद्योगों में एक साथ निवेश होना चाहिए ताकि ऐसी विभिन्न आपूर्तियां तैयार हो सकें, जो अर्थव्यवस्था की विभिन्न मांगों को पूरा कर सकें। स्पष्ट है कि ये रणनीतियां पारंपरिक बाजार-व्यवस्था से जुड़ी हैं। इसके अनुसार आपूर्ति ही मांग को जन्म देती है या आपूर्ति से ही मांग पैदा होती है। अर्थशास्त्री नर्क्से का मानना है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में संतुलित विकास के लिए विनिर्माण तथा कृषि क्षेत्रों को संतुलित विकास की रणनीति के परिणामस्वरूप आगे बढ़ना चाहिए। अर्थव्यवस्था में अधिक विपन्नता के कारण उत्पादों की कम मांग तथा सीमित बाजार के बावजूद विकास सुनिश्चित करने की दिशा में यह रणनीति एक अच्छा उपाय है। यही कारण है कि यह अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए विशेष रूप से लाभकारी है।

अधिक संख्या में आर्थिक क्षेत्रों में सोथ-साथ किए गए निवेश के परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में लगे हुए श्रमिकों की आय में भी वृद्धि होती है। इस तरह परस्पर उत्पादित वस्तुओं की मांग पैदा होगी तथा उत्पादन में वृद्धि होगी। इसके अलावा, विविध प्रकार की मदों व वस्तुओं के उत्पादन में लगे काफी लोगों को काम मिलेगा। इससे उनकी आय में वृद्धि होगी व क्रय शक्ति बढ़ेगी जिसका उपयोग उपभोग के लिए एक दूसरे के द्वारा बनाई गई वस्तुओं को खरीदने के लिए किया जाता है। अंततः एक उद्योग में विस्तार दूसरे उद्योगों के विस्तार में मदद करता है और अंततः सर्वांगीण विकास होता है।

यह रणनीति केवल एक साथ कई उद्योगों की प्रगति तथा समग्र रूप में बाजार की प्रगति सुनिश्चित करते हुए छोटे बाजारों की समस्या को नियंत्रित करती है, अपितु, कुछ विशिष्ट बाजारों की प्रगति में भी सहायक होती है। इसके विपरीत इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में एकांगी निवेश एक के बाद एक अनेक उद्योगों के विकास को प्रेरित तो करता है, पर इसमें प्रगति की रफ्तार बहुत धीमी रहती है। संतुलित विकास की रणनीति बाहरी अर्थव्यवस्थाओं को प्रोत्साहन देती है अथवा उन पर अतिरिक्त लागत का दबाव डाले बिना ही विभिन्न उद्योगों के लिए मांग भी पैदा करती है। इसके अतिरिक्त किसी देश के संसाधनों को अंतरराष्ट्रीय विशेषज्ञता प्रदान करने में भी यह सहायक हो सकती है।

यह देखा गया है कि संतुलित विकास का दृष्टिकोण किसी ऐसी एक एजेंसी का उल्लेख नहीं कर पाता, जो इस रणनीति को लागू करने के लिए उत्तरदायी हो। इस रणनीति द्वारा बड़े निवेशों को प्रोत्साहित किए जाने के कारण यह उचित होगा कि इसके समन्वय अथवा तालमेल का दायित्व स्वयं सरकार अथवा कोई योजना एजेंसी वहन करे।

दूसरी ओर सिंगर, हर्पमान, फ्लेमिंग तथा अन्य विशेषज्ञ इसके ठीक विपरीत और अलग तरह के 'असंतुलित विकास' की रणनीति का समर्थन करते हैं। इस नीति या रणनीति के अनुसार अर्थव्यवस्था में केवल नियमित रूप से पैदा किए गए असंतुलन इसे विकास की ओर धकेल सकते हैं। प्रारंभिक निवेश जब कुछ विशेष महत्व के उद्योगों में केंद्रित हो जाते हैं तो इन उद्योगों में कमियां असंतुलन उत्पन्न करती हैं। इन असंतुलनों को दूर करने के प्रयासों से और कई असंतुलन पैदा हो जाते हैं, लेकिन ये असंतुलन ऊंचे स्तर पर होते हैं। इस रणनीति के समर्थकों का मानना है कि, इन सबके बावजूद कुछ समय बाद यह विकास की ओर अग्रसर होने लगेगी। हालांकि, परिवर्तन इतना सरल और सहज नहीं होगा।

हिर्शमैन (Hirschman) के अनुसार, अर्थव्यवस्था में जानबूझकर किया गया असंतुलन, एक पूर्व-निश्चित रणनीति के अनुरूप, आर्थिक विकास को प्राप्त करने का सबसे अच्छा तरीका है। उन्होंने रणनीतिक रूप से चुनिंदा उद्योगों या अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में निवेश करने का सुझाव दिया। उनके अनुसार "विकास एक असंतुलन की शृंखला है, जिसमें असंतुलन को कायम रखना चाहिए न कि मिटाना चाहिए। असंतुलन, जिनमें लाभ व हानि एक प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था के लक्षण हैं।" गरीब देश आय के कम स्तर पर संतुलन की स्थिति में होते हैं। उत्पादन, खपत, बचत एवं निवेश अत्यधिक निम्न स्तर पर एक-दूसरे के साथ इस प्रकार समायोजित होते हैं कि यह संतुलन की स्थिति ही स्वयं विकास के लिए बाधा बन जाती है। ऐसे देशों में आर्थिक विकास की एक ही रणनीति कारगर हो सकती है और वह है जानबूझकर योजनाबद्ध तरीके से असंतुलित वृद्धि, जिससे आय के अत्यधिक निम्न स्तर पर असंतुलन को तोड़ा जा सके। हिर्शमैन का कहना है कि असंतुलित वृद्धि द्वारा पैदा किए गए अभावों को भरने के लिए आविष्कारों एवं नवाचारों को अत्यधिक प्रोत्साहन मिलता है। यह असंतुलन तीव्र आर्थिक गतिविधियों एवं आर्थिक वृद्धि को प्रेरित करता है।

यदि विकास की प्रक्रिया को लगातार आगे बढ़ाना है तो यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में सुविचारित व जान-बूझ कर किए गए असंतुलन को बनाए रखा जाए

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

इन असंतुलन को उत्पन्न करने के लिए हिर्शमैन ने सामाजिक अतिरिक्त पूंजी (सोशल ओवरहैड कैपिटल–SOC) या प्रत्यक्ष रूप से उत्पादक गतिविधियों (डायरेक्टली प्रोडक्टिव ऐक्टिविटीज–डीओपी) में निवेश को सुझाया है। एसओसी के अंतर्गत वे सभी बुनियादी सेवाएं आती हैं जिसके बिना प्राथमिक, द्वितीय एवं तृतीयक उत्पादक गतिविधियां नहीं चल सकतीं। इसमें सम्मिलित हैं–शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, परिवहन व संचार, सिंचाई, जल निकासी, आदि में निवेश/डीपीए के अंतर्गत वे निवेश आते हैं जिनसे वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति में प्रत्यक्ष वृद्धि होती है। डीपीए में निवेश का अर्थ है निजी क्षेत्र में निवेश, जिसे अधिकतम लाभ को दृष्टिगत रखकर किया जाता है। एसओसी में अधिक निवेश डीपीए में निवेश को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। ऐसा यह कृषि व उद्योग को आवश्यक इनपुट प्रदान करके करता है।

असंतुलन पैदा करने के लिए पहले डीपीए में निवेश जैसे कि, निर्माण उद्योग, भवन-निर्माण गतिविधियों में निवेश यदि एसओसी में तद्नुसार विस्तार के बगैर किया जाए तो यह उत्पादन में लागत को बढ़ा देगी क्योंकि अतिरिक्त सुविधाएं अपर्याप्त रूप से उपलब्ध होंगी। इस प्रकार की स्थिति में सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ सकता है एवं आवश्यक आधारभूत संरचना उत्पन्न करने के लिए एसओसी में निवेश का भार उठाना पड़ सकता है।

एसओसी से डीपीए की ओर विकास अनुक्रम को अधिक्षमता (Excess Capacity) के मार्ग से हुआ विकास कहते हैं, जबकि डीपीए से एसओसी की ओर विकास अनुक्रम को हम अल्पता के मार्ग से हुआ विकास (Development via Shortages) कहते हैं। पहले वाला विकास बाद वाले की तुलना में अधिक सतत् एवं निर्विघ्न होता है।

2. भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति

स्वतंत्रता प्राप्ति एवं इसके बाद भारतीय अर्थव्यवस्था

आजादी के समय भारत का आर्थिक ढांचा आज की तुलना में बहुत कमजोर था और प्रतिव्यक्ति आय भी कम थी। बुनियादी उद्योगों का बिल्कुल विकास नहीं था। भारी इंजीनियरिंग, मशीनी औजार तथा रासायनिक उद्योग तो विकसित थे ही नहीं, लगभग 72 प्रतिशत लोग कृषि पर निर्भर थे। कृषि पर जनसंख्या के भारी दबाव के कारण प्रच्छन्न बेरोजगारी थी। द्वितीयक क्षेत्र में जिसमें विनिर्माण उद्योग आते हैं केवल 10.62 प्रतिशत और तृतीयक या सेवा क्षेत्र में 17.26 प्रतिशत लोगों के पास रोजगार था। राष्ट्रीय आय का स्तर नीचा होने के कारण प्रति व्यक्ति पूंजी की मात्रा कम और अधिकांश लोगों की बचत शून्य थी। थोड़े से व्यक्तियों को छोड़कर सभी लोग अपनी आय का बड़ा भाग खाद्य पदार्थों पर व्यय करते थे। व्यापार अविकसित और साख सुविधाएं सीमित थीं। जन्म और मृत्यु दरें ऊंची, स्वास्थ्य की दशा सोचनीय और लोगों को मिलने वाला भोजन अपर्याप्त था। इतना ही नहीं, सामाजिक दृष्टि से स्त्रियों का स्थान पुरुषों के बराबर नहीं था। लोगों के व्यवहार पर परम्पराओं और रीति-रिवाजों का काफी प्रभाव था। कुशलता का स्तर नीचा होने के साथ-साथ तकनीकी स्तर भी नीचा था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने आर्थिक संवृद्धि एवं विकास हेतु सार्वजनिक क्षेत्र की सहभागिता वाली योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था की मुख्य रणनीति अपनाई। 11 पंचवर्षीय योजनाओं के बावजूद भारत में अभी भी धीमी आर्थिक वृद्धि, निम्न आय तथा जनसंख्या के एक बड़े भाग का गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करना है। हालांकि आज भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की शक्तिशाली अर्थव्यवस्थाओं में से एक है तथापि इसे कृषि क्षेत्र की उच्च विकास दर, खाद्य सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा, सतत एवं समावेशी विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करना होगा, तभी भारतीय अर्थव्यवस्था संतुलित एवं विकसित अर्थव्यवस्था बन सकेगी।

क्या भारतीय अर्थव्यवस्था अल्पविकसित है अथवा विकासशील?

ीय अर्थव्यवस्था अल्पविकसित भी है और विकासशील भी। प्रतिव्यक्ति निम्न प्राथमिक उत्पादन, विशाल जनसंख्या का दबाव, अल्परोजगार तथा बेरोजगारी स्या की दीर्घकालीन मौजूदगी, पूंजी निर्माण की नीची दर, धन-सम्पत्ति का वितरण, मानव पूंजी की निम्न गुणवत्ता, निम्न स्तरीय प्रौद्योगिकी, निम्न जीवन म्न स्तरीय आर्थिक संगठन आदि भारतीय अर्थव्यवस्था के कुछ ऐसे ा हैं, जिनके कारण हमारा देश अल्पविकसित वर्ग में शामिल किया जाता यह अवधारणा पूरी तरह सही नहीं है, क्योंकि 1947 में स्वाधीनता प्राप्ति की अर्थव्यवस्था में कुछ ऐसे सुधार हुए हैं, जो स्थायी हैं और ढांचागत इन सुधारों में ऐसी क्षमता है, जो आर्थिक जीवन को पहले की अपेक्षा तर पर पहुंचाने में ही नहीं, वरन् उसे वहां बनाए रखने में भी सक्षम हैं। उत्पादन में वृद्धि का रुझान, उत्पादन क्षमता में बढ़ोत्तरी, मानव पूंजी में सुधार, आधुनिकीकरण एवं संस्थागत सुधार आदि–कुछ ऐसे महत्वपूर्ण परिवर्तन हैं, जो पुरोगामी हैं। इनसे भारतीय अर्थव्यवस्था के विकासशील चरित्र के संकेत मिलते हैं। अतः भारतीय अर्थव्यवस्था को विकासशील कहना अधिक उपयुक्त होगा।

अल्पविकास के लक्षण

भारतीय अर्थव्यवस्था के क्रमिक विकास पर नजर डालें, तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि इसकी सभी क्षमताओं को पूरी तरह विकसित या समझा नहीं गया है। निम्न लक्षणों से यह बात बहुत अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है।

भारत में अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के निम्नांकित लक्षण पाए जाते हैं:

(i) अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के परंपरागत लक्षणों पर जाएं, तो भारतीय अर्थव्यवस्था अल्पविकसित है, क्योंकि इसका मुख्य आधार कृषि है। भारत की 50 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या (2006-07 के आधार पर) कृषि पर निर्भर है। स्वतंत्रता प्राप्ति से अब तक कृषि पर निर्भरता में बहुत ही मामूली कमी आई है। कृषि की प्रधानता वाले देश में कृषि का सकल घरेलू उत्पाद में 18 प्रतिशत योगदान है। निश्चय ही यह 1950-51 की तुलना में बहुत कम है जब कृषि से सकल घरेलू उत्पाद का 50 प्रतिशत से अधिक प्राप्त हुआ था।

(ii) भारत का सकल घरेलू उत्पाद और प्रति व्यक्ति आय विश्व के संदर्भ में है। प्रति व्यक्ति अल्प आय अल्पविकास का सूचक है।

(iii) गरीबी रेखा से नीचे रह रही जनसंख्या का प्रतिशत अभी भी बहुत अधिक है। वस्तुतः व्यापक गरीबी का समस्या, आय में असमानता की ही देन है।

(iv) पूंजीवादी अथवा पूंजी-प्रधान क्षेत्र का छोटा आकार जैसे अनेक कारणों के चलते पूंजी की उपलब्धता में कमी, देश की विकासात्मक योजना की राह में एक बड़ी बाधा है।

(v) यद्यपि, भारत की आधे से अधिक जनसंख्या जीवन यापन हेतु कृषि पर निर्भर है, फिर भी इसकी उत्पादन तकनीक विकसित नहीं है। यहां तक कि, कृषि क्षेत्र में भी अधिकांशतः पुरानी एवं परंपरागत तकनीक का प्रयोग किया जाता है। वैसे उद्योगों में उत्पादन की आधुनिक प्रौद्योगिकी अपना ली गई है, परंतु विकसित अर्थव्यवस्था वाले देशों में अपनाई जा रही प्रौद्योगिकी की तुलना में उतनी उन्नत नहीं है।

(vi) भारत की जनसंख्या तेजी से बढ़ती जा रही है। इसके अलावा जनसंख्या का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में स्थानांतरण भी नियंत्रित रहा है। जनसंख्या वृद्धि से खेती योग्य भूमि पर दबाव बढ़ा है, परिणामतः छद्म बेरोजगारी में बढ़ोत्तरी हुई है।

(vii) रोजगार के क्षेत्र में ढांचागत कमियों के परिणामस्वरूप लंबे समय से चली आ रही बेरोजगारी की समस्या भी विकास गतिविधियों के लिए एक बड़ी बाधा है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

(viii) ब्रिटिश शासन के समय से ही निजी उद्यम देश के विकास में प्रमुख या अग्रणी भूमिका निभाने में असफल रहा है। भारतीय अर्थव्यवस्था के अल्पविकास/विकास शून्यता का एक प्रमुख कारण यह भी है। शुम्पीटर के अनुसार किसी भी देश के तेजी के साथ आर्थिक विकास के लिए देश में भारी संख्या में कुशल उद्यमी होने चहिए। ये उद्यमी उत्पादन में नये प्रयोग करते हैं। वे पुरानी तकनीकों को त्यागकर नई तकनीकों को अपनाते हैं

(ix) भारत में मानव विकास का स्तर काफी कम है।

विकासशील देश के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी :-

भारतीय अर्थव्यवस्था के ढांचे में स्वतंत्रता के बाद से अनेक परिवर्तन आए हैं, जिनसे यह पता चलता है कि सतत् विकास प्रक्रिया अपेक्षित बदलाव लाने में बहुत धीमी रही है। अतः एक अर्थ में यह निर्धारित करना काफी कठिन है कि, अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन आया है। फिर भी, विकास के संबंध में निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं:

(i) पिछले कुछ वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि तथा संबद्ध क्षेत्रों की भागीदारी में कमी आई है। 1960 के दशक से सकल घरेलू उत्पाद में औद्योगिक क्षेत्र की भागीदारी में वृद्धि हुई है। इनमें खनन उद्योग, विनिर्माण, विद्युत आपूर्ति तथा निर्माण आदि उद्योग शामिल हैं।

(ii) विकासशील अर्थव्यवस्था को अनिवार्य रूप से प्राथमिक क्षेत्र से इतर जनसंख्या में व्यवसाय-वितरण की स्थिति में आए परिवर्तनों से जोड़कर देखा जाता है; लेकिन, भारतीय अर्थव्यवस्था का यह लक्षण कहीं दृष्टिगत नहीं होता। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि भारत का आर्थिक नियोजन चरित्र से सांकेतिक है। इसकी यह विशेषता दूसरी और तीसरी श्रेणी के क्षेत्रों में अपेक्षित विकास लाने में असफल रही है।

(iii) भारत में भूमि संबंधों ने स्वतंत्रता पश्चात् एक नया रूप धारण किया है और ये जमींदारी प्रथा के समाप्त होने तथा कृषि-भूमि के वितरण के कारण संभव हुआ है। हालांकि भूमि वितरण के संबंध में अभी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है।

(iv) स्वाधीनता के बाद से आधारभूत उद्योगों में काफी प्रगति हुई है, जिसके परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण कच्चे माल तथा औद्योगिक सामग्री में वृद्धि हुई है। हालांकि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय इन उद्योगों का योगदान, औद्योगिक उत्पादन का मात्र एक-चौथाई ही होता था। आज खनिज संबंधी उद्योगों, भारी इंजीनियरी, इंजन-निर्माण, मशीनी उपकरण तथा भारी उद्योग औद्योगिक उत्पादन में महत्वपूर्ण भागीदारी कर रहे हैं।

(v) परिवहन, शिक्षा, सिंचाई, स्वास्थ्य तथा ऊर्जा उत्पादन आदि में लगने वाली अतिरिक्त सामाजिक पूंजी से विकास और जीवन स्तर में वृद्धि हुई है।

(vi) वित्तीय क्षेत्र में जो प्रगति हुई है, वह बेहतर वित्तीय संगठन, पूंजी बाजार तथा वित्त संबंधित विशिष्ट औद्योगिक इकाइयों के संस्थापन आदि से संबंधित रही है। इसी प्रकार, बैंकिंग क्षेत्र में मुख्यतः व्यावसायिक बैंकों तथा सहकारी ऋण समितियों के माध्यम से बैंकिंग सेवाओं में वृद्धि हुई है।

भारतीय अर्थव्यवस्था का दोहरा स्वरूप

भारतीय अर्थव्यवस्था द्विगुणात्मक है। इसमें जहां आधुनिक अर्थव्यवस्था की विशेषताएं हैं, वहीं ये स्वयं में पारंपरिक भी हैं। प्रौद्योगिकी में भी द्वि-विविधता है अर्थात् परंपरागत क्षेत्र तथा आधुनिक क्षेत्र में अलग-अलग प्रकार के अनेक उत्पादन कार्य संपन्न होते हैं। परंपरागत क्षेत्र कृषि अथवा लघु उद्योगों से संबंधित है तथा ये सहप्रभावी परिवर्तनीय तकनीकी उत्पादन तथा उत्पादन के श्रमिकोन्मुखी तरीकों का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि उन्नत क्षेत्र में बड़े उद्योग, सहप्रभावी स्थिर तकनीकी उत्पादन तथा उत्पादन के पूंजी-पोषक तरीकों का प्रतिनिधित्व करता है।

कृषि तथा हस्तकला क्षेत्रों में तकनीकी प्रगति बहुत ही धीमी रही है, लेकिन औद्योगिक क्षेत्र में उल्लेखनीय तकनीकी प्रगति हुई है।

इसके अतिरिक्त दोनों क्षेत्रों में वेतन दरों आदि में कुछ असंगतियां भी पाई गई हैं।

एक मिश्रित अर्थव्यवस्था

स्वाधीन भारत में शुरू से ही मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनाई गई है। भारत की अर्थव्यवस्था को मिश्रित अर्थव्यवस्था का स्वरूप प्रदान करने में देश के विशाल सार्वजनिक क्षेत्र की विशेष भूमिका बताई जाती है। जहां तक योजना अथवा नियोजन का प्रश्न है, देश में आर्थिक नियोजन समाजवादी नहीं है। आमतौर पर यह धारणा है कि, समाजवाद का सबसे ज्यादा संबंध नियोजन से होता है, क्योंकि समाजवादी देशों ने सबसे पहले अर्थव्यवस्था के नियोजित विकास की नीति अपनाई थी, लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था पूंजीवादी संरचना के अधिक निकट है। इसका क्षेत्र सीमित है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह बाध्यताओं या दबावों से मुक्त है। इसे मिश्रित अर्थव्यवस्था का स्वरूप प्रदान करने वाली अन्य विशेषताएं भी हैं, जैसे—इससे एकाधिकार के प्रति रुझान बढ़ा है, बाजार-संरचना का प्रभुत्व—जहां बाजार में उत्पादों के लिए पर्याप्त जगह है, वहीं श्रम तथा पूंजी के लिए भी जगह है। यहां वस्तुओं के मूल्य मांग और आपूर्ति के अनुसार निर्धारित होते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में उत्पादन के निजी स्वामित्व का अर्थ उद्योग (आधारभूत उद्योगों को छोड़कर) तथा लाभ-प्रेरित उत्पादन होता है।

राज्य की बदलती भूमिका

उन्नीस सौ अस्सी के दशक तक देश के उद्योग-पटल पर सार्वजनिक क्षेत्र ही छाया रहा। बाद में अर्थव्यवस्था को बाजारोन्मुखी बनाने तथा विकास के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों पर नियंत्रण पाने के लिए 1990 के दशक के प्रारंभ से निजी क्षेत्र की भूमिका को बढ़ा दिया गया है। उदारीकरण से पहले के दौर में गैर-बाजारी नीतियों पर जोर था, जैसे— नियंत्रण तथा लाइसेंस प्रणाली; लेकिन तब से अब तक स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। इस सबके बावजूद 1991-92 से अपनाई गई नई आर्थिक नीति में भी राज्य अथवा सार्वजनिक उद्यम की भूमिका को नकारा नहीं गया है। आर्थिक उदारवाद का उद्देश्य उद्यमों की कार्यक्षमता या दक्षता में सुधार लाना है। सार्वजनिक क्षेत्र के सुधरे हुए प्रदर्शन से उसे अपनी विभिन्न जिम्मेदारियां और अधिक सक्षमता से पूरी करने में सहायता मिलेगी।

नए आर्थिक परिदृश्य में, समयानुसार इसकी भूमिका या कर्तव्यों की नए सिरे से व्याख्या की जानी आवश्यक है। चाहे वो वित्तीय क्षेत्र में हो या फिर जनोपयोगी सेवाएं, राज्य की तंत्र नियामक के रूप में भूमिका, अर्थव्यवस्था के नियमों का निर्धारण आदि का उत्तरोत्तर महत्व बढ़ेगा।

राज्य हस्तक्षेप कैसे करता है?: ऐसे बहुत से तरीके हैं, जिनसे राज्य मिश्रित अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप कर सकता है। सरकार तीन प्रकार से भारतीय अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप करती है और तीनों बहुत व्यापक हैं—(i) वित्त नीति, (ii) मौद्रिक नीति, तथा (iii) उत्पादन तथा वितरण में भौतिक नियंत्रण।

पिछले कुछ वर्षों में आए परिवर्तन: वर्ष 1991 के मध्य से अर्थव्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन लाने के उद्देश्य से सरकार ने नई नीतियां लागू की हैं। इनके लिए कुछ ढांचागत परिवर्तनों द्वारा अर्थव्यवस्था को स्थिरता प्रदान की गई है। कुल मिला कर निम्न विशेषताएं सुधारों के रुझान की स्पष्ट संकेतक हैं:-

(i) नियमों, नियंत्रणों तथा पूर्व में निजी क्षेत्र के विकास को रोकने वाले सरकारी प्रतिबंधों के समाप्त किए जाने के परिणामस्वरूप प्रतिस्पर्द्धा बढ़ने से बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था उभरने लगी है। जो उद्योग पहले सिर्फ सार्वजनिक क्षेत्र के लिए ही सुरक्षित थे, उन्हें अब निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया है।

उदारीकरण के परिणामस्वरूप सरकारी प्रतिबंधों के हटने से आयात-निर्यात को पर्याप्त राहत मिली है। सीमा शुल्क दरों में कमी तथा विभिन्न क्षेत्रों में विदेशी निवेश को प्रोत्साहन दिए जाने जैसे उपायों से भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व की दूसरी अर्थव्यवस्थाओं के समकक्ष ला खड़ा किया है।

(ii) सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित रखे गए उद्योगों की संख्या में कमी

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

तथा सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों (पीएसयू) की पूंजी के एक अंश के विनिवेश जैसे कदमों से राज्य के हस्तक्षेप पर पर्याप्त अंकुश लगा है। निजी क्षेत्र की गतिविधियों पर अंकुश लगाने वाले सरकारी नियंत्रणों के हटा लिए जाने से भी राज्य की भूमिका सीमित हुई है, लेकिन जिन क्षेत्रों में निजी क्षेत्र की भागीदारी हितकर नहीं है, वहां राज्य अपनी हिस्सेदारी बढ़ाएगा तथा अर्थव्यवस्था के नियामक के तौर पर पहले की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

(iii) एक ओर जहां योजना को तिलांजलि नहीं दी गई है, वहीं ये पहले से कहीं अधिक सुनिश्चित होंगी। अब योजना अथवा नियोजन की बुनियादी भूमिका अर्थव्यवस्था के लिए दिशा-निर्धारक की होगी, ठोस लक्ष्य तय करने की नहीं। राज्य का हस्तक्षेप भी अब अधिक बाजारोन्मुखी हुआ है।

भविष्य में बाजार का प्रदर्शन अधिक सक्षम हो तथा नियमों के अनुसार हो, यही महत्वपूर्ण कार्य होगा। सार्वजनिक अथवा सामाजिक उत्पादों के संपूरक के रूप में राज्य की भूमिका भी बढ़ेगी, क्योंकि, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं का प्रावधान राज्य की एक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होगी।

3. नियोजन

आर्थिक नियोजन की प्रकृति व भूमिका

किन्हीं सुनिश्चित विकास उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सरकार द्वारा दीर्घावधि तक सुविचारित तरीके से आर्थिक निर्णयों का समन्वय और राष्ट्र के मुख्य आर्थिक परिवर्तों (आय, उपभोग, रोजगार, निवेश, बचत, आयात, निर्यात, ब्याज दर, कर दर इत्यादि) को प्रभावित व निर्देशित करने को आर्थिक नियोजन कहा जा सकता है। एक आर्थिक नियोजन सुनिश्चित समय सीमा में मात्रात्मक आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का लक्ष्य सामने रखता है। इस प्रकार नियोजन के अंतर्गत संसाधनों को निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में नियोजित किया जाता है।

नियोजन के निम्नलिखित रूप हो सकते हैं:

परिदृश्य नियोजन का आशय दीर्घावधि नियोजन से है परंतु इसका अर्थ दीर्घावधि के लिए एकमात्र नियोजन से नहीं है। वास्तव में परिदृश्य नियोजन के लक्ष्यों को लघु अवधि नियोजन के माध्यम से भी प्राप्त किया जाता है।

निर्देशात्मक नियोजन का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांस में 1947-50 के मध्य किया गया था। निर्देशात्मक नियोजन मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशिष्टता है, जहां निजी व सार्वजनिक क्षेत्र सह-अस्तित्वमान होते हैं। राज्य नियोजन में निजी क्षेत्र के लिए क्षेत्रों का निर्देशन तो कर देता है परंतु निजी क्षेत्र का निर्देशन नहीं करता। निजी क्षेत्र बाजार शक्तियों से प्रभावित होकर उत्पादन व कीमत का निर्धारण करता है। निजी क्षेत्र पर सरकार कोटा, ऋण, प्रोत्साहन, लाइसेंस, बाजार दर इत्यादि के माध्यम से नियंत्रण रखती है।

आदेशिक नियोजन की यह विधि समाजवादी देशों में अपनाई जाती है। विस्तृत नियोजन के अंतर्गत नियोजन प्राधिकारी प्रत्येक क्षेत्र में निवेश की मात्रा को निर्धारित करते हैं। इसके अतिरिक्त उत्पादन एवं साधन, उत्पाद का मूल्य, उत्पाद का प्रकार तथा उसकी मात्रा का निर्धारण भी नियोजन प्राधिकारी करते हैं। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता को स्वायत्तता नहीं होती है। इस प्रकार के नियोजन में एक क्षेत्र की असफलता समस्त अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने में सक्षम होती है।

केंद्रीकृत नियोजन के अंतर्गत देश की संपूर्ण नियोजन प्रक्रिया को एक केंद्रीय प्राधिकरण के अधीन कर दिया जाता है। यह केंद्रीय प्राधिकरण केंद्रीकृत नियोजन का निर्माण करता है जिसके अंतर्गत अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र के लिए लक्ष्य, प्राथमिकताओं एवं उद्देश्यों को निर्धारित किया जाता है। इस व्यवस्था के अंतर्गत कोई आर्थिक स्वतंत्रता नहीं होती है एवं संपूर्ण नियोजन को नौकरशाही नियंत्रण व विनियमन में संपन्न किया जाता है।

विकेंद्रीकृत नियोजन को सबसे निचले स्तर (जिला या ग्राम या ब्लॉक) में आयोजित किया जाता है। इस व्यवस्था के अंतर्गत केंद्रीय नियोजन प्राधिकरण देश की विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों से विचार-विमर्श के पश्चात् योजना का निर्माण करता है। केंद्रीय योजना में संघीय व्यवस्था के अधीन राज्यों की योजनाएं शामिल की जाती हैं। राज्य की योजनाओं में जिला व ग्राम स्तर की योजनाओं को स्थान दिया जाता है। इसी प्रकार उद्योग के लिए योजना का निर्माण उद्योगों के प्रतिनिधियों से विचार-विमर्श के पश्चात् किया जाता है। मूलभूत क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में कीमतों का निर्धारण बाजार शक्तियों के माध्यम से किया जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए भी योजना में कुछ विशिष्ट क्षेत्रों को सुनिश्चित किया जाता है।

अभिप्रेरण नियोजन के अंतर्गत बाजार के परिचालन के माध्यम से आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार के नियोजन के अंतर्गत उद्यम लगाने तथा उपभोग व उत्पादन की स्वतंत्रता होती है। परंतु यह स्वतंत्रता सरकारी विनियमन एवं नियंत्रण के अधीन होती है। आर्थिक इकाइयों को सुनिश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एवं उनसे आपेक्षित व्यवहार के लिए, विभिन्न मौद्रिक व राजकोषीय नीतियों के माध्यम से अभिप्रेरित किया जाता है। निवेश एवं उपभोग पर नियंत्रण के लिए सब्सिडी, कर छूट, कीमत नियंत्रण एवं राशनिंग जैसे उपायों को अपनाया जाता है। अभिप्रेरण नियोजन के माध्यम से नियोजन लक्ष्य प्राप्त करने में व्यक्तिगत स्वतंत्रता में सापेक्षतया थोड़ी ही कमी होती है।

वित्तीय नियोजन के अंतर्गत राष्ट्रीय आय, उपभोग, आयात इत्यादि के विषयों में विभिन्न परिकल्पनाओं के आधार पर अनुमान लगाये जाते हैं एवं परिव्यय को मौद्रिक रूप में सुनिश्चित कर दिया जाता है। इसके साथ ही इस परिव्यय की पूर्ति के लिए कर, बचत एवं मुद्रा धारण में वृद्धि के भी अनुमान, मुद्रा रूप में लगाये जाते हैं।

भौतिक नियोजन के अंतर्गत आय व रोजगार बढ़ाने के उद्देश्य को ध्यान में रख कर संसाधन विनियोजन एवं उत्पादित मात्रा के संदर्भ में विकास प्रयासों के पड़ने वाले प्रभाव की गणना का प्रयास किया जाता है। इसके अंतर्गत निवेश एवं निर्गत (output) के मध्य संबंध का मूल्यांकन किया जाता है। साथ ही भौतिक नियोजन के अंतर्गत कच्चे माल, मानवीय संसाधनों इत्यादि के संदर्भ में वास्तविक भौतिक संसाधनों की समग्र उपलब्ध मात्रा का मूल्यांकन किया जाता है।

भारतीय नियोजन की आधारशिला एवं आदर्श

समाजवाद के सैद्धांतिक आधार को सर्वप्रथम कार्ल मार्क्स और फ्रेडिक एंगेल्स ने प्रस्तुत किया था जिनका विश्वास था कि उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व को अपरिहार्य रूप से समाप्त किया जाना चाहिए जिससे विश्व में शोषण का उन्मूलन किया जा सके। इनके विचारों का अनुसरण करते हुए, सम्पूर्ण राष्ट्रीयकरण पर आधारित आर्थिक नियोजन को सर्वप्रथम सोवियत रूस में राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक संवृद्धि के साधन के रूप में स्वीकार किया गया था। लेकिन टेनेसी वेली अथॉरिटी की स्थापना के साथ नियोजन को 1916 के पूर्वार्द्ध में संयुक्त राज्य अमेरिका में क्षेत्रीय स्तर पर शुरू किया गया था। यद्यपि इसका मुख्य उद्देश्य बाढ़ नियंत्रण, मृदा संरक्षण और बिजली की व्यवस्था करना था, इसमें अन्य गतिविधियां जैसे औद्योगिक विकास, रेलवे का निर्माण और रोग नियंत्रण जैसी अन्य गतिविधियां भी थीं।

भारत में आर्थिक विकास के लिए नियोजन के महत्व को स्वतंत्रता से पूर्व ही स्वीकार कर लिया गया था। नियोजन की दिशा में पहला अकादमिक कार्य एम. विश्वेश्वरैय्या ने *'भारत के लिए नियोजित अर्थव्यवस्था'* (*Planned Economy for India*) नामक पुस्तक के माध्यम से किया जिसके अंतर्गत उन्होंने भारत के आर्थिक विकास की 10 वर्षीय योजना का प्रारूप सामने रखा था। इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् एन.एस. सुब्बाराव की *'सम आस्पैक्ट ऑफ प्लानिंग'*, डा. पी.एस. लोकनाथ की *'प्रिंसिपल्स ऑफ प्लानिंग'* व के.एन. सिंह की *'आर्थिक पुनर्निर्माण'* नामक पुस्तकें सामने आईं।

1938 में कांग्रेस ने जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय नियोजन समिति की स्थापना की जिसे भारत के लिए राष्ट्रीय योजना बनानी थी। समिति के

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

जारी कर दी। 1944 में आठ अग्रणी उद्योगपतियों ने भारत के आर्थिक विकास की योजना तैयार कर प्रकाशित की। "ए प्लान ऑफ इकोनोमिक डेवलपमेंट ऑफ इंडिया" नामक इस योजना में 15 वर्षों में ₹ 10,000 करोड़ के व्यय के माध्यम से प्रति व्यक्ति आय को दुगना करने की योजना थी। 'बॉम्बे प्लान' के नाम से विख्यात इस योजना में कृषि निर्गत में 130 प्रतिशत, औद्योगिक निर्गत में 500 प्रतिशत व सेवा क्षेत्र के निर्गत में 200 प्रतिशत वृद्धि की आशा की गई थी।

अगस्त, 1944 में भारत सरकार ने द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए सर ए.दलाल की अध्यक्षता में नियोजन व विकास विभाग का गठन किया।

बॉम्बे प्लान के अतिरिक्त एम.एन. राय ने भारतीय श्रमिक परिसंघ की ओर से "पीपुल्स प्लान" तैयार किया। गांधीवादी सिद्धांतों पर आधारित "गांधीवादी योजना" आचार्य श्री मन्नारायण ने सामने रखी। भारत में नियोजन के संस्थाकरण की सिफारिश आजादी के पश्चात् जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में गठित आर्थिक कार्यक्रम समिति ने 25 जनवरी, 1948 को की। इन्हीं सिफारिशों के आधार पर मार्च, 1950 में योजना आयोग की स्थापना की गई।

जब भारत आजाद हुआ तब भारत गरीबी, बेरोजगारी व अल्परोजगार, अशिक्षित एवं अकुशल श्रम, गतिहीन कृषि, अर्द्ध-सामंती संबंधों, उद्योगों के अल्प-विकास, अपर्याप्त आधारभूत संरचना जैसी समस्याओं से ग्रस्त था। इन समस्याओं के उन्मूलन के लिए वृहत् प्रयासों के नियोजन की आवश्यकता थी।

उस काल में आर्थिक विचारधाराओं पर सोवियत रूस की सफलता का विशेष प्रभाव था। भारतीय नियोजन के शिल्पकार जवाहरलाल नेहरू स्वयं समाजवाद व सोवियत व्यवस्था से प्रभावित थे। समाजवाद के लिए सैद्धांतिक आधार कार्ल मार्क्स व फ्रेड्रिक एंजेल्स ने सर्वप्रथम रखा था, जिनका मानना था कि विश्व से शोषण की समाप्ति के लिए उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व समाप्त होना चाहिए। इन विचारों से प्रभावित हो कर सोवियत रूस में पहली बार पूर्ण राष्ट्रवाद पर आधारित आर्थिक नियोजन को विकास का माध्यम स्वीकार कर लागू किया गया था। सोवियत रूस ने गरीबी, बेरोजगारी व भूख की समाप्ति के लिए आर्थिक नियोजन को चुना। 1928 के पश्चात् रूस में ऐतिहासिक परिवर्तन हुए व रूस के आर्थिक विकास व औद्योगीकरण की दर ऐतिहासिक थी जिससे अनेक अल्पविकसित राष्ट्रों ने प्रेरणा ली। 1929 की महान मंदी से रूसी अर्थव्यवस्था के अप्रभावी रहने के कारण भी इस व्यवस्था के प्रति विश्वास बढ़ा एवं गरीबी, बेरोजगारी व भूख की समाप्ति में नियोजन की भूमिका को स्वीकारा जाने लगा। इन सबका प्रभाव भारतीय नियोजन पर भी हुआ।

भारत में पहली बार किसी लोकतांत्रिक राष्ट्र में नियोजन का प्रयोग किया गया। भारत में सोवियत रूस के नियोजन को पूंजीवादी लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ समायोजित कर आर्थिक व सामाजिक विकास का प्रयास किया गया। लोकतांत्रिक समाजवाद के निम्नलिखित मुख्य लक्षण हैं:

- सभी के लिए समान अवसर।
- गरीबी का उन्मूलन।
- आय एवं संपत्ति की असमानताओं में कमी।
- मिश्रित अर्थव्यवस्था में विश्वास।
- एकाधिकारिक प्रवृत्तियों एवं आर्थिक शक्ति के संकेंद्रण को रोकना।
- आर्थिक निर्णयों का आधार निजी लाभ न हो कर सामाजिक लाभ होना।

सोवियत रूस के 1991 में पतन व पूर्वी यूरोपीय समाजवादी देशों में राजनैतिक आर्थिक उथल-पुथल के पश्चात् इन देशों में बाजार आधारित अर्थव्यवस्था को गू किया गया। इन घटनाओं से भारत द्वारा मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाए जाने निर्णय सही सिद्ध होता है, जिसके माध्यम से भारत को ऐसी समस्याओं का सामना ं करना पड़ा।

1991 से भारत ने आर्थिक उदारीकरण को लागू किया है जिसके माध्यम से व्यवस्था में राज्य की भूमिका को कम किया जा रहा है परंतु सामाजिक क्षेत्र में भी राज्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहेगा।

नियोजन के उद्देश्य

भारत में नियोजन ने अपने उद्देश्यों एवं सामाजिक क्षेत्रों को भारतीय संविधान में उल्लिखित प्रस्तावना एवं राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों से प्राप्त किया है। इन पर आधारित, योजना आयोग ने नियोजन के निम्नलिखित उद्देश्यों को निर्धारित किया:

(i) अधिकतम संभावित सीमा तक उत्पादन में बढ़ोत्तरी करना ताकि उच्च स्तर की राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय को प्राप्त किया जा सके;
(ii) पूर्ण रोजगार प्राप्त करना;
(iii) आय एवं संपत्ति की असमानताओं को कम करना; एवं
(iv) समानता और न्याय तथा शोषण की अनुपस्थिति पर आधारित एक समाजवादी समाज की स्थापना करना।

इसके अतिरिक्त, आत्म-निर्भरता भी दीर्घावधि में एक उद्देश्य रहा। इस प्रकार, सामाजिक न्याय एवं निर्धनता उन्मूलन के साथ संवृद्धि भारतीय नियोजन का प्राथमिक उद्देश्य रहा।

विकास रणनीति

विकास रणनीति के साझा तत्व निम्न प्रकार हैं।

(a) एक व्यापक नियोजन लाया जाएगा जिसमें आर्थिक विकास हेतु नीतियां एवं कार्यक्रम शामिल हैं और साथ ही साथ सामाजिक कल्याण तथा संरचनात्मक परिवर्तन भी संलग्न हैं।

(b) एक मिश्रित अर्थव्यवस्था निश्चित तौर पर एक नियोजित अर्थव्यवस्था होती है। एक समन्वित विकास कार्यक्रम तैयार किया गया है जहां निजी क्षेत्र की भूमिका, जबकि यह स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं है, विकास की राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के तहत् होंगी।

(c) सार्वजनिक क्षेत्र के विकास को प्राथमिकता दी गई है, विशेष रूप से रक्षा, दूरसंचार, कोर इंडस्ट्रीज एवं बैंकिंग जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में।

(d) संवृद्धि में बढ़ोतरी—जिसमें पूंजी निर्माण की दर बढ़ाने पर जोर होगा—एक अन्य विशेषता होनी चाहिए।

(e) एक संतुलित संवृद्धि वाला विकास पैटर्न होना चाहिए जहां उद्योग एवं कृषि, उपभोक्ता एवं उत्पादक वस्तुओं के बीच संतुलन होगा और सेवा क्षेत्र को प्रोत्साहित किया जाएगा।

(f) रोजगार पर बल दिया जाना चाहिए, विशेष रूप से श्रम गहन उद्योगों के विकास के साथ, उदाहरणार्थ, कुटीर एवं लघु उद्योग।

(g) पिछड़े क्षेत्रों के विकास संवर्द्धन पर जोर दिया जाना चाहिए।

(h) पिछड़े वर्गों के उन्नयन एवं सामाजिक कल्याण के कार्यक्रमों को विशेष महत्व दिया गया है।

इस प्रकार योजना रणनीति में मुख्य तत्व योजना का आकार; निवेश प्रारूप हैं।

योजना आयोग एवं राष्ट्रीय विकास परिषद्

नियोजन की योजनाओं को सुव्यवस्थित, ठोस वास्तविकताओं, गंभीर बौद्धिक चिंतन-मनन एवं सुदृढ़ अकादमिक आधार पर निर्मित करने के उद्देश्य से 15 मार्च, 1950 को योजना आयोग का गठन किया गया। योजना आयोग के अतिरिक्त राष्ट्रीय विकास परिषद व राष्ट्रीय नियोजन परिषद भी योजनाएं तैयार करने में योगदान करती थी। उल्लेखनीय है कि केंद्र सरकार द्वारा 1 जनवरी, 2015 को योजना आयोग के स्थान पर नीति आयोग का गठन किया गया।

योजना आयोग का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता था। योजना आयोग दिन-प्रतिदिन का कार्य पूर्णकालिक उपाध्यक्ष देखता था। केंद्रीय वित्त मंत्री आ का पदेन सदस्य होता था। योजना आयोग एक गैर-संवैधानिक परामर्शदात्री थी। आयोग के चार प्रमुख प्रभाग थे जिनके माध्यम से आयोग कार्य करत

राष्ट्रीय विकास परिषद्: राष्ट्रीय विकास परिषद् (रा.वि.प.) गैर-संवैधानिक निकाय था। जिसका गठन आर्थिक नियोजन के लिए राज्यों व आयोग के बीच सहयोग का वातावरण कायम करने के लिए किया गया था। ने 6 अगस्त, 1952 में इसकी स्थापना की थी। राष्ट्रीय विकास परिषद् की

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

सहकारी संघवाद का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती थी। राष्ट्रीय विकास परिषद् के कार्य थे: (i) राष्ट्रीय योजना के संचालन का समय-समय पर मूल्यांकन करना; (ii) राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाली नीतियों की समीक्षा करना; (iii) राष्ट्रीय योजना में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सुझाव देना एवं राष्ट्रीय नियोजन में अधिक से अधिक जन सहयोग प्राप्त करना, प्रशासनिक दक्षता को सुदृढ़ता प्रदान करना, राष्ट्रीय विकास के संसाधनों का निर्माण करना; एवं (iv) योजना आयोग की योजना का अध्ययन करना व विचार-विमर्श के पश्चात् उसे अंतिम रूप प्रदान करना।

नीति आयोग

1 जनवरी, 2015 को एनडीए सरकार द्वारा नीति आयोग के गठन की घोषणा की गई। यहां नीति का तात्पर्य पॉलिसी शब्द से नहीं है अपितु यह 'नेशनल इंस्टीट्यूशन फॉर ट्रांसफॉर्मिंग इण्डिया' (एन.आई.टी.आई.) का संक्षिप्तीकरण है। नया आयोग नीति और दिशा तय करने में सरकार को 'थिंक टैंक' के रूप में कार्य करेगा। यह केंद्र और राज्य सरकारों को नीतियों के विषय में रणनीतिक और तकनीकी परामर्श भी देगा।

आयोग के कार्य: • यह विकास प्रक्रिया में निर्देश और रणनीतिक परामर्श देगा।

• केंद्र से राज्यों की तरफ चलने वाले एक पक्षीय नीतिगत क्रम को एक महत्वपूर्ण विकासवादी परिवर्तन के रूप में राज्यों की वास्तविक और सतत् भागीदारी से बदल दिया जाएगा।

• नीति आयोग राज्यों के साथ सतत् आधार पर संरचनात्मक सहयोग की पहल और तंत्र के माध्यम से सहयोगपूर्ण संघवाद को बढ़ावा देगा।

• नीति आयोग ग्राम स्तर पर विश्वसनीय योजना तैयार करने के लिए एक तंत्र विकसित करेगा और इसे उत्तरोत्तर उच्च स्तर तक पहुंचाएगा।

• आयोग राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय विशेषज्ञों, प्रैक्टिशनरों तथा अन्य हितधारकों के सहयोगात्मक समुदाय के जरिए ज्ञान, नवाचार, उद्यमशीलता सहायक प्रणाली बनाएगा।

• इसके अलावा नीति आयोग कार्यक्रमों और नीतियों के क्रियान्वयन के लिए प्रौद्योगिकी उन्नयन और क्षमता निर्माण पर बल देगा।

नीति आयोग के उद्देश्य: • 'सशक्त राज्य ही सशक्त राष्ट्र का निर्माण कर सकता है' इस तथ्य की महत्ता को स्वीकार करते हुए राज्यों के साथ सतत् आधार पर संरचनात्मक सहयोग की पहल और तंत्र के माध्यम से सहयोगपूर्ण संवाद को बढ़ावा देना।

• सहयोगात्मक संघवाद का विकास करना।

• राष्ट्रीय विकास की एक साझा दृष्टि तैयार करना। इसके आधार पर एक राष्ट्रीय एजेंडा तैयार किया जाएगा, जिस पर प्रधानमंत्री एवं मुख्यमंत्री प्रमुखता से ध्यान देंगे।

• गांव स्तर पर व्यावहारिक योजना बनाने की एक पद्धति का विकास और इससे सरकार के ऊपरी स्तर के लिए कार्ययोजना का विकास करना।

• रणनीति तैयार करना, दीर्घकालिक योजना एवं कार्यक्रम बनाना, और जरूरत पड़ने पर बीच में उसका संशोधन करना।

• विकास कार्य में तेजी लाने के लिए विभिन्न विभागों और क्षेत्रों के बीच विवाद निपटारे के लिए मंच के रूप में कार्य करना।

• सुशासन और सर्वोत्तम कार्य पद्धतियों पर अत्याधुनिक ज्ञान केंद्र का विकास करना और संबंधित पक्षों तक उसका प्रसार करना।

• परामर्श देना और महत्वपूर्ण संस्थानों के बीच साझेदारी को बढ़ावा देना।

• ज्ञान, नवाचार और उद्यमिता सहयोग प्रणाली का विकास करना।

• कार्यक्रमों का सक्रिय पर्यवेक्षण और मूल्यांकन करना और उसकी सफलता के लिए जरूरी सहयोग करना।

• कार्यक्रम लागू करने के लिए प्रौद्योगिकी उन्नयन और निर्माण करना।

• राष्ट्रीय विकास एजेंडे और उपर्युक्त लक्ष्यों के क्रियान्वयन हेतु सभी प्रयास करना।

• आर्थिक रणनीति और नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा सुनिश्चित करना।

• हाशिए पर रह गए लोगों पर विशेष ध्यान देना।

• महत्वपूर्ण हितधारकों तथा समान विचारधारा वाले राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय थिंक टैंक और साथ ही साथ शैक्षिक और नीति अनुसंधान संस्थानों के बीच भागीदारी का परामर्श एवं प्रोत्साहन देना।

• आवश्यक संसाधनों की पहचान करने सहित कार्यक्रमों और उपायों के कार्यान्वयन के सक्रिय मूल्यांकन और सक्रिय निगरानी की जाएगी ताकि सेवाएं प्रदान करने में सफलता की संभावनाओं को प्रबल बनाया जा सके।

• आयोग यह सुनिश्चित करेगा कि जो क्षेत्र विशेष रूप से उसे सौंपे गए हैं उनकी आर्थिक कार्यनीति और नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा के हितों को शामिल किया गया है।

• अत्याधुनिक कला संसाधन केंद्र बनाना जो सुशासन तथा सतत् और न्यायसंगत विकास की सर्वश्रेष्ठ कार्यप्रणाली पर अनुसंधान करने के साथ-साथ हितधारकों तक जानकारी पहुंचाने में भी मदद करेगा।

नियोजन की समीक्षा (1951-2012)

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56)

प्रथम पंचवर्षीय योजना के आरंभ में भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष अनेक संकट विद्यमान थे। जहां एक ओर गंभीर खाद्य संकट, शरणार्थियों की समस्या व मुद्रा स्फीति की समस्या से भारतीय अर्थव्यवस्था को जूझना था, वहीं दूसरी ओर द्वितीय विश्वयुद्ध व विभाजन से छिन्न-भिन्न भारतीय अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण करना था। इसलिए प्रथम पंचवर्षीय योजना में खाद्य संकट से निबटने के लिए कृषि पर मुख्य बल दिया गया था। साथ ही मुद्रा-स्फीति पर काबू पाने को भी उच्च प्राथमिकता दी गई थी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना की उपलब्धियां उल्लेखनीय रहीं एवं इस योजना के दौरान अनेक क्षेत्रों में सुनिश्चित लक्ष्यों से अधिक की प्राप्ति की गई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61)

प्रथम योजना की अपेक्षा ज्यादा व्यापक और उम्मीदों से परिपूर्ण थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य औद्योगीकरण और आर्थिक विकास के लिए औद्योगिक आधार विकसित करना था। 1948 की औद्योगिक नीति को जारी रखा गया और इसके साथ ही 1956 की नई औद्योगिक नीति घोषणा को ग्रहण किया गया। सार्वजनिक क्षेत्र को और अधिक विकसित करते हुए समाजवादी समाज की स्थापना पर बल प्रदान करते हुए द्वितीय पंचवर्षीय योजना 1956 में शुरू की गई।

इस योजनान्तर्गत भारत की राष्ट्रीय आय में 19.5 प्रतिशत तथा प्रति व्यक्ति आय में 8 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 10 लाख टन उत्पादन की क्षमता वाले तीन संयंत्रों की दुर्गापुर (पश्चिम बंगाल), राउरकेला (उड़ीसा) और भिलाई (मध्य प्रदेश) में स्थापना की गई।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66)

तीसरी पंचवर्षीय योजना में दीर्घकालिक विकास पर ध्यान केन्द्रित किया गया। नियोजना आर्थिक विकास की एक निरंतर प्रकिया है—इस बात को अनुभव करते हुए तृतीय पंचवर्षीय योजना में द्वितीय योजना के ही अधूरे कार्यों को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया गया। तृतीय योजना में इस बात पर बल दिया गया कि जहां तक संभव हो सके कृषि-उत्पादन का विस्तार किया जाए और कृषि क्षेत्र से जनसंख्या का दबाव कम किया जाए। तृतीय पंचवर्षीय योजना कई दृष्टियों से पूर्णतया असफल रही।

प्लान हॉलिडे (योजना अवकाश)

वर्ष 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध से उत्पन्न स्थिति, 1965 और 1966 के लगातार दो वर्षों तक भंयकर सूखे, मुद्रा अवमूल्यन, मूल्यों में तीव्र वृद्धि (तृतीय पंचवर्षीय योजना के दौरान खाद्यान्न पदार्थों के मूल्य सूचकांक में 48.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी), संसाधनों के ह्रास आदि कारणों से चौथी पंचवर्षीय योजना समय से लागू नहीं की जा सकी। वर्ष 1966 से 1969 के बीच चौथी पंचवर्षीय योजन के प्रारूप के अन्तर्गत तीन वार्षिक योजनाएं बनाई गईं।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

रोलिंग प्लान

भारत में रोलिंग प्लान की अवधारणा को वर्ष 1978 में अपनाया गया। रोलिंग प्लान के अंतर्गत प्रतिवर्ष तीन योजनाएं बनाई व लागू की जाती हैं। पहली योजना के अंतर्गत चालू वर्ष का वार्षिक वजट व विदेशी विनिमय वजट होता है। दूसरी योजना में 3, 4, या 5 वर्ष की एक योजना होती है जो प्रतिवर्ष अर्थव्यवस्था की परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। तीसरी योजना दीर्घावधि अर्थात् 10, 15 या 20 वर्ष की परिदृश्य योजना होती है, जिसमें वृहद् लक्ष्यों का वर्णन होता है। रोलिंग प्लान के अंतर्गत परिदृश्यात्मक योजना के लक्ष्यों को ध्यान में रख कर अन्य दो योजनाओं को तैयार किया जाता है।

रोलिंग प्लान का एक लाभ यह है कि वे लक्ष्यों के संशोधन के लिए पंचवर्षीय योजनाओं पर निर्भरता से मुक्ति दिलाती हैं। हालांकि, यदि प्रत्येक वर्प लक्ष्यों का संशोधन किया जाता है, तो यह संभव नहीं है कि इनकी प्राप्ति की जा सके। इसके अतिरिक्त, त्वरित संशोधन अर्थव्यवस्था में संतुलन को वनाए रखना मुश्किल कर देंगे, जो इसके संतुलित विकास के लिए आवश्यक है। यद्यपि मेक्सिको एवं म्यांमार जैसे अल्पविकसित देशों में रोलिंग प्लान की तकनीक असफल रही, तथापि जापान और पोलैंड जैसे विकसित देशों में इसका सफलतापूर्वक इस्तेमाल हुआ।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74)

'योजना अवकाश' के बाद चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) की शुरूआत की गई। 'स्थिरता के साथ विकास' और 'आत्मनिर्भरता' की अधिकाधिक प्राप्ति इस योजना के केन्द्र विन्दु थे।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79)

पांचवीं पंचवर्षीय योजना को 1972-73 की मूल्य वृद्धि के आलोक में लागू किया गया। 'निर्धनता उन्मूलन' तथा 'आत्मनिर्भरता की प्राप्ति' पांचवीं पंचवर्षीय योजना के केन्द्र-विन्दु थे।

छठवीं पंचवर्षीय योजना (1980-85)

छठवीं पंचवर्षीय योजना का सर्वप्रमुख उद्देश्य निर्धनता दूर करना था। नीति के अंतर्गत कृषि एवं उद्योग, दोनों के आधारभूत ढांचे को सुदृढ़ करने पर बल दिया गया। 'गरीबी हटाओ' इस योजना का सुप्रसिद्ध स्लोगन था।

छठवीं पंचवर्षीय योजना लक्ष्य की प्राप्ति में वहुत हद तक सफल हुई। आई.आर.डी.पी., एन.आर.ई.पी. और आर.एल.ई.जी.पी. जैसी निर्धनता उन्मूलन योजनाओं और ग्रामीण विकास कार्यक्रम के माध्यम से निर्धनता उन्मूलन को नियंत्रित करने की दिशा में प्रेरक सफलता हासिल की गयी।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)

सातवीं पंचवर्षीय योजना का प्रारूप 9 नवम्बर, 1985 को राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा स्वीकृत किया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना 15 वर्षीय दीर्घावधिक परियोजना का एक हिस्सा थी।

बेरोजगारी तथा गरीबी को कम करने के लिए पहले से क्रियान्वित कार्यक्रमों के अतिरिक्त 'जवाहर रोजगार योजना' जैसे विशेष कार्यक्रम की शुरूआत की गई। इस दिशा में लघु उद्योगों तथा खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों के महत्व को भी स्वीकार किया गया।

1989 में केन्द्र में सत्ता परिवर्तन हुआ और राष्ट्रीय मोर्चा सरकार की स्थापना हुई। यह सरकार इतनी अस्थिर साबित हुई कि इसके द्वारा आठवीं पंचवर्षीय योजना समय से लागू नहीं की जा सकी। इसके बाद सत्तासीन होने वाली कांग्रेस (आई) द्वारा समर्थित सरकार द्वारा भी आठवीं योजना लागू नहीं की जा सकी। जून, 1991 में कांग्रेस-आई की सरकार स्थापित हुई और उसने यह निर्णय लिया कि आठवीं पंचवर्षीय योजना अप्रैल, 1992 से लागू की जाएगी। बीच की 1990-91 और 1991-92 की अवधि के लिए आठवीं योजना के प्रारूप के तहत वार्षिक योजनाएं निर्मित की गईं। इन वार्षिक योजनाओं का मुख्य उद्देश्य रोजगार के अधिक अवसरों का सृजन तथा सामाजिक परिवर्तन था।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97)

आठवीं पंचवर्षीय योजना के माध्यम से रोजगार के अधिकाधिक अवसरों के सृजन की कोशिश की गई। इस योजना में भी औद्योगिक विकास पर बल दिया गया। कृषि

के विकास हेतु व्यापक कदम उठाने तथा इस क्षेत्र से संबंधित निर्यात में वृद्धि करने तथा सिंचाई के विकास को भी आठवीं पंचवर्षीय योजना का केन्द्र-विन्दु वनाया गया।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान सवके लिए शिक्षा की प्राप्ति के उद्देश्य से 'ऑपरेशन ब्लैक वोर्ड', व 'राष्ट्रीय पोषाहार कार्यक्रम' जैसे अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम शुरू किए गए।

नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002)

सकल घरेलू उत्पाद की वार्षिक वृद्धि दर 6.5 प्रतिशत होने की संभावना व्यक्त की गई। इस पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य 'सामाजिक न्याय तथा समानता के साथ वृद्धि' रखा गया।

नौवीं योजना की विशेपता यह थी कि इसमें 'विशेप कार्य योजना' नामक सूची में प्रधानमंत्री ने प्राथमिकताओं को स्पष्ट किया था। इसके अंतर्गत पांच क्षेत्रों पर विशेप ध्यान दिया गया, यथा—खाद्य एवं कृपि, भौतिक आधारभूत संरचना, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं पेय जल, सूचना प्रौद्योगिकी, तथा; जल स्रोत।

नौवीं योजना ने महिलाओं के लिए अवधारणात्मक रणनीति में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। पहला, महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए, योजना ने इस वात का प्रयास किया कि ऐसा अनुकूल वातावरण तैयार किया जाए जिसमें महिलाएं अपने अधिकारों का मुक्त होकर प्रयोग कर सकें। दूसरे, योजना ने मौजूदा सेवाओं का दो भागों—महिला उन्मुख एवं महिला संबंधी क्षेत्रों में विभाजन किया। इसके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए, इसने केंद्र एवं राज्यों दोनों को महिला कंपोनेंट प्लान (डब्ल्यूसीपी) के लिए विशेष रणनीति अपनाने को कहा।

निर्धनता-विरोधी कार्यक्रमों के मामले में, जबकि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आईआरडीपी) वैयक्तिक लाभार्थियों पर ध्यान केंद्रित करता है, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (एसजीएसवाई) ने सामाजिक गतिशीलता एवं समूह निर्माण, पर वेहद जोर दिया। हालांकि, जिला ग्रामीण विकास प्राधिकारी (DRDA's) इस कार्यक्रम के प्रशासन के लिए जिम्मेदार है, लेकिन उनके पास सामाजिक गतिशीलता के लिए जरूरी कौशल नहीं है। उन स्थानों पर एनजीओ के साथ सम्पर्क भी नहीं किया गया। कार्यक्रमों के लिए केंद्रीय राशि वेहद कम थी। साख गतिशीलता भी प्रभावित हुई। जवाहर रोजगार योजना (जेआरवाई) को 1 अप्रैल, 1999 में जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (जेजीएसवाई) में मिला दिया गया। रोजगार आश्वासन योजना (ईएएस) के तहत् रोजगार का सृजन किया गया।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007)

दसवीं पंचवर्षीय योजना, औपचारिक रूप में 1 अप्रैल, 2002 को शुरू हुई, हालांकि इस योजना का दस्तावेज योजना शुरू होने से लगभग एक वर्प वाद जारी किया गया।

दसवीं योजना के दस्तावेज में विकास प्रक्रिया को तेज वनाने हेतु महत्वपूर्ण मुद्दों एवं रणनीतियों को तीन बड़ी श्रेणियों के अंतर्गत रखा गया। ये तीन श्रेणियां हैं—(i) विकास सहयोग, (ii) क्षेत्रीय विषमताएं, तथा (iii) राजकोपीय एवं अन्य सुधार।

आर्थिक सुधारों के प्रति औद्योगिक क्षेत्र की प्रतिक्रिया अच्छी रही और उसने यह दर्शा दिया कि वह वैश्विक अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्द्धा कर पाने में सक्षम है।

दसवीं योजना के अंतर्गत सरकार की गुणवत्ता में सुधार एवं उसकी कार्य-प्रणाली में पारदर्शिता लाने हेतु कुछ कदम उठाए गए, जिनमें से प्रमुख हैं:

- सूचना का अधिकार अधिनियम-2005 का प्रवर्तन।
- अखिल भारतीय सेवा नियमों में सुधार, केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा अधिसूचित कुछ विशिष्ट पदों हेतु धारण की शर्तें निर्धारित की गई हैं; इससे उत्तरदायित्व को प्रोत्साहित करने में सहायता मिलती है।
- कराधान प्रणाली के सरलीकरण हेतु नई मूल्य संवर्द्धित कर प्रणाली (वैट) लागू।
- चुनाव सुधार हेतु प्रत्याशियों द्वारा कोष के दाताओं एवं पूर्व पद का खुलासा करना अनिवार्य वनाया गया।
- सूचना एवं सेवाओं के प्रवाह में सुधार हेतु 27 वड़े क्षेत्रों में ई-शासन योजना को अपनाया गया।
- एनआरईजीए, एनआरएचएम एवं अन्य मापदण्डों के प्रस्तुतिकरण के द्वारा सहभागिता शासन की पहल।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

- सहभागिता व्यवस्था के प्रवर्तन में स्वैच्छिक क्षेत्र के महत्व को देखते हुए केंद्र सरकार द्वारा स्वैच्छिक संगठनों के लिए नीति की घोषणा।
- आपदाग्रस्त क्षेत्रों में और अधिक प्रभावी राहत कार्यों हेतु एक राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की स्थापना।
- लोक प्रशासन व्यवस्था में सुधार हेतु विस्तृत ब्ल्यू प्रिंट तैयार करने हेतु 2005 में द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012)

दिसंबर 2007 में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली 54वीं राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप को स्वीकृति प्रदान कर दी गई।

विगत वर्षों में अर्थव्यवस्था में सकल रोजगार में सुधार आया है, किंतु श्रमिक वर्ग में अत्यधिक वृद्धि हुई है, जिससे बेरोजगारी की दर में वृद्धि हुई है। साथ ही, सम्पूर्ण देश में आर्थिक विकास दर भी संतुलित नहीं है। यहां के कई क्षेत्र अत्यधिक पिछड़े हुए हैं तो कई अत्यधिक विकसित। अतः इन समस्त समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012) की रणनीति तैयार की गई।

ग्यारहवीं योजना का केंद्रीय विषय है—*तीव्र एवं अधिकाधिक समावेशी विकास की ओर (Towards Faster and More Inclusive Growth)*।

ग्यारहवीं योजना की रणनीति का उद्देश्य इस प्रकार की विकास प्रक्रिया प्राप्त करना है, जिससे वस्तुनिष्ठ संस्थिरता प्राप्त की जा सके।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017)

दिसंबर 2012 में राष्ट्रीय विकास परिषद् (एनडीसी) द्वारा बारहवीं योजना के प्रारूप को स्वीकृति प्रदान कर दी गई।

दृष्टि और उम्मीदें (Vision and Aspirations): व्यापक विजन और उम्मीदें, जिन्हें बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) पूरा करने का प्रयास करती है, इसके उपशीर्षक: "तीव्र, धारणीय और अधिक समावेशी विकास" में परिलक्षित होती हैं। इनमें से प्रत्येक तत्व की एक ही साथ प्राप्ति इस योजना की सफलता के लिए महत्वपूर्ण है।

बारहवीं योजना इस बात को पूर्णतः स्वीकार करती है कि विकास का उद्देश्य हमारी जनता की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों में व्यापक सुधार करना है। तथापि, इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जीडीपी का तीव्र विकास अनिवार्य जरूरत है।

तीव्र विकास: समावेशिता के उद्देश्य के लिए जीडीपी विकास महत्वपूर्ण है, इसके दो कारण हैं। पहला, जीडीपी के तीव्र विकास से सकल आय और उत्पादन में काफी विस्तार होता है जो, यदि विकास प्रक्रिया पर्याप्त रूप से समावेशी है, हमारी जनता के एक बड़े भाग को रोजगार और आय बढ़ाने के अन्य कार्यकलाप उपलब्ध करवाकर उनके जीवन-स्तर में प्रत्यक्ष बढ़ोतरी करेगा। हमारा ध्यानकेंद्रण केवल जीडीपी विकास पर नहीं होना चाहिए अपितु, यथासंभव समावेशी विकास प्रक्रिया हासिल करने पर होना चाहिए। उदाहरण के लिए वह तीव्र विकास, जिसमें कृषि में अधिक तीव्र विकास शामिल है, विशेषकर वर्षा-सिंचित क्षेत्रों में जहां अधिकांश गरीब रहते हैं, निर्यात हेतु खनिजों के खनन अथवा निष्कर्षण द्वारा पूर्ण रूप से संचालित जीडीपी विकास की तुलना में कहीं अधिक समावेशी होगा। इसी प्रकार, सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (एमएसएमई) सहित समग्र रूप से विनिर्माण क्षेत्रक के तीव्र विकास पर आधारित तीव्र विकास, रोजगार और आय अर्जन के अवसरों का अधिक व्यापक प्रसार सृजित करेगा और इसलिए यह मुख्यतया निष्कर्षणात्मक उद्योगों द्वारा प्रेरित विकास से अधिक समावेशी है। दूसरा, इससे और अधिक राजस्व अर्जन होता है जिससे समावेशिता के महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का वित्तपोषण करने में मदद मिलती है। ऐसे अनेक कार्यक्रम हैं जो गरीबों को और वंचित समूहों को या तो सीधे ही लाभान्वित करते हैं या विकास प्रक्रिया द्वारा सृजित रोजगार और आय के अवसरों तक पहुंचने में उनकी क्षमता को बढ़ाते हैं। ऐसे कार्यक्रमों के उदाहरण हैं—महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए), मध्याह्न भोजन (एमडीएम), प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (पीएमजीएसवाई), समेकित बाल विकास सेवाएं (आईसीडीएस), राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम), इत्यादि। यह धारणीयता के उद्देश्य के लिए भी प्रासंगिक है क्योंकि विकास को अधिक धारणीय बनाने के उद्देश्य वाले कार्यक्रमों में अतिरिक्त व्यय भी शामिल होता है।

बारहवीं योजना के दृष्टिकोण-पत्र, जिसे राष्ट्रीय विकास परिषद (एनडीसी) द्वारा 2011 में अनुमोदित किया गया था, ने योजना अवधि में जीडीपी के लिए 9 प्रतिशत औसत विकास लक्ष्य निर्धारित किया था।

बारहवीं योजना अवधि में 8 प्रतिशत विकास के अनुमान को एक "सामान्य" निष्पादन, जिसे अपेक्षाकृत कम प्रयास से हासिल किया जा सकता है, के रूप में नहीं देखना चाहिए। वस्तुतः यह इस बात का अनुमान है कि यदि हम वर्तमान मंदी को प्रतिवर्तित करने के लिए शीघ्र कदम उठाते हैं तथा अन्य प्रमुख बाधाओं, जो अन्यथा अर्थव्यवस्था को उच्चतर विकास मार्ग पर लौटने से रोकेंगी, का समाधान करने के लिए अन्य आवश्यक नीतिगत कार्रवाइयां भी करते हैं तो इससे क्या संभव हो सकता है। इन नीतियों पर दृढ़ता से कार्रवाई करने में विफलता से कम विकास होगा तथा समावेशिता के संबंध में भी अपेक्षाकृत कमजोर परिणाम हासिल होंगे।

महत्वपूर्ण विकास प्रेरक नीतियों पर निष्क्रियता के परिणामों को स्पष्ट करने के लिए योजना आयोग ने भारत की प्रगति को साकार करने वाली प्रमुख ताकतों, आंतरिक और वाह्य, के पारस्परिक प्रभाव को समझने के लिए विविध विचारों और विषयों पर आधारित "परिदृश्य नियोजना" की एक क्रमबद्ध प्रक्रिया शुरू की है। यह विश्लेषण भारत की अर्थव्यवस्था के संभावित विकास के संबंध में तीन वैकल्पिक परिदृश्यों का सुझाव देता है जिनका शीर्षक है—"सुदृढ़ समावेशी विकास", "अपर्याप्त कार्रवाई" और "नीतिगत अवरोध"।

पहला परिदृश्य "सुदृढ़ समावेशी विकास" उन परिस्थितियों का उल्लेख करता है जो तब प्रकट होंगी यदि प्रणाली में महत्वपूर्ण उत्तोलक विंदुओं पर हस्तक्षेप करने वाली सुकल्पित कार्यनीति को कार्यान्वित किया जाता है। वास्तव में यह परिदृश्य बारहवीं योजना के लिए 8 प्रतिशत के विकास अनुमानों, अर्थात् पहले वर्ष में 6 प्रतिशत से कम से शुरू हो कर अंतिम दो वर्षों में 9 प्रतिशत तक पहुंचने की नींव है। दूसरा परिदृश्य "अपर्याप्त कार्रवाई" निरूत्साही कार्रवाई के परिणामों का उल्लेख करता है जिसमें नीति की दिशा का समर्थन किया जाता है, परंतु पर्याप्त कार्रवाई नहीं की जाती है। इस परिदृश्य में विकास घटकर लगभग 6 प्रतिशत से 6.5 प्रतिशत रह जाता है। तीसरा परिदृश्य "नीतिगत अवरोध" अधिक लम्बे समय तक नीतिगत निष्क्रियता के परिणामों को दर्शाता है। इस परिदृश्य में विकास दर घटकर 5 प्रतिशत से 5.5 प्रतिशत तक हो सकती है।

बारहवीं योजना दस्तावेज पांच वर्ष के दौरान निर्धनता को 10 प्रतिशत विंदु तक कम करने का लक्ष्य रखता है और गैर-कृषि क्षेत्र में 50 मिलियन तक रोजगार सृजित करने का लक्ष्य रखता है। इसने कृषि क्षेत्र में 4 प्रतिशत और विनिर्माण क्षेत्र में 10 प्रतिशत संवृद्धि दर का लक्ष्य रखा है। योजना के अंत तक (2012-17), इसका उद्देश्य आधारभूत ढांचे में निवेश को बढ़ाकर जीडीपी का 9 प्रतिशत करना है। प्रत्येक वर्ष हरित आवरण को एक मिलियन हेक्टेयर तक बढ़ाना और योजनावधि में 30,000 मेगावाट तक नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता का सृजन करना अन्य उद्देश्यों में शामिल हैं। योजना में 2020 तक 20-25 प्रतिशत तक उत्सर्जन कम करने हेतु उसी दिशा में कार्य करने का लक्ष्य भी है।

समावेशिता: समावेशिता के कई अलग-अलग अर्थ हैं तथा समावेशिता का प्रत्येक पहलू, नीति के लिए अपनी-अपनी चुनौतियां प्रस्तुत करता है।

वितरण संबंधी चिंताओं को पारंपरिक रूप से, गरीबों और सर्वाधिक उपांतिक लोगों तक पर्याप्त रूप से लाभ की पहुंच सुनिश्चित करने के रूप में देखा गया है। बारहवीं योजना में भी यह एक महत्वपूर्ण नीतिगत ध्यानकेंद्रण होना चाहिए। सरकारी गरीबी रेखा से नीचे रह रही जनसंख्या के प्रतिशत में गिरावट आ रही है परंतु, इसके होते हुए भी, गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या बहुत बड़ी है।

तेंदुलकर गरीबी रेखा के औचित्य के बारे में प्रश्न उठाए गए हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों में 3,900 रु. प्रति माह तथा शहरी क्षेत्रों में 4,800 रु. प्रतिमाह के परिवार उपभोग स्तर के सदृश है (दोनों मामलों में पांच सदस्यों के परिवार के लिए)।

समावेशिता का अर्थ, सरकार द्वारा निर्धारित गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे लोगों को इससे ऊपर ले जाने तक ही सीमित नहीं है। यह एक ऐसी विकास प्रक्रिया के लिए भी है जिसे हमारे समाज के विभिन्न समाजार्थिक समूहों द्वारा

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

"न्यायसंगत" के रूप में देखा जाता है। गरीब निश्चित रूप से एक लक्षित समूह है, परंतु समावेशिता को अन्य समूहों जैसे कि अनुसूचित जातियों (एससी), अनुसूचित जनजातियों (एसटी), अन्य पिछड़े वर्गों (ओबीसी), अल्पसंख्यकों, अशक्त व्यक्तियों तथा अन्य उपांतिक समूहों की चिंताओं को भी सम्मिलित करना चाहिए। इन उद्देश्य के लिए महिलाओं को भी एक वंचित समूह के रूप में लिया जा सकता है।

समावेशिता का एक अन्य पहलू इस बात से संबंधित है कि क्या सभी राज्य और वास्तव में सभी क्षेत्र, विकास प्रक्रिया से लाभान्वित होते हैं। हाल ही के वर्षों में, क्षेत्रीय आयाम का महत्व बढ़ा है। सकारात्मक पक्ष यह है कि अनेक पूर्ववर्ती पिछड़े राज्यों ने विकास संबंधी कार्यनिष्पादन में काफी सुधार दर्शाना आरंभ किया है और विभिन्न राज्यों में विकास दरों में भिन्नता कम हो गई है। तथापि, बेहतर कार्यनिष्पादन करने वाले तथा अन्य राज्य, दोनों ही अपने पिछड़े क्षेत्रों अथवा जिलों जहां संभवतः अन्यत्र की तरह जीवनस्तर मानकों में सामान्य सुधार नहीं देखा गया है, के बारे में अधिकाधिक चिंतित हैं। इनमें से कई जिलों की विशिष्ट विशेषताएं हैं जिनमें वन क्षेत्रों में जनजातीय जनसंख्या की अत्यधिक बहुलता अथवा शहरी क्षेत्रों में अल्पसंख्यक, शामिल हैं। कुछ जिले ग्रामपंथी उग्रवाद से भी प्रभावित हैं जिससे विकास कार्य बहुत कठिन हो जाता है।

बारहवीं योजना में हमें उन राज्यों, जो पिछड़ रहे हैं, में विकास को तीव्र करने की संभावना पर विशेष ध्यान देना होगा। इसके लिए राज्यों को योजना बनाने, कार्यान्वित करने संबंधी अपनी क्षमताओं का सुदृढ़ीकरण करने तथा अपने प्रशासन में और केन्द्र सरकार के साथ और अधिक सहक्रियाशीलता लाने की आवश्यकता होगी। पहले कदम के रूप में, योजना आयोग सभी राज्य सरकारों में अपने सदृश योजना बोर्डों और योजना विभागों की क्षमताओं को सुधारने के लिए उनके साथ कार्य कर रहा है।

समावेशिता का अर्थ आय असमानता की ओर अधिक ध्यान देना भी है। असमानता के विस्तार को गिनी-गुणांक जैसे सूचकांकों द्वारा मापा जाता है जो वितरण में असमानता का माप, समग्र रूप से अथवा ऐसे उपायों द्वारा जो कि विशिष्ट आय खंडों पर ध्यानकेंद्रित करते हैं जैसे कि शीर्षतम 10 प्रतिशत अथवा 20 प्रतिशत जनसंख्या और निम्नतम 10 प्रतिशत अथवा 20 प्रतिशत जनसंख्या के उपभोग के अनुपात की दृष्टि से अथवा शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में औसत उपभोग के अनुपात की दृष्टि से प्रदान करते हैं।

अतः एक समाज के रूप में हमें भारत में प्रत्येक बच्चे को जीवन में उचित अवसर देने के आदर्श की ओर यथासंभव तीव्रता से आगे बढ़ने की आवश्यकता है जिसका अर्थ प्रत्येक बच्चे के लिए उत्तम स्वास्थ्य और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की उपलब्धता सुनिश्चित करना है। हालांकि, इसे एक योजना अवधि में हासिल कर पाना शायद संभव न हो, तथापि, बारहवीं योजना को इस आयाम के संबंध में पर्याप्त प्रगति करने का लक्ष्य रखना चाहिए।

समावेशिता अधिकारिता और भागीदारी के बारे में भी है। यह सहभागितापूर्ण लोकतंत्र का निर्माण करने में हमारे द्वारा हासिल की गई सफलता का ही माप है कि लोग अब सरकार द्वारा दिए जा रहे लाभ के निष्क्रिय प्राप्तकर्ता बने रहने को तैयार नहीं हैं। उन्होंने धीरे-धीरे इन लाभ और अवसरों को अधिकार के रूप में मांगना शुरू कर दिया है और वे इस बात का भी अधिकार चाहते हैं कि उन्हें किस प्रकार प्रशासित किया जाता है। इससे अभिशासन, जवाबदेही और लोगों की भागीदारी के मुद्दे पहले की अपेक्षा काफी अधिक हद तक आगे आते हैं। इसमें सरकारी स्कीमों के बारे में सूचना की उपलब्धता, संगत कानूनों की जानकारी और न्याय प्राप्त करने के तरीके जैसे क्षेत्र भी शामिल हैं। अभिशासन के संबंध में बढ़ती चिंता ने भ्रष्टाचार पर भी ध्यानकेंद्रित किया है। भ्रष्टाचार से कैसे निपटा जाए, यह मामला अब नीतिगत बहस का केंद्रबिंदु बन गया है।

पर्यावरणीय धारणीयता: तीव्र और अधिक समावेशी विकास के लिए प्रयास करते समय बारहवीं योजना को धारणीयता की समस्या की ओर भी ध्यान देना चाहिए। कोई भी विकास प्रक्रिया आर्थिक कार्यकलाप के पर्यावरणीय परिणामों को अनदेखा नहीं कर सकती है और न ही प्राकृतिक संसाधनों के असंधारणीय रिक्तीकरण और ह्रास की अनुमति दे सकती है। दुर्भाग्यवश, अनेक देशों में विकास का अनुभव और कुछ मामलों में हमारा अपना विगत अनुभव यह संकेत देता है कि यदि प्रारंभिक चरणों में ही उचित सुधारात्मक कदम नहीं उठाए जाते हैं तो यह आसानी से संभव हो सकता है।

पर्यावरणीय धारणीयता की उपलब्धि कई आयामों में समुदायों के जीवन को प्रभावित करेगी। इसके लिए, ऊर्जा की मांग में वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए, शहरी आवासों और परिवहन में नई ऊर्जा-कुशल पद्धतियों का विकास करने की आवश्यकता होगी। इसका अर्थ कोयला आधारित विद्युत उत्पादन में अत्यधिक ऊर्जा दक्ष प्रौद्योगिकियों का उपयोग करना होगा जैसे कि सुपर क्रिटिकल और अल्ट्रा सुपर क्रिटिकल बॉयलरों का उपयोग शुरू करना। इसके लिए उद्योगों, खेनों और कार्यालयों में ऊर्जा दक्षता को सक्रिय रूप से बढ़ावा देना तथा ब्रांड और अनिवार्य मानकों की नीतियों के माध्यम से अधिक ऊर्जा दक्ष उपकरणों को बढ़ावा देना अपेक्षित होगा। अधिक ऊर्जा दक्ष वाहनों के लिए परिवहन नीतियों और संबद्ध प्रौद्योगिकियों को विकसित करने और अपनाने की आवश्यकता होगी।

मनुष्य के कार्यकलापों की वजह से वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड तथा अन्य ग्रीन हाउस गैसों (जीएचजी) के जमा होने के फलस्वरूप जलवायु परिवर्तन के जोखिम की वजह से धारणीयता के मुद्दे का एक वैश्विक आयाम भी है।

जलवायु परिवर्तन के लिए राष्ट्रीय कार्य योजना विकसित की गई है जिसके आठ घटक मिशन हैं। इन मिशनों को कार्यान्वित करना बारहवीं योजना का एक अभिन्न अंग होना चाहिए। यह सुनिश्चित करने के लिए नीतियों की कड़ी निगरानी करनी चाहिए कि हम अपनी जीडीपी की उत्सर्जन तीव्रता को 2005 से 2020 के बीच 20 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक कम करने के निर्धारित उद्देश्य को हासिल कर सकें।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना के मुख्य संकेतकः इस योजना के पच्चीस मुख्य संकेतक तीव्र, संधारणीय तथा अधिक समावेशी विकास के परिचायक हैं–

आर्थिक विकासः • सकल घरेलू उत्पाद का 8 प्रतिशत की दर से वास्तविक विकास।

• 4.0 प्रतिशत की दर से कृषि विकास।

• 10.0 प्रतिशत की दर से विनिर्माण विकास।

• प्रत्येक राज्य द्वारा ग्यारहवीं योजना की तुलना में बारहवीं योजना में अधिमानितः उच्चतर औसत विकास दर हासिल की जानी चाहिए।

गरीबी और रोजगारः • बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक, पूर्ववर्ती आकलनों की तुलना में, प्रति व्यक्ति उपभोग गरीबी में 10 प्रतिशत अंकों की कमी।

• बारहवीं पंचवर्षीय योजना में, गैर-कृषि क्षेत्रक में 50 मिलियन नए कार्य अवसरों का सृजन तथा इतनी ही संख्या में कौशल प्रमाण-पत्र प्रदान करना।

शिक्षा • बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक, स्कूल शिक्षा के औसत वर्ष की संख्या को बढ़ाकर सात वर्ष करना।

• अर्थव्यवस्था में कौशल आवश्यकता के अनुरूप, प्रत्येक उम्र के लिए मिलियन अतिरिक्त सीटों का सृजन कर उच्चतर शिक्षा तक पहुंच बढ़ाना।

• विद्यालय पंजीकरण में लैंगिक तथा सामाजिक कमी (लड़कियों तथा ल के बीच और अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, मुसलमानों तथा आबादी के बीच) को बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक दूर करना।

स्वास्थ्यः • बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक, नवजात मृत्यु दर को घ 25 तथा मातृ मृत्यु दर को घटाकर प्रति 1000 जीवित प्रसव पर 1 तक लान बाल लिंग अनुपात (0-6 वर्ष) को सुधार कर 950 तक लाना।

• बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक, कुल प्रजनन दर को 2.1 करना।

• बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक, 0-3 वर्ष तक के बच्चों में अ को घटाकर एनएफएचएस-3 स्तरों के आधे पर लाना।

ग्रामीण अवसंरचना सहित अवसंरचनाः • बारहवीं पंचवर्ष के अंत तक, अवसंरचना में निवेश को बढ़ाकर सकल घरेलू उत्पाद के पर लाना।

• बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक, सकल सिंचित क्षेत्र को हेक्टेयर से बढ़ाकर 103 मिलियन हेक्टेयर करना।

• बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक, सभी गांवों को वि कराना तथा एटी एंड सी नुकसानों को कम कर 20 प्रतिशत पर

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

- बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक, सभी गांवों को बारहमासी सड़कों से जोड़ना।
- बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक; राष्ट्रीय और राज्य राजमार्गों को न्यूनतम दो लेन के मानदंड पर लाना।
- बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक, पूर्वी तथा पश्चिमी समर्पित माल ढुलाई गलियारे को पूरा करना।
- ग्रामीण टेली-डेंसिटी को बढ़ाकर बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक 70 प्रतिशत करना।
- बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक,यह सुनिश्चित करना कि ग्रामीण आबादी के 50 प्रतिशत को नल द्वारा 40 एलपीसीडी पेयजल की आपूर्ति सुलभ हो तथा 50 प्रतिशत ग्राम पंचायतों को निर्मल ग्राम का दर्जा मिले।

पर्यावरण और धारणीयता: • बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक, हरित-क्षेत्र (उपग्रह की तस्वीरों से की गई माप के अनुसार) में प्रतिवर्ष 1 मिलियन हेक्टेयर की वृद्धि।

- बारहवीं योजना में नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता में 30,000 मेगावाट की वृद्धि।
- सकल घरेलू उत्पाद की उत्सर्जन सघनता को 2020 तक 20 से 25 प्रतिशत घटाने (2005 के स्तरों की तुलना में) का लक्ष्य।

सेवा प्रदायगी: • बारहवीं योजना के अंत तक, 90 प्रतिशत भारतीय परिवारों तक बैंकिंग सेवाएं उपलब्ध कराना।

- बैंक खातों से जुड़े आधार प्लेटफार्म का उपयोग करके बारहवीं योजना के अंत तक, मुख्य सब्सिडियों और कल्याण संबंधी लाभार्थी भुगतानों को प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण के रूप में कार्यान्वित करना।

रणनीतियां: मुख्य रणनीतियां हैं—(i) पूर्वी प्रदेशों में निम्न उत्पादकता वाले क्षेत्रों में हरित क्रांति का विस्तार करना; (ii) राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन पर जोर देना; (iii) धारणीय कृषि हेतु राष्ट्रीय मिशन प्रारंभ करना; (iv) वर्ष 2025 तक जीडीपी में विनिर्माण क्षेत्र का हिस्सा 16 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक करना; (v) उत्पादकों एवं सरकारी नीति-निर्माताओं के बीच घनिष्ठ सहयोग सुनिश्चित करने के लिए औद्योगिक नीति में परिवर्तन करना; (vi) विनिर्माण क्षेत्र की क्षमताओं एवं प्रक्रियाओं पर ध्यान केंद्रित करना; (vii) सरकार के भीतर मौजूदा तंत्र का व्यवस्थापक सुधार; (viii) सार्वजनिक निजी भागीदारी प्रतिमान द्वारा निजी क्षेत्र के साथ सक्रिय सहभागिता के माध्यम से अवसंरचना को मजबूत करना।

समावेशी विकास एवं नियोजन

जबकि अधिकतर योजनाओं ने निर्धनता उन्मूलन और संपत्ति/पूंजी पुनर्वितरण को अपने घटकों के रूप में शामिल किया, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना ने अपने उद्देश्य के रूप में समावेशी विकास एवं संवृद्धि को अपनाया।

योजना दस्तावेज ने स्वीकार किया कि समावेशिता की दृष्टि को अवसरों की समानता को शामिल करके निर्धनता उन्मूलन के परम्परागत उद्देश्य से ऊपर उठना चाहिए और साथ ही साथ अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों, अल्पसंख्यकों एवं महिलाओं को सकारात्मक विभेद सहित समाज के सभी वर्गों के लिए आर्थिक एवं सामाजिक गंत्यात्मकता सुनिश्चित करनी चाहिए।

योजना दस्तावेज ने यह भी महसूस किया कि यह परिणाम केवल तभी सुनिश्चित किया जा सकता है यदि सशक्तिकरण के प्रयास मौजूद हों जो सहभागिता की वास्तविक भावनाओं का सृजन करे, जो लोकतांत्रिक राज्यव्यवस्था में अपरिहार्य है। वंचित समूहों एवं सीमांत लोगों का सशक्तिकरण समावेशी विकास के किसी विजन का बेहद जरूरी हिस्सा है।

योजना दस्तावेज ने कहा कि स्थानीय स्तर पर जिम्मेदारियों और अधिक प्रदत्त शक्ति के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं को अधिक प्रभावी बनाया जाना चाहिए।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना ने एक बार फिर निर्धनता उन्मूलन के रूप में समावेशिता पर बल दिया। इसने समह/सामूहिक समानता के तौर पर समावेशिता पर भी ध्यान दिया। समावेशिता का एक अन्य पहलू क्षेत्रीय संतुलन है—सभी क्षेत्रों में संवृद्धि से समान मात्रा में लाभ नहीं मिलता, इसलिए पिछड़े क्षेत्रों की पहचान करना आवश्यक है ताकि उनके विकास के लिए विशिष्ट नीतियां तैयार की जा सकें। इसलिए समावेशिता का तात्पर्य आय समानता भी है, जैसे कि अवसरों की अधिक समानता प्रदान करके अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। समावेशिता सशक्तिकरण भी है, और इसमें शासन, जवाबदेही और जन-सहभागिता शामिल होती है।

क्षेत्रीय असंतुलनों का संबोधन

अधिक विकसित एवं पारस्परिक रूप से निर्धन राज्यों के बीच व्यापक आय विभेद हैं जिसे समाप्त करने में नियोजन प्रक्रिया सफल नहीं रही। यह चिंता का विषय है। राज्यों में निर्धनता स्तरों, जीवन की भौतिक गुणवत्ता, औद्योगिक विकास, कृषि संवृद्धि, प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग और कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या का अनुपात में बेहद व्यापक अंतर हैं।

दसवीं पंचवर्षीय योजना ने पहली बार संवृद्धि के लिए राज्य-विशिष्ट लक्ष्यों का उल्लेख किया था। ग्यारहवीं योजना ने निरंतर राज्यों के लिए सकल राज्य घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) के लिए कदम उठाए। जीएसडीपी और संवृद्धि दर में अंतरों ने असमानताओं के आर्थिक संकेतकों का सार प्रस्तुत किया, लेकिन स्वास्थ्य, शिक्षा और अवसंरचना संबंधी संकेतकों में व्यापक विभिन्नता मौजूद रही।

जो क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों में समृद्ध रहे, निरंतर पिछड़े रहे। इसने नक्सलवादी आंदोलन को हवा दी और साथ ही इन राज्यों को अलग होने की मांग को बल प्रदान किया। केंद्र से राज्यों को मिलने वाले संसाधनों में विशिष्ट स्थिति को ध्यान में रखा जाना चाहिए ताकि क्षेत्रों का संतुलित विकसित किया जा सके।

केंद्र सरकार केंद्र प्रायोजित योजनाओं के लिए भी राज्यों को संसाधन अंतरित करती है।

असमानता कम करने के प्रयास

दूसरी पंचवर्षीय योजना ने कम विकिसित क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देने की महत्ता का उल्लेख किया और एक निवेश प्रारूप एवं पैटर्न बनाने का आह्वान किया जो संतुलित क्षेत्रीय विकास को आगे बढ़ाए। तीसरी पंचवर्षीय योजना में संतुलित प्रादेशिक विकास पर एक पृथक अध्याय था। योजनाओं के दौरान, विभिन्न कदम उठाए गए। क्षेत्र नियोजन एवं उप-योजना पद्धति को छठी योजना में अपनाया गया। यद्यपि ये पूरी तरह क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम नहीं थे, तथापि एनआरईपी और आईआरडीपी में निश्चित रूप से क्षेत्रीय आयाम थे। सातवीं पंचवर्षीय योजना ने स्वीकार किया कि एक क्षेत्र की आर्थिक स्थिति कृषि उत्पादकता और मानव संसाधन क्षमता द्वारा निर्धारित होती है और इन दो क्षेत्रों में असमानता में कमी समग्र तौर पर क्षेत्रीय असमानता में कमी लाएगी। सूखा संभावित, मरुस्थलीय, पहाड़ी एवं जनजातीय क्षेत्रों के लिए क्षेत्र विकास कार्यक्रम लागू किए गए। आठवीं योजना में, आर्थिक नियोजन पूर्व की अपेक्षा अधिकतर सांकेतिक रही, और विशिष्ट रूप से प्रादेशिक परिदृश्य एवं विचार-विमर्श नहीं किया गया। लेकिन पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम, सीमा क्षेत्र विकास कार्यक्रम, मरुस्थलीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम इत्यादि जैसे कार्यक्रम विशेष क्षेत्रों के लिए चलाए गए। नौवीं योजना ने स्वीकार किया कि अवसंरचना में निजी क्षेत्र का निवेश पिछड़े राज्यों के पक्ष में पक्षपातपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए, लेकिन संसाधनों का आवंटन इस तरीके से नहीं किया जाना चाहिए।

दसवीं योजना में, यह निश्चय किया गया कि, उच्च निर्धनता, निम्न विकास एवं लचर शासन के क्षेत्रों को लक्षित करने के लिए एक नई पद्धति को लाने का निर्णय किया गया जो विकास को अवरुद्ध कर रही थी। पिछड़े क्षेत्रों के लिए एक विशिष्ट कार्यक्रम के माध्यम से देश का विकास करने के लिए वर्ष 2003-04 में एक राष्ट्रीय सम विकास योजना (आरएसवीवाई) शुरू की गई। पिछड़ा क्षेत्र अनुदान कोष (बीआरजीएफ) का शुभारंभ फरवरी 2006 में किया गया। इसमें पंचायती राज संस्थानों को शामिल किया गया।

पिछड़ा क्षेत्र अनुदान कोष (Backward Region Grant Fund—BRGF) का सृजन विकास में क्षेत्रीय असमानता को दूर करने हेतु किया गया है। इस कोष की स्थापना का मुख्य उद्देश्य पहचान किए गए 27 राज्यों के 250 जिलों में विकास कार्यों को गति प्रदान करने हेतु अनुपूरक वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराना है। जिसमें से 232 जिले भारतीय संविधान के भाग-9 और 9क के अंतर्गत आते हैं जिनमें क्रमशः पंचायतों एवं नगरपालिकाओं का उल्लेख किया गया है। शेष 18 जिले संविधान के तहत् स्वायत्त जिले एवं क्षेत्रीय परिषदों और जैसाकि नागालैंड और मणिपुर के पहाड़ी

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

क्षेत्रों में राज्य विशिष्ट प्रबंधों जैसे अन्य स्थानीय सरकार संरचनाओं के अंतर्गत आते हैं। इसके अतिरिक्त इस कोष के प्रमुख कार्य हैं:

1. यह कोष स्थानीय अवसंरचना एवं अन्य विकास आवश्यकताओं, जो कि पिछड़े क्षेत्रों में जीवन के लिए पर्याप्त नहीं हैं, के बीच सेतु का कार्य करता है।
2. स्थानीय आवश्यकताओं के संदर्भ में सहभागिता आयोजना, निर्णय-निर्माण, क्रियान्वयन एवं पर्यवेक्षण के सरलीकरण द्वारा पंचायत एवं नगरपालिका स्तर पर शासन को और अधिक उपयुक्त क्षमता का निर्माण कर सुदृढ़ बनाना।
3. स्थानीय निकायों को उनकी योजनाओं की आयोजना, क्रियान्वयन एवं पर्यवेक्षण के लिए विशेषज्ञ सहायता उपलब्ध कराना।
4. पंचायतों को निर्दिष्ट छिद्रान्वेषी (Critical) कार्यों के निष्पादन में सुधार करना।

राष्ट्रीय सम विकास योजना (Rashtriya Sam Vikas Yojana—RSVY) को पिछड़े क्षेत्र अनुदान कोष कार्यक्रम के अंतर्गत सम्मिलित कर लिया गया है। आरएसवीवाई योजना के अंतर्गत पहले से सम्मिलित जिलों को योजना में निर्धारित पूर्ण अनुदान (₹ 45 करोड़ प्रति जिला) प्रदान किया जाएगा। इसके पश्चात् इन्हें बीआरजीएफ कार्यक्रम के अनुरूप कोष प्रदान किया जाएगा।

बीआरजीएफ ने राष्ट्रीय क्षमता निर्माण फ्रेमवर्क (एनसीबीएफ) को अपना लिया। इसने संस्थात्मक प्रबंधनों के सशक्तिकरण को लागू किया, जिसमें निर्वाचित प्रतिनिधियों के क्षमता निर्माण हेतु ढांचागत एवं सॉफ्टवेयर मदद, पंचायती राज संस्थानों के कार्यकर्ताओं एवं अन्य स्टेकहोल्डर्स की सहायता करना शामिल है जिससे निचले पायदान तक लोकतंत्र सशक्त हो सके।

वर्ष 2009 में, विश्व बैंक ने 8 राज्यों के 16 जिलों में बीआरजीएफ कार्यक्रम का स्वतंत्र मूल्यांकन आयोजित किया। इस मूल्यांकन से स्पष्ट हुआ कि यद्यपि बीआरजीएफ के अंतर्गत आबंटित वित्त कम था, तथापि परियोजनाओं में समुदायों द्वारा अर्थपूर्ण निवेश किया गया जिन्हें विकेन्द्रीकृत सहभागिता पद्धति में चुना गया। मूल्यांकन रिपोर्ट संकेत करती है कि बीआरजीएफ पंचायतों को उपलब्ध विवेकाधीन वित्त का एकमात्र महत्वपूर्ण स्रोत है। अध्ययन यह भी सुझाव देता है कि अत्यधिक प्रभावी परिणाम हेतु निर्गमों को बढ़ाया जाना चाहिए।

वर्ष 2015 से बीआरजीएफ एक राज्य योजना है।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम (एचएडीपी) और पश्चिमी घाट विकास कार्यक्रम (डब्ल्यूजीडीपी) के साथ शुरू हुई। कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य, जैवविविधता का संरक्षण एवं पहाड़ी पारिस्थितिकी का पुनरुद्धार पर बल देने के साथ पारितंत्र-संरक्षण एवं पारितंत्र पुनर्स्थापन थे। डब्ल्यूजीडीपी के अंतर्गत, जलसंभर आधारित विकास आधारभूत मुख्य क्षेत्र बना रहा।

इसके अलावा, सतत आजीविका अवसरों का सृजन इसका उद्देश्य था।

सीमा क्षेत्र विकास कार्यक्रम (बीएडीपी), जिसे सातवीं योजना के दौरान शुरू किया गया, का उद्देश्य सीमा क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु विशिष्ट प्रयास करना और इस सुदूर एवं दुर्गम क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के बीच सुरक्षा का भाव विकसित करना। नौवीं योजना के दौरान इस कार्यक्रम को उन राज्यों तक विस्तारित किया गया जिनकी सीमा म्यांमार, चीन, भूटान एवं नेपाल से मिली हुई थी। इस कार्यक्रम को ग्यारहवीं योजनावधि में मजबूत किया गया। सीमा क्षेत्र के ग्रामों एवं खण्डों (ब्लॉक) को भारत निर्माण एवं अन्य ऐसी योजनाओं में उच्च प्रमुखता दी गई। सीमा क्षेत्र विकास विभाग ने राज्य योजना की स्कीम्स और विशिष्ट केंद्रीय सहायता प्राप्त योजनाओं का क्रियान्वयन किया।

संपर्कता विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है और अभी भी सीमा क्षेत्र के कई गांव दुर्गम भू-क्षेत्र के कारण सड़क मार्ग से नहीं जुड़े हैं। इसलिए फुटब्रिज, रोप वे, इंटरलिंक रोड द्वारा सीमा क्षेत्र के ग्रामीण क्षेत्रों की बारहवीं योजना के दौरान समस्या कम करने पर ध्यान केंद्रित किया गया।

सांसद स्थानीय क्षेत्र विकास योजना

सांसद स्थानीय क्षेत्र विकास योजना 23 दिसंबर, 1993 को शुरू की गई थी, ताकि सांसद स्थानीय विकास आवश्यकताओं के अनुरूप कार्य करवाने की संस्तुति कर सकें। इस योजना के लिए व्यापक दिशा-निर्देश 2005 में जारी किए गए।

इस योजना की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं:

- इस योजना के अंतर्गत कार्य का स्वरूप विकासोन्मुखी होना चाहिए। यह स्थानीय आवश्यकताओं पर आधारित होना चाहिए जिससे स्थायी परिसंपत्ति बनाई जा सके।
- सांसद अपनी पसंद के कार्यों के बारे में जिलाधिकारियों को संस्तुति भेजते हैं जिसे संबंधित राज्य सरकार की प्रक्रिया के तहत् क्रियान्वित किया जाता है।
- योजना के बारे में समस्त प्रकार के निर्णय और उनकी निगरानी जिला अधिकारियों द्वारा की जाती है।
- लोकसभा के सदस्य अपने चुनाव क्षेत्र में, राज्यसभा के सदस्य चुने हुए राज्य में और मनोनीत सदस्य पूरे देश में कहीं भी कार्य की सिफारिश कर सकते हैं।
- योजना के अंतर्गत जारी राशि व्ययगत नहीं होती, उसे आवश्यकतानुसार आगे ले जाया जा सकता है। वर्तमान में हर सांसद को ₹ 5 करोड़ की राशि उपलब्ध होती है।
- पेयजल, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए राशि को प्राथमिकता दी जाती है।
- सरकारी एजेंसियों द्वारा किए जा रहे कार्य के लिए धन की सीमा नहीं होती जबकि न्यासों/सोसायटियों के लिए ₹ 25 लाख की सीमा होती है।
- आपदा की स्थिति में प्रभावित क्षेत्र में पुनर्वास के लिए ₹ 50 लाख की सीमा निर्धारित की गई है।
- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के इलाके में विकास पर विशेष ध्यान देने के लिए सांसद स्थानीय विकास निधि का 15 प्रतिशत अनुसूचित जाति और 7.5 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति वाले क्षेत्र में व्यय किया जाएगा।
- कार्यान्वयन एजेंसी के रूप में अब पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों की भूमिका पर जोर दिया जाता है।
- लोकसभा के गठन और राज्यसभा के लिए चुनाव के साथ ही ₹ 1 करोड़ की राशि सांसदों को स्वतः जारी कर दी जाती है, मासिक प्रगति रिपोर्ट की प्रतीक्षा नहीं की जाती।
- वित्तीय दायित्व निर्धारण के लिए पिछले वित्त वर्ष की उपयोगिता प्रमाण-पत्र और उससे पूर्व के वर्ष में जारी राशि की लेखा रिपोर्ट दूसरी किस्त जारी किए जाने के पूर्व प्रस्तुत की जानी आवश्यक है।
- कार्यान्वयन के लिए जिस राज्य में कार्य हो रहा है, उसमें लागू वित्तीय, लेखा प्रक्रिया ही लागू होगी।

लोगों की विकास आवश्यकताओं को पूरा करने की दिशा में इस योजना का अच्छा प्रभाव रहा है। आम जनता के लाभ के अनेक कार्य इस योजना के तहत् कराए गए। इनमें स्कूल भवनों का निर्माण, पीने के पानी की व्यवस्था, सड़कों, पुलों, खेल स्टेडियम, फुटपाथों और बिजली की व्यवस्था से संबंधित कार्य शामिल हैं।

उल्लेखनीय है कि सांसदों की लंबे समय से चली आ रही मांग को सरकार ने मान लिया है, और इसमें ढाई गुना की वृद्धि करते हुए ₹ 2 करोड़ प्रति वर्ष से ₹ 5 करोड़ प्रति वर्ष कर दिया है। यह वृद्धि 1 अप्रैल, 2011 से लागू हो चुकी है। इसके लिए प्रत्येक वर्ष ₹ 2370 करोड़ का आवंटन किया जाएगा।

यदि इस निधि को कर्तव्यनिष्ठा एवं विकासात्मक तौर पर संचालित किया जाए तो यह बेहद कल्याणकारी साबित होगी।

संशोधित दिशा-निर्देशों को मई 2014 में जारी किया गया। इनमें स्पष्ट रूप से वे क्षेत्र अंकित किए गए जो योजना हेतु निषिद्ध थे तथा वे क्षेत्र जो स्वीकृत थे। एक सांसद को उसके निर्वाचन क्षेत्र अथवा राज्य के बाहर धन आवंटित करने की अनुमति दी गई थी।

ट्रस्टों एवं सोसाइटियों द्वारा जनजातीय लोगों की भलाई के लिए किए जाने वाले कार्यों हेतु परिसंपत्तियों के निर्माण की सीमा को बढ़ाकर 75 लाख रुपए किया गया। सहकारी समितियों (Cooprative Societies) को MPLADS के अंतर्गत योग्य घोषित किया गया। धन अब प्राकृतिक अथवा मानव निर्मित आपदाओं से मुकाबला करने के लिए आवंटित किया जा सकता है। सार्वजनिक एवं समुदाय द्वारा योगदान की अनुमति दी गई। कार्यों को केंद्र/राज्यों की अनुमोदित योजनाओं, जैसे मनरेगा (MGNAREGA), के साथ एकाग्र, किया जा सकता है। स्थानीय निकाय से प्राप्त धन MPLADS प्रोजेक्ट के साथ साझा किया जा सकता है। स्थानी

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

समस्याओं को दृष्टिगत रखकर किए गए सर्वश्रेष्ठ नवाचारों पर एक वार्षिक प्रतियोगिता, एक सांसद एक विचार (One MP—One idea), में विचार किया जाएगा। MPLADS के अंतर्गत कार्यों के कार्यान्वयन एवं लेखा परीक्षण हेतु उचित तंत्र है।

सांख्यिकी एवं योजना कार्यान्वयन, मंत्रालय योजनाओं के लिए धन का आवंटन करता है एवं कार्यान्वयन संबंधित निगरानी तंत्र की व्यवस्था करता है। प्रत्येक राज्य व केंद्रशासित प्रदेश में एक नोडल विभाग को प्राधिकृत किया गया है। इस विभाग का उत्तरदायित्व है कि MPLADS के कार्यान्वयन में जिला व अन्य विभागों के साथ समन्वय करे। भारत सरकार जिला प्राधिकारियों को आवंटित MPLADS फंड की सूचना राज्य के नॉडल विभाग को देती है तथा जिला प्राधिकारी MPLADS के कार्यान्वयन की स्थिति की रिपोर्ट भारत सरकार व राज्य नॉडल विभाग को देते हैं।

आधिकारिक सूत्रों के अनुसार, विभिन्न प्रकार की संपत्तियों के निर्माण के साथ, MPLADS बेहद सफल रहा। हालांकि, इसकी आलोचना भी हुई। इसके तहत् कोष के गलत इस्तेमाल के आरोप लगाए गए। विशिष्ट रूप से पिछड़े राज्यों में फंड के उपयोग न करने की शिकायतें दर्ज की गईं। यह भी मामला सामने आया कि इस योजना के तहत् विकसित संपत्तियों की देख-रेख कौन करेगा।

भारत में आर्थिक नियोजनः एक मूल्यांकन

उपलब्धियां

सीमित रूप से फलदायी होने के बावजूद, नियोजन ने भारत को विकास पथ पर अग्रसर किया।

1. संवृद्धि एवं विकास की शुरुआत हुई।
2. अवसंरचनात्मक विकास प्रशंसनीय रहा। रेलवे, सड़क, सिंचाई, संचार—सभी ने वृद्धि दर्ज की।
3. मूलभूत एवं पूंजीगत सामान उद्योग विकसित किया गया, विशिष्ट रूप से विकास की महालनोबिस रणनीति के परिप्रेक्ष्य में।
4. कृषिगत विकास में वृद्धि नहीं हो सकी, चूंकि नियोजन संबंधी प्रयास सही तरीके से नहीं किए गए। नियोजन की शुरुआत में भूमि सुधार ने कुछ क्षेत्रों में कृषि विकास को दर्शाया। तकनीकी आगतों ने कृषि उत्पादन बढ़ाने में मदद की।

कमियां

नियोजित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत उपलब्धियों को दरकिनार नहीं किया जा सकता है। हालांकि, हम भारी कमियों की उपेक्षा नहीं कर सकते जो अपनाई गई रणनीतियों और लचर क्रियान्वयन के चलते उपजीं।

1. मूल्यांकन की कमी
2. प्रक्षेपण एवं संसाधनों के बीच अंतर
3. पारदर्शिता एवं जवाबदेही की कमी
4. अक्षम प्रदायन तंत्र
5. असमान विकास एवं 'समावेश' का अभाव
6. रणनीति का अभाव
7. एकतरफा औद्योगिक रणनीति
8. रोजगार मोर्चे पर असफलता
9. प्रभावी वित्तीय रणनीति की कमी
10. सामाजिक न्याय मोर्चे पर सफलता का निम्न स्तर
11. क्रियान्वयन में असफलता
12. वास्तविक विकेन्द्रीकरण का अभाव

समग्र तौर पर कहें तो, नियोजन ने पूंजी, संवृद्धि एवं उत्पादन के सृजन एवं आर्थिक विकास में मदद की। लेकिन यह सामाजिक न्याय की लक्ष्य प्राप्ति ल रहा।

में योजना की सार्थकता

ाप्ति के समय से ही योजना हमारे आर्थिक विकास उपागम का एक ंभ रही है। वर्तमान में योजना की सार्थकता व आवश्यकता विषय पर बहस जारी है। मुक्त बाजार के पक्षधर योजना को बाजार सुधारों के लिए अवरोधक मानते हैं। वे मानते हैं कि विकास व अन्य आर्थिक गतिविधियों में शामिल अभिकरणों में समन्वय लाने हेतु बाजार तंत्र सक्षम है।

सामान्यतया, विशेषतः राज्य स्तर पर, यह धारणा है कि बजटीय प्राथमिकताएं निवेश का निर्धारण करती हैं। वास्तव में विकास प्राथमिकताओं के निर्धारण का सूत्रधार वित्त विभाग है न कि योजना आयोग। इस प्रकार कहा जा सकता है कि विकास संबंधी प्राथमिकताओं का निर्धारक बजट है न कि योजनाएं। इससे यह प्रश्न उभरता है कि क्या वास्तव में विकास हेतु औपचारिक रूप से योजना बनाने की कोई आवश्यकता व सार्थकता है?

भारत जैसे देश में, जहां व्यापक विकास हेतु भारी राशि की आवश्यकता होती है और जो कई क्षेत्रों तक विस्तृत है, योजनाओं को इस व्यय के अनुसार समन्वित किया जाना चाहिए।

अर्थव्यवस्था के स्वस्थ विकास के लिए सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक है। विश्व बैंक के अनुसार पूर्वी एशिया के संकट का कारण अपर्याप्त सरकारी नियंत्रण है। वस्तुतः नियंत्रण के अभाव में निजी क्षेत्र में अस्थिरता का वातावरण बन जाता है। स्पष्टतया, अब समय आ गया है कि इस विषय पर चर्चा हो कि बाजार अर्थव्यवस्था में सरकार की क्या भूमिका है; या क्या सरकार को इस संदर्भ में कोई भूमिका निभाने की आवश्यकता है?

योजना सरकार को बाजार शक्तियों को नियंत्रित कर राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति की प्रक्रिया में शामिल करती है। इस संबंध में सरकार की भूमिका निर्णायक होती है; तथापि, उसे विभिन्न क्षेत्रों में निजी क्षेत्र की सहायता करनी चाहिए तथा स्वयं एक प्रोत्साहक की भूमिका निभानी चाहिए।

वास्तव में योजना की सार्थकता पर इसलिए प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा रहा कि यह एक अवांछनीय गतिविधि है बल्कि इसलिए कि हम योजना के प्राथमिक सिद्धांतों से विचलित हो गए हैं। वास्तविकता तो यह है कि संतुलित विचारों एवं उनके क्रियान्वयन के लिए योजना की प्रक्रिया एक आधारभूत तत्व है।

नीति आयोग के निर्माण का औचित्य

मई 2014 में हुए सत्ता परिवर्तन से काफी पहले से ही योजना आयोग के कामकाज को लेकर कठोर आलोचना होती रही है। उसकी सार्थकता और उपयोगिता पर प्रश्न उठाए जाते रहे हैं। यह कहा जाता रहा है कि योजना आयोग अपने उद्देश्यों को पूरा करने में विफल हो गया है। अपने विशाल कर्मचारियों के साथ वह एक सफेद हाथी मात्र बनकर रह गया है। उसमें काम करने वाले वेतनभोगी विद्वान विकास के पहियों को आगे बढ़ाने के बजाय स्वयं आर्थिक बोझ बन गए हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि योजना आयोग ने स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, लेकिन दूसरी ओर से आलोचनाएं भी पूरी तरह निराधार नहीं हैं।

केंद्र सरकार का मानना है कि विगत् 65 वर्षों में आर्थिक परिस्थितियां तेजी से बदली हैं। भारत अब उभरती अर्थव्यवस्था नहीं अपितु वैश्विक अर्थव्यवस्था में एक बड़ी भूमिका निभाने की तैयारी में है। ऐसे में पचास के दशक में सोवियत संघ के ढांचे पर बनी ऐसी संस्थाओं की कोई उपयोगिता नहीं है, जो पश्चिमी सोच के आधार पर भारत में चलाई जा रही हों। बदली परिस्थितियों में भारत की प्राथमिकताओं के हिसाब से संस्था का गठन जरूरी हो गया था जिसकी भूमिका सलाहकार के रूप में अधिक हो। इसलिए नीति आयोग का गठन किया गया।

वर्ष 1950 में योजना आयोग का गठन करते समय उसका घोषित उद्देश्य यह बताया गया था कि वह देश के संसाधनों का अच्छे तरीके से दोहन करके, उत्पादन बढ़ाकर और समुदाय की सेवा में सभी को रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाकर लोगों के जीवन स्तर में तेजी से सुधार लाएगा। विकास के विभिन्न सूचकांक बताते हैं कि आज 65 वर्षों के बाद भी देश इन उद्देश्यों से कितनी दूर है। संसाधनों का अच्छे तरीके से दोहन कम और उनकी लूट अधिक हुई है, जिस पर नियंत्रण का कोई उपाय आयोग के पास नहीं है। उत्पादन बढ़ा अवश्य है लेकिन वह देश की निरंतर बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सर्वथा अपर्याप्त है। सभी को रोजगार देने के उपाय कम से कम योजना आयोग के कार्यालय से तो नहीं निकल देश की लगभग एक-तिहाई आबादी आज भी गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बिताने के लिए मजबूर है।

योजना आयोग जब बनाया गया था, वह मुख्य रूप से सरकार नि

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

शुद्ध अप्रत्यक्ष कर का आकलन सब्सिडी में से अप्रत्यक्ष करों को घटाने पर प्राप्त होता है।

अतः सकल घरेलू उत्पाद (बाजार मूल्य पर) = साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद + सब्सिडी – अप्रत्यक्ष कर।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद (बाजार मूल्य पर): यदि बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद का विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय से योग किया जाये तो बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होता है।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद (बाजार मूल्य पर) = सकल घरेलू उत्पाद (बाजार मूल्य पर) + विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GDP) और शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) में मूल्य-ह्रास के कारण अंतर होता है। यदि बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) में से मूल्य-ह्रास को घटा दिया जाये तो शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होता है।

मूल्य ह्रास: एक वर्ष की उत्पादन प्रक्रिया में पूंजी की निश्चित मात्रा का उपभोग होता है। उत्पादन प्रक्रिया में पूंजीगत मशीनरी निरंतर प्रयोग के कारण टूट-फूट व घिस जाती है, जिसके कारण उसके मूल्य में कमी आ जाती है; पूंजीगत वस्तुओं के इस प्रकार उत्पादन प्रक्रिया में ह्रासित होने और मूल्य में कमी आने को ही मूल्य ह्रास कहते हैं।

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP): शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद= सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP)–मूल्य ह्रास।

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद को बाजार मूल्य पर राष्ट्रीय आय के नाम से भी जाना जाता है।

व्यक्तिगत आय: एक वर्ष में सभी व्यक्तियों या घरेलू क्षेत्र को प्राप्त होने वाली वास्तविक आय का योग व्यक्तिगत आय कहलाता है। राष्ट्रीय आय और व्यक्तिगत आय में अंतर होता है क्योंकि घरेलू क्षेत्र द्वारा अर्जित आय का एक भाग उस वर्ष प्राप्त नहीं होता। इसके अंतर्गत सामाजिक सुरक्षा अंशदान, निगम आय कर, अवितरित निगम लाभ आते हैं। इसी प्रकार कुछ ऐसी भी आय घरेलू क्षेत्र को प्राप्त होती है, जिन्हें उस वर्ष अर्जित नहीं किया गया होता है। इसके अंतर्गत वृद्धावस्था पेंशन, बेरोजगारी भत्ता, राहत-भुगतान, सार्वजनिक ऋण पर ब्याज भुगतान इत्यादि हस्तांतरण भुगतान शामिल हैं।

व्यक्तिगत आय = राष्ट्रीय आय–सामाजिक सुरक्षा अंशदान–निगम आयकर– अवितरित निगम लाभ + हस्तांतरण भुगतान।

प्रयोज्य आय: व्यक्तिगत आय का एक अंश व्यक्ति को प्राप्त नहीं होता। ऐसा व्यक्ति द्वारा विभिन्न करों के भुगतान के दायित्व के कारण होता है। इन करों के अंतर्गत व्यक्तिगत आय कर, व्यक्तिगत सम्पत्ति कर इत्यादि आते हैं।

प्रयोज्य आय = व्यक्तिगत आय–व्यक्तिगत कर।

राष्ट्रीय आय के निर्धारक

प्रायः सरकार लोगों के भौतिकवादी जीवन स्तर को सुधारने पर जोर देती है, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करती है:

- **प्राकृतिक संसाधन:** इसके तहत् गुणवत्ता युक्त खनिज सम्पदा की उपलब्धता, ईंधन और शक्ति के संसाधन (जैसे–कोयला, जल) अनुकूल जलवायु तथा नौगम्य नदियां तथा मिट्टी की उर्वरता।
- **मानव संसाधन:** मानव की कार्यशक्ति की उत्पादन क्षमता इन कारकों पर निर्भर करती है–(i) स्वास्थ्य, ऊर्जा, अनुकूलनशीलता क्षमता, शिक्षा, प्रज्ञा, उम्र, अनुभव, प्रेरणा; (ii) कार्यदशा, और कार्य समय; (iii) औद्योगिक सम्बन्ध; (iv) पूंजी निर्माण की गुणवत्ता, तथा; (v) लाभकारी कार्यों के लिए जनसंख्या अनुपात।
- **उत्पादन कारकों का संगठन:** राष्ट्रीय आय के अधिकतम वृद्धि के परिणामस्वरूप–(i) बेरोजगार श्रमिकों का प्रयोग या इन श्रमिकों को निम्न उत्पादन क्षेत्र में उच्च उत्पादन क्षेत्र की तरफ स्थानांतरण (ii) उत्पादन कारकों की सम्बद्धता (iii) पूंजी उपस्कारों का बेहतर उपयोग।
- **जनसंख्या आकार या विदेशी व्यापार विस्तार:** छोटे देशों में घरेलू बाजार का आकार कम विकसित होता है, जो आर्थिक पैमाने पर पूरी तरह से हमें लाभ प्रदान नहीं कर पाता। इसलिए विदेशी व्यापार का विस्तार हमारी राष्ट्रीय आय में वृद्धि कर सकता है।
- **राजनीतिक निकाय:** देश में स्थायी और प्रभावी राजनीतिक पद्धतियों के द्वारा व्यापार तथा वाणिज्यिक विस्तार के बड़े पैमाने पर लाया जा सकता है।
- **तकनीकी और अवसंरचना:** संचार, वित्तीय संस्थान, शिक्षा, शोध और आविष्कार के साथ शोध संस्थापना के कार्य, राष्ट्रीय आय को बढ़ाने में प्रभावी योगदान दे सकते हैं।
- **खोज (Discoveries):** अधिक मात्रा में प्राकृतिक संसाधनों की खोज, जैसे–नई खानें, तेल कुंओं की खोज।
- **बाह्य कारक:** इसके अंतर्गत विदेशी ऋण या अनुदान आते हैं, जो उचित व्यापारिक अवधि पर प्राप्त किए जाते हैं।

राष्ट्रीय आय का आकलन

राष्ट्रीय आय के आकलन की तीन विधियां हैं:

(i) उत्पाद विधि या मूल्य-वृद्धि विधि
(ii) आय विधि
(iii) व्यय विधि

उत्पाद या मूल्य वृद्धि विधि

उत्पाद विधि में अर्थव्यवस्था में उत्पादित अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों का योग किया जाता है। किसी वस्तु या सेवा का उपयोग तीन प्रकार से हो सकता है। *प्रथमतः,* उसे मध्यवर्ती वस्तु या सेवा के रूप में प्रयुक्त किया जाये अर्थात् उसे अन्य वस्तुओं के उत्पादन में प्रयोग किया जाये, जैसे–गेहूं का प्रयोग डबल रोटी बनाने में किया जाये *दूसरा,* उसे अंतिम उपभोग वस्तु या सेवा के रूप में प्रयुक्त किया जाये, जैसे–पेन, कागज इत्यादि। *तीसरा,* उसे पूंजी-निर्माण वस्तु या सेवा के रूप में प्रयुक्त किया जाये, जैसे–टिकाऊ मशीन इत्यादि। उत्पाद विधि के अंतर्गत केवल अंतिम उपभोग और पूंजी निर्माण के लिए प्रयुक्त सेवा एवं वस्तुओं के बाजार मूल्यों को लिया जाता है। राष्ट्रीय आय आकलन के लिए समस्त उत्पादन क्षेत्र को तीन भागों में विभाजित किया गया है।

(i) प्राथमिक क्षेत्र: इस क्षेत्र में कृषि और संबद्ध क्रियाएं, मछली उद्योग, खनिज व उत्खनन आदि आते हैं।

(ii) द्वितीयक क्षेत्र: यह विनिर्माण क्षेत्र है जो एक प्रकार की वस्तु को दूसरे प्रकार में परिवर्तित करता है।

(iii) तृतीयक क्षेत्र: यह सेवा क्षेत्र है इसके अंतर्गत बैंकिंग, बीमा, परिवहन एवं संचार, व्यापार व वाणिज्य शामिल हैं।

उत्पाद विधि के अंतर्गत राष्ट्रीय आय का आकलन करने के लिए उपरोक्त क्षेत्रों के उत्पादन के मूल्य का अनुमान लगाना होता है। मध्यवर्ती उपभोग के मूल्य, स्थायी पूंजी उपभोग (मूल्य-ह्रास) के मूल्य और शुद्ध अप्रत्यक्ष करों को उत्पादन के मूल्य में से घटाने पर शुद्ध मूल्य वृद्धि का ज्ञान होता है। यही शुद्ध मूल्य वृद्धि साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद होता है।

आय विधि

आय विधि के अंतर्गत उत्पादन साधनों को किये भुगतान के माध्यम से राष्ट्रीय आय की गणना की जाती है। विभिन्न उत्पादन साधनों को भुगतान साधारणतया निम्न प्रकार से किया जाता है:

(i) कर्मचारियों को उनके कार्य के बदले दिया गया पारिश्रमिक
(ii) किराया
(iii) ब्याज
(iv) लाभ
(v) स्वरोजगार में संलिप्त व्यक्तियों की मिश्रित आय

आय विधि के अंतर्गत राष्ट्रीय आय का आकलन करते समय समस्त हस्तांतरण भुगतानों, अवैध आय, आकस्मिक लाभ, मृत्यु कर, उपहार कर, सम्पत्ति का आकस्मिक कर और पुरानी परिसंपत्तियों के क्रय-विक्रय को राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता है, जबकि स्व-उपभोग वस्तुओं के आरोपित मूल्य तथा स्वयं

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

मकानों में रह रहे व्यक्तियों पर आरोपित किराये को राष्ट्रीय आय में शामिल किया जाता है। निगम कर एवं कर्मचारियों के पारिश्रमिक को राष्ट्रीय आय में शामिल करते हुये इस बात का ध्यान रखा जाता है कि लाभ को निगम करों के भुगतान करने से पहले शामिल किया जाना चाहिए और निगम कर-को पुनः अलग से नहीं जोड़ना चाहिए। साथ ही कर्मचारियों के पारिश्रमिक में उनके द्वारा दिये जाने वाला आय कर भी शामिल होता है अतः पारिश्रमिक को राष्ट्रीय आय में जोड़ने के पश्चात् आय कर को पुनः नहीं जोड़ना चाहिए।

आय विधि से घरेलू साधन आय प्राप्त होती है। राष्ट्रीय आय ज्ञात करने के लिए इसमें विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय का योग करना होता है।

व्यय विधि

व्यय विधि के अंतर्गत सकल घरेलू उत्पाद पर अंतिम व्यय के आकलन द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना की जाती है। सकल घरेलू उत्पाद पर निम्न द्वारा व्यय किया जाता है:

(i) निजी उपभोक्ता द्वारा किया गया अंतिम उपभोग व्यय।
(ii) सरकार द्वारा किया गया अंतिम उपभोग व्यय।
(iii) सकल स्थायी पूंजी निर्माण।
(iv) स्टॉक परिवर्तन।
(v) वस्तु व सेवाओं का शुद्ध निर्यात।

व्यय विधि से सकल घरेलू उत्पाद (बाजार कीमत पर) प्राप्त होता है और इसमें विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय का योग करने पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (बाजार कीमत पर) प्राप्त होता है। इसमें शुद्ध अप्रत्यक्ष कर एवं मूल्य-ह्रास का योग करने पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद या साधन कीमत पर राष्ट्रीय आय प्राप्त होती है।

उपरोक्त तीनों विधियों से प्राप्त परिणाम समान होते हैं। तीनों विधियां समान भौतिक उत्पाद को तीन विभिन्न स्तरों उत्पादन (उत्पाद विधि), वितरण (आय विधि) और विन्यास (व्यय विधि), पर गणना करती है।

सूचकांक संख्या का उपयोग

सूचकांक संख्या मदों के एक समूह की कीमतों में परिवर्तन मापने की एक सांख्यिकीय विधि है। जैसाकि एक आधार वर्ष में कीमतों का प्रतिशत।

मान लीजिए एक देश की राष्ट्रीय आय में वर्ष 1 और वर्ष 2 के बीच मौद्रिक वृद्धि 30 प्रतिशत तक होती है लेकिन कीमतों में वृद्धि 10 प्रतिशत तक होती है। 100 की संख्या वाला एक सूचकांक जो वर्ष 1 में औसत कीमतों को दर्शाता है, के निम्न आंकड़े होंगे–

	वर्ष 1	वर्ष 2
राष्ट्रीय आय (रुपयों में)	50,000	65,000
कीमतों का सूचकांक	100	110

इसका आशय हुआ कि विशुद्ध परिणाम है

$$65000 \times \frac{100}{110} = 59,090.9$$

इस प्रकार, ₹ 59,090.9 राष्ट्रीय आय में वर्ष 1 से वर्ष 2 तक 18.1 प्रतिशत की वास्तविक वृद्धि प्रकट करता है।

भारत में राष्ट्रीय आय के अनुमान

भारत में राष्ट्रीय आय का अनुमान सर्वप्रथम दादा भाई नौरोजी ने 1867-68 में लगाया था। वी.के.आर.वी. राव ने 1931-32 में सर्वप्रथम वैज्ञानिक आधार पर राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया था। भारतीय संघ के लिए सर्वप्रथम राष्ट्रीय आय के अनुमान भारत के वाणिज्य-मंत्रालय ने वर्ष 1948-49 में प्रकाशित किये थे। वर्तमान में राष्ट्रीय आय के अनुमानों का आकलन करने का उत्तरदायित्व, केंद्रीय सांख्यिकी संगठन, अब इसे केंद्रीय सांख्यिकीय कार्यालय कहा जाता है, पर है।

भारत में राष्ट्रीय आय के अनुमान, मूल्य वृद्धि (उत्पाद विधि) और आय विधि के आधार पर तैयार किये जाते हैं। प्राथमिक क्षेत्र एवं विनिर्माण क्षेत्र के लिए मूल्य विधि विशेषकर प्रयोग की जाती है। बैंकिंग, बीमा, परिवहन, संचार जैसे तृतीयक क्षेत्रों के लिए आय विधि का प्रयोग किया जाता है। ज्ञातव्य है कि, केंद्रीय सांख्यिकीय कार्यालय ने राष्ट्रीय आय संबंधी अपने आकलन पहली बार 1956 में 1948-49 आधार वर्ष के साथ जारी किए थे, लेकिन अब इसमें निरंतर परिवर्तन किया जाता रहा है। अब आधार वर्ष 2004-05 के स्थान पर 2011-12 पर राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया जाता है।

आधार वर्ष को 2004-05 से संशोधित करके 2011-12 किया गया: चालू आधार वर्ष का संशोधन जनवरी 2010 में किए गए संशोधन के बाद का है। आधार वर्ष के अभी-अभी पूरे हुए संशोधन में शामिल किए गए प्रमुख फेरबदल निम्नलिखित हैं:

(i) वर्तमान में विकास को स्थिर बाजार मूल्यों पर सकल घरेलू उत्पाद (सघउ) द्वारा मापा जाएगा, जिसे इसके बाद "सघउ" के रूप में संदर्भित किया जाएगा, जैसा कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रचलन है। इससे पूर्व, विकास को स्थिर मूल्यों पर कारक लागत पर सघउ में वृद्धि दर की दृष्टि से मापा जाता था।

(ii) जोड़े गए सकल मूल्य का क्षेत्रवार अनुमान अब कारक लागत के स्थान पर मूल कीमतों पर किया जाएगा। कारक लागत पर जीवीए, मूल कीमतों पर जीवीए और सघउ (बाजार कीमतों पर) के बीच संबंध नीचे दिया गया है।

मूल कीमतों पर जीवीए = सीई + ओएस/एमआई + सीएफसी + उत्पादन कर (– उत्पादन सब्सिडी)

कारक लागत पर जीवीए = मूल कीमतों पर जीवीए – उत्पादन कर (–उत्पादन सब्सिडी)

सघउ = Σ मूल कीमतों पर जीवीए + उत्पाद कर – उत्पाद सब्सिडी

(जहां सीई: कर्मचारियों की क्षतिपूर्ति; ओएस: परिचालन अधिशेष; एमआई: मिश्रित आय; और सीएफसी: अचल पूंजी का उपभोग है। उत्पादन करों या उत्पादन सब्सिडी का भुगतान या इनकी प्राप्ति उत्पादन से संबंधित होती है और ये वास्तविक उत्पादन के परिमाण पर आश्रित नहीं होते। उत्पादन करों के कुछ उदाहरण—भू-राजस्व, स्टाम्प और पंजीयन शुल्क तथा व्यावसायिक कर हैं। कुछ उत्पादन रेलवे को सब्सिडी, किसानों को वस्तुगत सब्सिडी, गांवों और लघु उद्योगों को सब्सिडी, निगमों या सहकारी समितियों को प्रशासनिक सब्सिडी आदि। उत्पादन करों या सब्सिडी का भुगतान या इनकी प्राप्ति उत्पाद के प्रति यूनिट पर होती है। उत्पाद करों के कुछ उदाहरण उत्पाद कर, बिक्री कर, सेवा कर, और आयात-निर्यात शुल्क हैं। उत्पाद सब्सिडी में खाद्यान्न, पेट्रोलियम और उर्वरक सब्सिडी, किसानों के परिवारों आदि को बैंकों के जरिए प्रदत्त ब्याज सब्सिडी, परिवारों का बीमा कराने के लिए कम दरों पर प्रदत्त सब्सिडी शामिल हैं।)

(iii) कॉर्पोरेट कार्य मंत्रालय की ई-अभिशासन पहल, एमसीए 21 के अंतर्गत उसमें यथा दर्ज कंपनियों के वार्षिक लेखाओं के समावेशन से विनिर्माण और सेवा दोनों ही कॉर्पोरेट क्षेत्र की व्यापक कवरेज। विनिर्माण कंपनियों के एमसीए 21 डाटाबेस के उपभोग से इन कंपनियों द्वारा विनिर्माण से भिन्न किए गए कार्यों का हिसाब-किताब रखने में मदद मिली है।

(iv) भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी), स्टाक ब्रोकर, स्टा एक्सचेंजों, आस्ति प्रबंधन कंपनियों, म्युचुअल फंडों और पेंशन फंडों, और पेंशन नि एवं विनियामक विकास प्राधिकरण (पीएफआरडीए) और बीमा विनियामक विकास प्राधिकरण (इरडा) सहित विनियामक निकायों के लेखाओं से सूच समावेशन से वित्तीय क्षेत्र को व्यापक सुरक्षा कवरेज।

(v) स्थानीय निकायों और स्वायत्त संस्थाओं के कार्यकलापों, जिन संस्थाओं को प्रदत्त लगभग 60 प्रतिशत अनुदान/अंतरण राशियां शामिल संवर्धित कवरेज।

उपर्युक्त फेरबदलों के कारण, सकल और क्षेत्रवार दोनों स्तरों पर अनुमानों में परिवर्तन हुए हैं। सकल जीवीए में क्षेत्रवार शेयरों में खासक और सेवाओं के विशेष मामले में महत्वपूर्ण संशोधन हुआ है। वर्ष 20 2013-14 में अनुमान के लिए बिक्री कर और सेवा कर संबंधी आंकड़े करने के कारण व्यष्टि क्षेत्रों में जीवीए की वृद्धि दरों और समग्र जीवी के अंशदान में भी परिवर्तन देखे गए हैं। पूर्ववर्ती शृंखला से नयी शृंख और वृद्धि दरों की तुलना करते समय सावधानी बरतने की जरू

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

भारत में राष्ट्रीय आय अनुमानों की सीमाएं

भारत में राष्ट्रीय आय अनुमानों की गणना में कई व्यावहारिक और अवधारणामूलक समस्याएं निम्नलिखित हैं:

- भारत में विश्वसनीय सांख्यिकी आंकड़े उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ) द्वारा एकत्र किये आंकड़े मंहगे और अपर्याप्त होते हैं। इसके कारण राष्ट्रीय आय के अनुमान अविश्वसनीय हो जाते हैं।
- भारत की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा अशिक्षित है और यही कारण है कि वे प्रश्नकर्ता के प्रश्नों का सही उत्तर नहीं दे पाते।
- भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी अमुद्रीकृत क्षेत्र हैं जहां वस्तु विनियम प्रचलन में है। राष्ट्रीय आय के अनुमानों में यह मान लिया जाता है कि वस्तुओं और सेवाओं का क्रय-विक्रय मुद्रा द्वारा ही होता है। अतः राष्ट्रीय आय अनुमानों में इस प्रकार के वस्तु-विनिमय को स्थान नहीं मिलता है।
- अर्थव्यवस्था में समांतर अर्थव्यवस्था के कारण भी राष्ट्रीय आय के अनुमानों की परिशुद्धता प्रभावित होती है। समांतर अर्थव्यवस्था या ब्लैकमनी इकोनॉमी के अंतर्गत सृजित आय की घोषणा नहीं की जाती और इसी कारण वह राष्ट्रीय आय का हिस्सा नहीं बन पाती।
- कुछ व्यक्ति एक से अधिक रोजगार अपनाते हैं, जिससे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत श्रम-शक्ति के संबंध में वर्गीकरण प्रभावित होता है।

भारत में राष्ट्रीय आय की संवृद्धि का आलोचनात्मक मूल्यांकन

निश्चित बढ़ोत्तरी, प्रगतिशील संरचनात्मक परिवर्तन एवं अर्थव्यवस्था में विश्वास राष्ट्रीय आय की वृद्धि और प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय आय के कुछ सकारात्मक लक्षण रहे हैं, जबकि निम्न संवृद्धि आकार, अस्थायी एवं एकतरफा संवृद्धि, विश्व की अन्य अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में सापेक्षिक रूप से कम वृद्धि, कमोडिटी क्षेत्र की निम्न संवृद्धि और उपभोग में अपेक्षाकृत कम सुधार इसके नकारात्मक लक्षण रहे हैं। इसके अतिरिक्त, संवृद्धि बड़ी संख्या में लोगों को, जो निर्धन बने रहे, लाभान्वित करती प्रतीत नहीं होती।

प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय एवं उपभोग: प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि लोक कल्याण में सुधार द्वारा हुई प्रगति का एक व्यापक परिमाणात्मक संकेतक है। ऐसा ही दूसरा संकेतक प्रति व्यक्ति उपभोग है।

प्रति व्यक्ति आय की संवृद्धि निम्न, अस्थायी एवं दोषपूर्ण है। हालांकि, नियोजन की बाद की आधी अवधि में, प्रति व्यक्ति आय की दर में वृद्धि हुई।

केंद्रीय सांख्यिकीय कार्यालय (सीएसओ) ने 2004-05 के मूल्यों पर नियोजन अवधि के आंकड़े प्रदान किए। इस क्रम में, 62 वर्षों के दौरान (1950-2012), भारत की प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पाद 2.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ा। यह वृद्धि दर निराशाजनक रही। हालांकि, यदि हम 1991-92 से 2011-12 के 21 वर्षों को देखें तो प्रति व्यक्ति आय वृद्धि दर 4.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही।

आय में औसत वृद्धि की तुलना में उपभोग में औसत वृद्धि कम रही, जिसका प्राथमिक कारण बचत दर में वृद्धि रहा, यद्यपि बढ़ते कर संग्रहण दरों ने भी इस अंतर को बढ़ाया।

संरचनात्मक परिवर्तन

देश के राष्ट्रीय उत्पाद में विभिन्न क्षेत्रों का योगदान आर्थिक संरचना को दर्शाता है। भारत में प्राथमिक क्षेत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् प्राथमिक क्षेत्र का विशुद्ध घरेलू उत्पाद में हिस्सा कम हुआ। 1960-61 में यह 56.6 प्रतिशत था जो कम होते-होते 2012 तक 14 प्रतिशत रह गया। विगत कुछ वर्षों में देश की अर्थव्यवस्था में कुछ संरचनात्मक परिवर्तन अवश्य हुए हैं। परिवहन एवं व्यापार, बैंकिंग एवं बीमा तथा अन्य सेवा क्षेत्रों में संवृद्धि कृषि की अपेक्षा अधिक तेज गति से हुई है और यह बात राष्ट्रीय आय के उद्योगवार सृजन के आंकड़ों में दिखाई देती है। प्राथमिक क्षेत्रों में कृषि के अतिरिक्त वानिकी, लकड़ी काटना, मछली पालन और खनन आते हैं।

द्वितीयक क्षेत्र, में विनिर्माण, निर्माण, बिजली, गैस और जल की आपूर्ति शामिल की जाती है। इसमें फैक्ट्री एवं लघु एवं कुटीर उद्योग क्षेत्र आते हैं। 1970 से 1980 के दशकों में लघु व कुटीर उद्योगों पर अधिक ध्यान दिया गया क्योंकि उनमें रोजगार सृजन की अधिक क्षमता थी। परंतु उदारीकरण की अवधि में इन उद्योगों के विकास को झटका लगा और निवल उत्पाद में इनका हिस्सा कम हुआ।

तृतीयक क्षेत्र में व्यापार, परिवहन एवं संचार की हिस्सेदारी में 1980 के दशक के बाद धीमी, किंतु तीव्र हुई। इस क्षेत्र में, वित्तीयन एवं बीमा गतिविधियों ने भी तीव्र वृद्धि का प्रदर्शन किया। इसने देश में आर्थिक ढांचे के विस्तार को प्रतिबिम्बित किया।

लोक प्रशासन एवं रक्षा की हिस्सेदारी में भी धीमी गति से वृद्धि हुई। इसे एक पक्ष द्वारा सरकार के विभिन्न जरूरी सेवाओं के प्रदायन के प्रयास के तौर पर देखा गया, जबकि अन्यों द्वारा इसे देश की धीमी गति से बढ़ती अर्थव्यवस्था पर भारी प्रशासन को थोपने के रूप में देखा गया।

5. पूंजी निर्माण

अर्थ

आर्थिक विकास के लिए पूंजी संचयन एक आवश्यक शर्त है। पूंजी संचयन के बिना आर्थिक विकास की कल्पना न तो समाजवादी अर्थव्यवस्था में की जा सकती है और न ही पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में। आर्थिक विकास सिंचाई सुविधाओं के विस्तार, कृषि यंत्रों के निर्माण एवं विकास, बांध निर्माण, पुल निर्माण, सड़क एवं रेल परिवहन, जलयान एवं वायुयान सुविधाओं के विस्तार, संचार सुविधाओं के विस्तृत संजाल, मशीनरी एवं फैक्टरियों की स्थापना और उत्तम मानव पूंजी के विकास के बिना संभव नहीं है। ये सुविधाएं उच्च उत्पादकता को संरक्षण देती हैं और इसलिए इन्हें भविष्य में अधिक उत्पादन का माध्यम माना जाता है। उपरोक्त सभी सुविधाओं के विस्तार/निर्माण के लिए पूंजी की आवश्यकता होती है। विकसित और विकासशील देशों के मध्य विकास के स्तर में अंतर के सबसे बड़े कारणों में से एक विकसित राष्ट्रों में विकासशील राष्ट्रों के सापेक्ष उच्च पूंजी निर्माण दर का उपस्थित होना है।

पूंजी निर्माण का अर्थ, राष्ट्र के वास्तविक पूंजी स्टॉक में बढ़ोतरी से है। पूंजी निर्माण के अंतर्गत पूंजीगत वस्तुओं (मशीनी उपकरण, फैक्ट्री, परिवहन साधन, बिजली, खनन, इत्यादि) का अधिक निर्माण किया जाता है। ये पूंजीगत वस्तुएं अन्य-प्रकार की वस्तुओं के अधिक उत्पादन को संभव बनाती हैं। पूंजी के स्टॉक में वृद्धि के लिए बचत एवं निवेश आवश्यक शर्त है। विख्यात अर्थशास्त्री नुर्क्स ने पूंजी निर्माण के विषय में कहा था, "पूंजी निर्माण का अर्थ है कि समाज अपनी संपूर्ण वर्तमान उत्पादक क्षमता का प्रयोग तात्कालिक उपभोग की आवश्यकताओं और इच्छाओं के लिए नहीं करता बल्कि इसके एक अंश को पूंजीगत वस्तुओं के निर्माण में लगाता है, जैसे—उपकरण/औजार, मशीनरी, परिवहन इत्यादि सुविधाएं ये सभी वास्तविक पूंजी के प्रकार हैं जो उत्पादन प्रयासों की उत्पादकता को विशेष बढ़ावा देते हैं।" इससे स्पष्ट है कि पूंजी निर्माण के लिए राष्ट्रीय आय के एक अंश को पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन में लगाना होगा।

पूंजी निर्माण के तीन चरण होते हैं—*पहला*, बचत का सृजन; *दूसरा*, बचतों का संघटन, एवं; *तीसरा*, वास्तविक निवेश। बचत व्यक्ति या घरेलू क्षेत्र करता है। वे अपनी आय का एक अंश उपभोक्ता वस्तुओं पर व्यय नहीं करके उसे बचा लेते हैं। इसके परिणामस्वरूप उपभोक्ता उद्योग से मशीनरी और मानव श्रम का नियोजन पूंजीगत वस्तुओं के निर्माण में संभव हो पाता है। व्यक्तिगत बचतें, बचत क्षमता और बचत की इच्छा पर निर्भर करती हैं। अर्थव्यवस्था की बचत क्षमता आय के औसत स्तर और राष्ट्रीय-आय-के-वितरण पर निर्भर करती है। अधिक आय और अधिक आय असमानता अधिक बचतों को सुनिश्चित करती है। बचत की इच्छा व्यक्तिगत होती है। बचत स्वैच्छिक और अनैच्छिक भी होती है। जब व्यक्ति स्वयं की इच्छा एवं कारणों

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

से बचत करता है तब यह स्वैच्छिक होती है और जब राजकीय शक्ति द्वारा व्यक्ति को बचत करने पर मजबूर किया जाता है तब यह अनैच्छिक होती है। घरेलू क्षेत्र के साथ-साथ व्यापारी और सरकारें भी बचत करतीं हैं। पूंजी निर्माण के दूसरे चरण में, बचतों को घरेलू क्षेत्र से एकत्र कर व्यापारिक या उद्यमियों को निवेश के लिए उपलब्ध कराना होता है। पूंजी निर्माण के अंतिम चरण में वास्तविक निवेश आता है।

संवृद्धि के लिए पूंजी की आवश्यकता

भौतिक पूंजी निर्माण के साथ-साथ आजकल मानव पूंजी निर्माण को भी विकास की गति तीव्र करने के लिए अनिवार्य शर्त माना जा रहा है। मानव पूंजी निर्माण प्रक्रिया के अंतर्गत व्यक्ति की योग्यता और निपुणता का विकास किया जाता है। आर्थिक विकास प्रक्रिया के काल में राष्ट्र को नवीन तकनीक और संयंत्रों, को उत्पादक प्रक्रिया में अवशोषित करना पड़ता है। मानव पूंजी का निर्माण इन तकनीक एवं संयंत्रों के महत्तम प्रयोग के लिए आवश्यक है। एक योग्य एवं निपुण व्यक्ति ही ऐसे संयंत्रों की उत्पादक क्षमता का उचित प्रयोग कर सकता है। भौतिक पूंजी निर्माण और मानव पूंजी निर्माण प्रक्रिया के मध्य सही सह-संबंध विकास प्रक्रिया की दर को कहीं अधिक बढ़ा देता है।

भारत में घरेलू बचत

केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय (CSO) के अनुसार, "चालू व्यय पर चालू आय की अधिकता और उत्पादों की बचत और उद्यमों के नये प्रारूपों परिवारों, और सरकारी प्रशासन और अन्य अंतिम उपभोक्ताओं तक पहुंचाने का उद्देश्य भारत में सकल घरेलू बचत के अनुमान लगाना है। बचत के स्रोतों को प्रायः तीन वर्गों में देखा जाता है—(i) गृह क्षेत्र, (ii) निजी निगम क्षेत्र, और; (iii) सार्वजनिक क्षेत्र।

घरेलू क्षेत्रः इसके अंतर्गत भौतिक सम्पत्ति व वित्तीय बचतें शामिल होती हैं। वित्तीय बचतों में मुद्रा, शुद्ध जमाएं, अंशों (शेयर) व डिबेंचरों में निवेश, केंद्र अथवा राज्य की प्रतिभूतियों में निवेश, जीवन बीमा व भविष्यनिधि में विशुद्ध वृद्धि इत्यादि आते हैं।

निजी निगम क्षेत्रः निजी निगम क्षेत्र के अंतर्गत उन बचतों को शामिल किया जाता है, जो गैर-सरकारी, गैर-वित्तीय कम्पनियों, बैंकों तथा सहकारिता संस्थाओं इत्यादि द्वारा की जाती है।

सार्वजनिक क्षेत्रः सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत सरकारी प्रशासनिक विभागीय उद्यम तथा कम्पनी व सवैधानिक निगमों की बचतों को शामिल किया जाता है।

अल्प बचत दर के कारण

यद्यपि स्वतंत्रता के पश्चात् बचत दरों में वृद्धि हुई है किंतु यह अभी भी अपेक्षाकृत कम है। जब तक भारत दक्षिण-पूर्व एशिया के अन्य विकासशील राष्ट्रों में उच्च बचत दर वाले राष्ट्रों के समकक्ष बचत दर नहीं प्राप्त करता तब तक तीव्र विकास का लक्ष्य प्राप्त करना आसान नहीं होगा। भारत में बचत दर के कम होने के निम्नलिखित कारण हैं:

प्रति व्यक्ति निम्न आयः बचत की क्षमता आय के स्तर पर निर्भर करती है तथा निम्न प्रति व्यक्ति आय वाले देश भारत में चाहते हुए भी लोग अधिक बचत नहीं कर पाते हैं। यहां आय का असमान वितरण है जहां कुछ उच्च व्यापारी वर्गादि धनाढ्य व अकूत सम्पत्तिधारी हैं वहीं निम्न व मध्य वर्ग के पास अल्प सम्पत्ति है।

कृषि पर आयकर से निर्मुक्तिः भारत के कृषिक आय को आयकर से मुक्त रखा गया है। अतः कृषि क्षेत्र में रत लोगों की बचत क्षमता का अनुमान लगाना प्रायः कठिन होता है। ऐश्वर्यशाली जीवनपद्धति अपना कर बड़े व समृद्ध किसान पहले के जमींदारों की भांति जीवन जीते हैं तथा अनावश्यक व्ययादि करते हैं, जिससे एक बृहत बचत क्षेत्र का अनुमान लगाना मुश्किल हो जाता है।

प्रदर्शन की प्रवृत्तिः भारत के जनमानस में प्रदर्शन की प्रवृति है। अपने से बड़े को देखकर उसकी तरह रहने, खाने व पहनने की प्रवृत्ति से भी व्यक्ति की बचत प्रभावित होती है। व्यापक रूप में अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण तथा संचार के उन्नत साधनों ने हमारे संबंधों में वृद्धि की है तथा इसी प्रक्रिया में पाश्चात्य राष्ट्रों से हमारे संबंधों में अतीव वृद्धि हुई है। इससे हम उनका अंधाधुंध अनुकरण करते हुए नवीनतम उत्पादों का उपभोग करने लगे हैं जिसके लिए धन की आवश्यकता होती है। धन की इस तरह बर्बादी से निश्चित रूप से बचत प्रभावित होती है। अन्य कारण हैं:

- दोषपूर्ण आर्थिक नियोजन
- बचत दर में अपर्याप्त वृद्धि
- संसाधनों का अपर्याप्त विकेन्द्रीकरण

बचत दर में वृद्धि के उपाय

देश में बचत दर में वृद्धि की असीम संभावनाएं हैं। यदि निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाए तो घरेलू, निजी निगम तथा सार्वजनिक क्षेत्र में बचतों में वृद्धि हो सकती है जिससे अंततः सकल घरेलू बचत में वृद्धि होगी।

- **घरेलू क्षेत्रः** बचत की दृष्टि से यह सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है। व्यापक निर्धनता की वजह से गरीब लोग बचत कर पाने में अक्षम होते हैं। अतः उच्च व मध्य वर्ग को ही ये उपाय सुझाये जा सकते हैं—(i) अनावश्यक वस्तुओं के उत्पादन पर प्रतिबंध; यद्यपि उदारीकरण के वर्तमान दौर में यह आकर्षक उपाय नहीं है; (ii) आयकर की निर्मुक्त सीमा राशि में वृद्धि एवं; (iii) लोगों में बैंकिंग प्रवृति को प्रोत्साहित करना।
- **निजी निगम क्षेत्रः** इस क्षेत्र में बचत में वृद्धि के उपाय हैं—(i) कम्पनी के निदेशकों व उच्चाधिकारियों के व्ययों पर नियंत्रण; (ii) वेतनों का विवेकपूर्ण सीमा निर्धारण, एवं; (iii) कम्पनियों द्वारा लाभांश घोषित करने तथा उनके भुगतान इत्यादि पर राज्य का नियंत्रण।
- **सार्वजनिक क्षेत्रः** इस क्षेत्र की बचतों में सुधार हेतु अग्रलिखित उपाय किये जा सकते हैं—(i) कृषि आय को आयकर के दायरे में लाना; (ii) भोग-विलास की वस्तुओं पर भारी कर लगाना; (iii) कर संग्रहण प्रणाली की विसंगतियों को समाप्त करना; (iv) सरकार के अनुत्पादक व्ययों पर नियंत्रण लगाना; (v) सार्वजनिक क्षेत्र की क्षमताओं में वृद्धि करना; (vi) सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों की क्षमताओं का पूर्ण उपयोग करना; एवं (vii) विवेकसंगत मूल्य नीति का विकास करना।

पूंजी निर्माण या घरेलू निवेश

घरेलू पूंजी निर्माण की दर से तात्पर्य निवेश की दर से है। किसी भी देश में इसका आकार घरेलू बचत एवं दूसरे देशों से पूंजी आगमन पर निर्भर करता है। भारत में अब घरेलू पूंजी निर्माण का अनुमान सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात के रूप में किया जाता है। घरेलू पूंजी निर्माण के आंकड़ों का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि योजनाओं के शुरू होने से अब तक घरेलू पूंजी निर्माण में काफी वृद्धि हुई है। परंतु यह वृद्धि बहुत नियमित नहीं है। फिर भी इस देश में पूंजी निर्माण के बारे में यह महत्वपूर्ण बात है कि आज प्रथम योजना की तुलना में निवेश की दर काफी अधिक है। आयोजना के प्रथम पंद्रह वर्षों के दौरान निवेश दर धीरे-धीरे बढ़ती रही और 1966-67 तक आते-आते सकल घरेलू उत्पाद की 16.6 प्रतिशत हो गई। भारत जैसी अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से, जो लम्बे अर्से तक गतिहीन रही थी, यह उपलब्धि बहुत महत्वपूर्ण थी। 2001-02 में निवेश दर 22.8 प्रतिशत थी जो 2005-06 में बढ़कर 35.5 प्रतिशत तथा 2006-07 में और बढ़कर 35.9 प्रतिशत हो गई। इस तेज वृद्धि का मुख्य कारण यह था कि निजी निगम क्षेत्र में पूंजी निर्माण की दर में दसवीं योजना के दौरान तीव्र वृद्धि हुई।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य औसत रूप से 37 प्रतिशत तक निवेश दर में वृद्धि करना है। इसे प्राप्त करने के लिए, निजी निगम निवेश, विशेष रूप से आधारभूत ढांचे, में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। यह विनिर्माण के निवेश में वृद्धि कर सकता है और इस पर निवेश के महौल को पुनर्जीवित कर सकता है।

कुल निवेश में निजी क्षेत्र के निवेश में तीव्र वृद्धि वर्ष 1990 के दशक में शु[ुरू] किए आर्थिक सुधारों के प्रभाव के एक बड़े हिस्से को प्रतिबिम्बित करता है, जिस[ने] निजी निवेश पर प्रतिबंधों को क्षीण किया और अधिक सकारात्मक निवेश वाताव[रण] का सृजन किया।

निवेश के असंतुष्ट स्तर पर रहने के कारण

आर्थिक नियोजन की अवधि में निवेश की दर में पर्याप्त सुधार हुआ है लेकिन में इस संपूर्ण काल में निवेश का जो स्तर रहा है उसे हम संतोषजनक नहीं मान[ते।] इसके निम्नलिखित कारण हैं—

- पूंजी-उत्पाद अनुपात को 4.4 प्रतिशत लेने पर इस लक्ष्य को प्रा[प्त करने] के लिए कम से कम निवेश दर 34 प्रतिशत होनी चाहिए। परंतु 2005

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

2006-07 के अलावा किसी भी अन्य वर्ष में निवेश दर इस दर के आस-पास भी नहीं पहुंच सकी। इस प्रकार निवेश की दर विभिन्न योजनाओं में निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप नहीं रही।

- योजनाओं में निर्धारित निवेश का लक्ष्य प्राप्त न हो पाना भी इसका (निम्न निवेश दर का) मुख्य कारण रहा है।
- भारत में निवेश की दर न केवल विकसित देशों की तुलना में कम है अपितु कई अल्पविकसित देशों की तुलना में भी कम है अपितु कई अल्पविकसित देशों की तुलना में भी कम है। उदाहरण के लिए चीन, दक्षिण कोरिया, मलेशिया, थाइलैंड, हांगकांग और सिंगापुर जैसे कई देशों ने निवेश की दर को 30 प्रतिशत या उससे भी ऊपर पहुंचाने में सफलता प्राप्त की है। हालांकि भारत ने दसवीं योजनान्तर्गत 31.4 प्रतिशत औसत रूप से सकल पूंजी निर्माण (निवेश) दर प्राप्त कर ली है।

विकासशील राष्ट्रों में पूंजी संचयन

कराधान

निम्न प्रतिव्यक्ति आय की वजह से स्वैच्छिक बचतें उच्च नहीं हो सकतीं। अतः सरकार कर-संरचना का निर्माण करती है जिससे उपभोग में कमी आती है। उपभोग में कमी करने से बचत स्वतः बढ़ जायेगी। इस संदर्भ में आयकर का उदाहरण लिया जा सकता है। क्योंकि एक सीमा तक आयकर पर छूट होती है अतः लोग कर से बचने के लिए बचत का सहारा लेते हैं। सरकार प्रायः पूंजी-संचयन की दर को बढ़ाने हेतु कर राजस्व में वृद्धि करती है। इसके अलावा सरकार अधिक से अधिक वस्तुओं पर अप्रत्यक्ष कर लगाती है। अप्रत्यक्ष कर भी उपभोग में कमी करते हैं तथा बचत में वृद्धि करते हैं।

सार्वजनिक ऋण

विकासशील राष्ट्रों में सरकार कई आकर्षक योजनाओं के तहत् कर्ज लेती है। लोग प्रायः इस प्रकार के ऋण के विरोधी नहीं होते हैं। इसकी महत्वपूर्ण विशेषता है कि सरकार द्वारा इस धन से प्राप्त संसाधनों को अनुत्पादक गतिविधियों में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। सार्वजनिक उद्यमों द्वारा उत्पादित अधिशेष सार्वजनिक बचत है तथा इसे निवेश उद्देश्यों हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है।

विदेशी सहायता

जब सरकार को लगता है कि घरेलू स्रोतों से प्राप्त पूंजी पर्याप्त नहीं है तो वह विदेशी सहायता लेती है। इस प्रकार की सहायता सरकार विदेशी निजी कम्पनियों आदि से लेने की बजाय सीधे देश की सरकार से लेती है। सरकार को विदेशी सहायता प्राप्त करते समय दो सावधानियां रखनी चाहिए—(i) कर्ज का स्तर कम हो ताकि देश कर्ज के बोझ से दब न जाये, एवं; (ii) यह विदेशी सहायता बिना शर्त की होनी चाहिए।

6. कृषि

भूमिका एवं महत्व

भारत में कृषि एक लम्बे समय तक जीविका या रोजगार का साधन न रह कर जीवन पद्धति के तौर पर रही है। कृषि, व्यक्तियों की सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के अभिन्न अंग के रूप में सदियों से चली आ रही परंपरा के रूप में भारत में अंग्रेजों के आगमन तक विद्यमान रही। अंग्रेजों के आगमन व उनके शासनकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था को औपनिवेशिक हितों के अधीन बनाने की प्रक्रिया के प्रयासों के अंतर्गत अंग्रेजों ने कृषि के वाणिज्यीकरण पर बल दिया, जिसके कारण कृषि के जीवन पद्धति स्वरूप में क्षरण की प्रक्रिया आरंभ हुई। हालांकि ग्राम्य-जीवन व राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में उसका महत्व कायम रहा।

किसी भी अर्थव्यवस्था में उद्योग, शिल्प व अन्य कलाओं एवं नगरों के विकास में कृषि की बड़ी भूमिका होती है। कृषि से प्राप्त अधिशेष से ही नगरों के विकास में सहायता मिलती है। कृषि अधिशेष से ही नगरों में जनसंख्या का निवास संभव हो पाता है जिससे अंततः वहां उद्योगों, शिल्प व अन्य कलाओं का विकास संभव होता है। उद्योगों की स्थापना के लिए आरंभिक पूंजी भी कृषि अधिशेष ही उपलब्ध कराता है। दूसरी ओर कृषि, उद्योगों के उत्पादों के लिए बाजार उपलब्ध करा कर उनके विकास को संभव बनाती है।

विकासशील राष्ट्रों के संदर्भ में कृषि विदेशी मुद्रा प्राप्ति के महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में सामने आती है। विकासशील राष्ट्रों के आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण एक आवश्यक शर्त है जिसके लिए आवश्यक पूंजी, वस्तु व प्रौद्योगिकी का आयात करना होता है। इस आयात को कृषि से अर्जित विदेशी मुद्रा के माध्यम से किया जा सकता है। इस प्रकार आर्थिक विकास में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है।

दीर्घकाल तक जीवन पद्धति के रूप में स्थापित रहने के पश्चात कृषि रोजगार या जीविका के साधन के रूप में परिवर्तित हो गई है। विकासशील राष्ट्रों की जनसंख्या का बड़ा हिस्सा कृषि से रोजगार प्राप्त करता है।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की जीवन रेखा है। सकल घरेलू उत्पाद में इसका योगदान लगभग 19 प्रतिशत है और लगभग 52 प्रतिशत जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए इस पर निर्भर है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान काफी अधिक है, किंतु यह धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। भारत में कृषि क्षेत्र के जीडीपी का 0.3 प्रतिशत भाग कृषि शोध पर व्यय किया जाता है, जबकि अमेरिका में यह 4 प्रतिशत है।

देश की कुल श्रम शक्ति का लगभग दो-तिहाई भाग कृषि एवं इससे सम्बंधित उद्योग-धन्धों से अपनी आजीविका कमाता है। इसके अतिरिक्त भारत के प्रमुख उद्योगों को कच्चा माल कृषि से ही प्राप्त होता है। बुनाई, तेल, हथकरघा, चावल कूटना आदि बहुत-से लघु और कुटीर उद्योगों को भी कृषि से ही कच्चा माल प्राप्त होता है।

भारतीय कृषि की प्रकृति

हालांकि भारत की स्वतंत्रता को 60 वर्ष से अधिक हो चुके हैं, और कृषि उत्पादन इस दौरान कई गुना बढ़ा है, लेकिन भारतीय कृषि की कुछ विशेषताओं ने संतुलित संवृद्धि एवं विकास के मार्ग में बाधा उत्पन्न की है। कृषि क्षेत्र में अभी भी उत्पादन के सामंती संबंध परिलक्षित होते हैं क्योंकि मुख्य रूप से अभी भी भूमि सुधारों को उचित तरीके से क्रियान्वित नहीं कराया जा सका है। ग्रामीण बैंकिंग और क्रेडिट सोसाइटी के लागू होने बावजूद भी लघु एवं सीमांत कृषक अभी भी महाजन के पास ऋण के लिए जाते हैं और ऋणग्रस्तता के दूषित चक्र में फंस जाते हैं। भूमि पर अत्यधिक जनसंख्या दबाव के परिणामस्वरूप कृषि श्रम की मजदूरी का स्तर निम्न हो जाता है। कृषि श्रमिक अवसरों की कमी, में अज्ञानता या अकुशलता के कारण अपने पक्ष में सकारात्मक करने में अक्षम होता है। श्रम की उपलब्धता और इसके सस्ते होने के कारण तकनीकी या यंत्रीकृत गहन कृषि की अपेक्षा श्रम गहन कृषि को प्रोत्साहन मिलता है। निम्न मजदूरी एवं निम्न प्रति व्यक्ति आय का संबंध भी निम्न उत्पादकता से होता है।

हमारे कृषक आज भी निरंतर कृषि की परम्परागत तकनीक का इस्तेमाल करते हैं और अधिकतर निर्वाह कृषि ही करते हैं। वित्तीय बाधाएं लघु एवं सीमांत कृषक को उत्पादकता एवं उत्पादन में वृद्धि करने हेतु खेती की आधुनिक पद्धति को अपनाने से रोकती है। भारतीय कृषि अभी भी व्यापक रूप से सिंचाई हेतु मानसून पर निर्भर करती है। लगभग 60 से 70 प्रतिशत विशुद्ध बुवाई क्षेत्र निरंतर सिंचाई की अपेक्षा वर्षा के जल पर निर्भर रहता है। खस्ताहाल विपणन एवं भण्डारण व्यवस्था भारतीय कृषि की समस्याओं का बखान करती हैं।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

के कारण भूमि, श्रम व अन्य साधनों का समुचित उपयोग नहीं हो पाता है। निम्न उत्पादकता के निम्नलिखित कारण हैं:

- **भूस्वामित्व एवं वास्तविक कृषक:** भारत में जमींदारी प्रथा के कारण भूमि का स्वामित्व जमींदारों, मध्यस्थ, सूदखोर, महाजन इत्यादि के हाथ में रहा जिसके कारण जोतदार (वास्तविक किसान) को भूमि सुधार, सिंचाई सुविधाएं स्थापित करने एवं अन्य माध्यमों से कृषि की उत्पादकता बढ़ाने का प्रोत्साहन नहीं मिला। ऐसा कृषक के पट्टेदारी अधिकारों के असुरक्षित होने के कारण हुआ। ऐसी स्थिति में मात्र प्रौद्योगिकी सुधारों के माध्यम से उत्पादकता में वृद्धि नहीं की जा सकती थी। उत्पादकता में वृद्धि के लिए भूमि सुधार आवश्यक हो जाते हैं।
- **जीवन-निर्वाह कृषि:** कृषि क्षेत्र में 2 हेक्टेयर से कम आकार वाले जोतों की बाहुल्यता है। ऐसी जोतों पर आधुनिक कृषि पद्धति को अंगीकार नहीं किया जा सकता था। दूसरे, सहकारी कृषि के माध्यम से छोटी जोतों को वृहत् आकार प्रदान करने एवं कृषि की आधुनिक पद्धति अपना कर उत्पादकता बढ़ाने के प्रयासों को पूर्ण उत्साह के साथ लागू नहीं किया गया। ऐसी जोतों पर कृषि मात्र जीवन निर्वाह के लिए की जाती है।
- **अल्प पूंजी आधार:** अधिकांश कृषकों के पास पूंजी का अभाव है, जिसके कारण वे आधुनिक प्रौद्योगिकी के लाभों को नहीं उठा पाते हैं। अल्प पूंजी के कारण वे न तो सिंचाई सुविधाओं में निवेश कर पाते हैं और न ही फार्म- मशीनीकरण की दिशा में कदम उठा पाते हैं।
- **मानसून पर निर्भरता:** भारतीय कृषि उत्पादन मानसून के प्रति अतिसंवेदनशील है। सही समय पर मानसून आने का अर्थ अच्छी फसल का होना है। यदि मानसून सही समय पर नहीं आता है तो फसल उत्पादन बुरी तरह प्रभावित होता है। वृहत् सिंचाई सुविधाओं पर अत्यधिक बल देने तथा लघु सिंचाई सुविधाओं की अनदेखी के कारण मानसून के प्रति भारतीय कृषि क्षेत्र की निर्भरता बढ़ी है। हरित क्रांति के बाद के काल में उत्पादकता बढ़ाने की अनिवार्य शर्त के रूप में सिंचाई साधना का विस्तार भी है। समग्र आर्थिक विकास में कृषि के महत्व के परिप्रेक्ष्य में उत्पादकता वृद्धि के लिए मानसून पर निर्भर रहना उचित नहीं है। मानसून समय पर न आने की परिस्थिति में भी कृषि उत्पादन पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ने देने के लिए वैकल्पिक सिंचाई साधनों का विकास अनिवार्य हो जाता है।
- **जनसंख्या दबाव:** आजादी के बाद भारत की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ी है। साथ ही भूमि पर जनसंख्या के दबाव में निरंतर वृद्धि हुई है। आजादी के पश्चात कृषि के अधीन नवीन भूमि लाने के बावजूद विगत वर्षों में प्रति व्यक्ति कृषि भूमि घटी है।
- **मिट्टी की प्रकृति:** भारत में अनेक प्रकार की मिट्टी पाई जाती है जो सामान्यत: उर्वरक है परंतु निरंतर कृषि के कारण मिट्टी की उर्वरता में कमी आई है। मिट्टी की उर्वरकता को कायम रखने के लिए नाइट्रोजन स्थिरीकरण जैसे वैज्ञानिक तरीकों को नहीं अपनाया गया।
- **कृषि सुविधाओं का अभाव:** भारत में अल्प कृषि उत्पादकता की पृष्ठभूमि में कृषि सुविधाओं का अभाव भी महत्वपूर्ण कारण है। कृषकों को पर्याप्त विपणन व साख सुविधाएं उपलब्ध नहीं हो पाती हैं, जिससे वे न तो आवश्यक निवेश ही कर पाते हैं और न ही सही समय पर अपने उत्पादों की बिक्री कर पाते हैं।

संवृद्धि प्रवृत्तियां एवं चुनौतियां

बारहवीं योजना के आंकड़ों के अनुसार, ग्यारहवीं योजनावधि में, कृषिगत संवृद्धि में बढ़ोत्तरी के सार्थ-साथ विविधता भी आई। लेकिन 4 प्रतिशत की वृद्धि दर का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सका। कृषि संवृद्धि प्राप्त करना समावेशी विकास, गरीबी स्तर में कमी, ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास और कृषि आय में वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है।

अधिकतर विशेषज्ञ महसूस करते हैं कि कृषि क्षेत्र की धूमिल निष्पादन का कारण सार्वजनिक निवेश का निम्न स्तर, गेहूं और चावल की नई उच्च पैदावार किस्मों का अत्यधिक प्रयोग, अपर्याप्त प्रोत्साहन व्यवस्था और अपर्याप्त खेती-पश्चात मूल्य वर्द्धन तंत्र है। अब तकनीकी आगेता के प्रयोग की आवश्यकता है।

विशेष रूप से किसानों को मूल्य/कीमत प्रोत्साहन के कारण, कृषि क्षेत्र में नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं योजनाओं में निजी निवेश में बढ़ोत्तरी हुई। हालांकि, जबकि सिंचाई एवं जल-संरक्षण उपकरणों में निजी निवेश में बढ़ोत्तरी हुई, श्रम में कमी करने के तंत्र में अधिक वृद्धि हुई जिसके परिणामस्वरूप बढ़ती मजदूरी में श्रमबल की कमी परिलक्षित हुई।

जहां तक फसल पैदावार की बात है, बारहवीं योजना के आंकड़ों के अनुसार, ग्यारहवीं योजनावधि में बेहतर आंकड़े, मुख्य रूप से, मक्के एवं बीटी कॉटन में हाइब्रिड बीजों, बेहतर बीज गुणवत्ता, उच्च बीज प्रतिस्थापन, एवं नवीन फसल तकनीक या अधिक सिंचाई की अपेक्षा बेहतर कृषि पद्धति के कारण थे।

राष्ट्रीय कृषि नीति

28 जुलाई, 2000 भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय कृषि नीति घोषित की गई। इस नीति के प्रमुख उद्देश्य हैं—भारतीय कृषि की छिपी हुई व्यापक विकास संभावनाओं को खोजकर उनका सम्पूर्ण लाभ उठाना; ग्रामीण अवसंरचना को और अधिक दृढ़ बनाना ताकि कृषि संबंधी विकास को प्रोत्साहन मिल सके; ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अधिकाधिक अवसरों का सृजन करना; कृषकों, कृषि श्रमिकों एवं उनके परिवारों हेतु समुचित जीवन स्तर की व्यवस्था करना; ग्रामीण क्षेत्रों की ओर से शहरों की ओर पलायन पर अंकुश लगाना, तथा; आर्थिक उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण से उत्पन्न होने वाली विभिन्न चुनौतियों का सामना करना।

लक्ष्य: 1. कृषि क्षेत्र में 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष से अधिक संवृद्धि दर प्राप्त करना।

2. ऐसा कृषि विकास सुनिश्चित करना जो संसाधनों का कुशल प्रयोग कर सके तथा हमारी भूमि, जल एवं जैव-विविधता की रक्षा कर सके।

3. विकास के साथ-साथ समानता अर्थात् ऐसा विकास जो सभी क्षेत्रों में और सभी किसानों को लाभान्वित कर सके।

4. विकास मांग से प्रेरित हो तथा घरेलू बाजारों की आवश्यकता को पूर्ण करने के साथ-साथ आर्थिक उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण से उत्पन्न कृषि निर्यातों के समक्ष आने वाली चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना करते हुए अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर सके।

5. विकास जो तकनीकी रूप से, पर्यावरण सुधार के रूप से तथा आर्थिक रूप से धारणीय हो।

राष्ट्रीय कृषि नीति के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं—

- कृषि विकास को गति प्रदान करने हेतु मात्रात्मक प्रतिबंधों की समाप्ति के बाद की अवधि में, कृषि निजीकरण तथा किसानों को मूल्य संरक्षण प्रदान करना, सरकारी नीति का एक हिस्सा होगा।
- कृषि में निजी क्षेत्र के निवेश को प्रोत्साहित किया जाएगा खासतौर पर कृषि अनुसंधान, मानव संसाधन विकास, फसल कटाई के बाद की व्यवस्था तथा कृषि विपणन के क्षेत्र में।
- इस नई नीति में एक 'राष्ट्रीय पशुधन प्रजनन युक्ति' तैयार करने की बात की गई है।
- पशुपालन, मुर्गीपालन, डेयरी और जल कृषि को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी।
- देश भर में कृषि वस्तुओं के आवागमन पर प्रतिबंधों को कम किया जाएगा और कालांतर में उन्हें समाप्त कर दिया जाएगा।
- कृषि विकास के एक प्रमुख संचालक के रूप में ग्रामीण विद्युतीकरण को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी।
- सिंचाई और अन्य कृषि प्रयोजनों के लिए ऊर्जा के नए एवं नवीकरणीय स्रोतों के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाएगा।
- किसानों को एक पैकेज बीमा पॉलिसी प्रदान करने के प्रयास किए जाएंगे जिसके तहत् फसलों की बुवाई से लेकर कटाई पश्चात् की गतिविधियों तक का, तथा कृषि उत्पाद की कीमतों में उतार-चढ़ाव तक का, बीमा की व्यवस्था होगी।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

(iii) फसल उत्पादकता वृद्धि के लिए कृषि-जलवायवीय क्षेत्रवार नियोजन एवं संगुच्छ शैली अपनाना।

(iv) चावल के परती खेत के उपयोग द्वारा दाल उत्पादन पर ध्यान देना और मोटे अनाज, तिलहन और नकदी फसलों (गन्ना, कपास, जूट) के साथ दाल का अंतर्फसलन करना।

(v) बेहतर प्रौद्योगिकियों का विस्तार एवं संवर्द्धन करना जिसमें बीज, समन्वित पोषक प्रबंधन (आईएनएम), इसमें सूक्ष्म पोषक भी हैं, मृदा बदलाव, समन्वित कीट प्रबंधन (आईपीएम), किसानों/विस्तारित कार्यकर्ताओं के क्षमता-निर्माण के साथ आगत प्रयोग दक्षता एवं संसाधन संरक्षण तकनीकियां शामिल हैं।

(vi) लक्षित लाभार्थियों तक हस्तक्षेपों की सामयिक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए वित्त प्रवाह की सूक्ष्म निगरानी करना।

(vii) प्रत्येक चिन्हित जिले की जिला योजना के साथ विभिन्न प्रस्तावित हस्तक्षेपों और लक्ष्यों का एकीकरण करना।

(viii) परिणामोन्मुखी शैली के लिए हस्तक्षेपों के प्रभाव के मूल्यांकन हेतु क्रियान्वयन एजेंसियों द्वारा निरंतर निगरानी एवं समवर्ती मूल्यांकन करना।

एनएफएसएम एक केंद्र प्रायोजित योजना है जिसका वित्तपोषण केंद्र एवं राज्य द्वारा 50 : 50 के अनुपात में किया जाता है। पंचायती राज संस्थान लाभान्वितों के चयन और चयनित जिलों में स्थानीय कदमों के अंतर्गत हस्तक्षेपों का चयन करने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

राष्ट्रीय तिलहन एवं ऑयल पाम मिशन (एनएमओओपी)

यह एक केंद्र प्रायोजित योजना है। योजना का उद्देश्य ऑयल पाम के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण क्षेत्र को लाने के साथ परम्परागत तिलहन एवं वृक्ष जनित तिलहन के उत्पादन में वृद्धि करना है। 2014-15 में इसे पुनर्संरचित रूप में प्रस्तुत किया गया। राष्ट्रीय तिलहन एवं ऑयल पाम मिशन (एनएमओओपी) के अंतर्गत तीन घटक हैं—(i) मिनी मिशन-1 (तिलहन); (ii) मिनी मिशन-2 (ऑयल पाम); (iii) मिनी मिशन-3 (वृक्ष जनित तिलहन-टीवीओ)।

इस मिशन का वित्तपोषण केंद्र और राज्य सरकार के बीच 75 : 25 के अनुपात में किया जाएगा। इसमें ब्रीडर बीजों का क्रय, बीज की मिनीकिट्स की आपूर्ति, राष्ट्रीय बीज निगम (एनएससी), राज्य कृषि विश्वविद्यालय (एसएयू) जिसमें किसान विज्ञान केंद्र, फील्ड लेवल डेमोन्सट्रेशन (एफएलडी), एनएएफईडी, टीआरआईएफईडी को प्रापण समर्थन, केंद्र सरकार द्वारा 100 प्रतिशत वित्तपोषित जारी अनुसंधान परियोजनाओं का समर्थन शामिल है, जैसे लोक क्षेत्र अभिकरणों के माध्यम से बीज उत्पादन हेतु अवसंरचना विकास जैसे कुछ हस्तक्षेप के मामले इसमें शामिल नहीं हैं।

एमएनओओपी की रणनीतिः प्रस्तावित मिशन के क्रियान्वयन की रणनीति में शामिल हैं

- वैराइटी (किस्मों) के प्रतिस्थापन पर ध्यान देने के साथ बीज प्रतिस्थापन अनुपात (एसआरआर) में वृद्धि करना।
- तिलहन के अंतर्गत सिंचित क्षेत्र को बढ़ाकर 26-36 प्रतिशत करना।
- निम्न पैदावार खाद्यान्न फसल के क्षेत्र का तिलहन में विविधीकरण करना और खाद्यान्न/दाल/गन्ने के साथ तिलहन का अंतर्फसलन करना।
- धान/आलू की खेती के पश्चात् परती भूमि का प्रयोग करना।
- जलसंभर एवं बंजर भूमि में ऑयल पाम एवं वृक्ष जनित तिलहन की खेती विस्तार करना।
- वृक्ष जनित तिलहन का संसाधन करना।
- ऑयल पाम एवं वृक्ष जनित तिलहन की पैदावार के दौरान अंतर्फसलन नों को आर्थिक प्रतिफल प्रदान करेगा, जब उनके पास कोई पैदावार न हो।

पंचायती राज की भूमिकाः (i) जिला स्तर पर प्रोजेक्ट मैनेजमेंट टीम का रना; (ii) जिला वार्षिक कार्य योजना बनाना; (iii) संगुच्छ/अग्रपंक्ति प्रदर्शन की पहचान करना; (iv) तिलहन की खेती के अंतर्गत उपयोगिता के लिए मों के तहत् बंजर भूमि विकास/जल क्षेत्र सृजन जैसे संसाधनों को प्रमुखता कार्यक्रम के बारे में फीडबैक और क्रियान्वयन की प्रगति की समीक्षा करना; ाम सभा द्वारा कार्यक्रम का सामाजिक अंकेक्षण।

एमएमए योजनाः कृषि योजना के वृहद प्रबंधन (एमएमए) को 2000-01 में प्रारंभ किया गया था। वर्ष 2008 के दौरान योजना को संशोधित किया गया। संशोधित एमएमए योजना अतिव्यापन एवं नकल को समाप्त करने में अपनी भूमिका को पुनर्परिभाषित करती है और राज्यों में वर्तमान कृषि दशा के अनुकूल स्वयं को बनाती है जो जिला कृषि योजना पर आधारित है। इसमें फसल उत्पादन एवं प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन से सम्बद्ध उपयोजनाएं भी शामिल हैं। इसमें चक्रण व्यवस्था क्षेत्रों पर आधारित चावल, गेहूं एवं मोटे अनाज में समन्वित खाद्यान्न विकास कार्यक्रम, चक्रण व्यवस्था पर आधारित गन्ने का सतत् विकास और दलहन एवं तिलहन हेतु समन्वित विकास कार्यक्रम, उर्वरकों का संतुलित एवं समन्वित प्रयोग, लघु कृषकों के बीच कृषि के यंत्रीकरण को प्रोत्साहित करना, वर्षा विभुख क्षेत्रों में राष्ट्रीय जलसंभर विकास कार्यक्रम, मृदा संरक्षण एवं क्षारीय मृदा का विकास शामिल है।

संशोधित एमएमए योजनाएं एनएफएसएम, आरकेवीवाई जैसे बड़े कार्यक्रमों से जुड़ी हैं। संशोधित एमएमए राज्यों एवं संघ क्षेत्रों को पूर्वोत्तर के राज्यों एवं संघ प्रदेशों को छोड़कर, 90:10 के अनुपात में अनुदान के रूप में सहायता प्रदान करता है। पूर्वोत्तर राज्यों एवं संघ प्रदेशों में यह अनुदान 100 प्रतिशत है।

बागवानी

बागवानी क्षेत्र में फूल, सब्जियां, आलू, कंदमूल, सजावटी, औषधीय एवं सुगंधित फसलें, मसाले एवं रोपण फसलें इत्यादि जैसी फसलों की वृहद शृंखला आती है। मशरूम, बांस एवं मधुमक्खी पालन जैसी नवीन फसलों ने बागवानी क्षेत्र का विस्तार किया है।

भारत में बागवानी उत्पादों के विकास हेतु बाधाएं

भारत में बागवानी उत्पादों के विकास में निम्नलिखित बाधाएं हैं:

- बीजों एवं रोपण सामग्री की निम्न गुणवत्ता और उनका कमजोर मूल्यांकन तंत्र।
- बागानों का छोटा एवं अनार्थिक औसत आकार।
- जर्जर एवं पुराने बागानों की अधिकता और उनकी लचर प्रबंधन व्यवस्था।
- बागवानी उत्पाद की नष्ट होने की उच्च दर, जिससे ऊंची मात्रा में क्षति होती है।
- अल्पविकसित एवं शोषणपरक बाजार संरचना।
- गुणवत्तापरक उत्पाद के लिए पर्याप्त मानकों का अभाव।
- अपर्याप्त अनुसंधान एवं विस्तार तंत्र।
- कीमतों की अस्थिरता।
- लचर जोखिम प्रबंधन, प्रामाणिक आंकड़ों का अभाव एवं अदक्ष आंकड़ा संग्रहण एवं सूचना व्यवस्था।

एकीकृत बागवानी विकास मिशन (एमआईडीएच)

एकीकृत बागवानी विकास मिशन (एमआईडीएच) 2014-15 से शुरू किया गया है। यह एक केंद्र प्रायोजित योजना है जो बागवानी क्षेत्र की समग्र संवृद्धि पर केन्द्रित है और इसमें फल, सब्जी, जड़ में उगने वाली फसलें, मशरूम, मसाले, फूल, खुशबूदार पौधे, नारियल, काजू, कोको और बांस शामिल हैं। इस मिशन के अंतर्गत बागवानी की सभी वर्तमान स्कीमों को लाया गया है। गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री का उत्पादन एवं वितरण, संरक्षित कृषि के जरिए उत्पादकता सुधार के उपाय, सूक्ष्म सिंचाई के उपयोग, एकीकृत कटाई उपरांत प्रबंधक और विपणन हेतु अवसंरचना सृजन के साथ-साथ एकीकृत कीट रोग प्रबंधन और एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन को अपनाने पर एमआईडीएच में ध्यान केंद्रित किया गया है। भारत सरकार उत्तर-पूर्व एवं हिमालय में स्थित राज्यों को छोड़कर सभी राज्यों में विकासपरक कार्यों के लिए कुल खर्च में 85 प्रतिशत का योगदान करती है, जबकि 15 प्रतिशत योगदान राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। पूर्वोत्तर और हिमालय में स्थित राज्यों के मामले में, भारत सरकार का योगदान 100 प्रतिशत होता है। इसी प्रकार, बांस के विकास और राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड (एनएचबी), नारियल विकास बोर्ड (सीडीबी), केन्द्रीय बागवानी संस्थान (सीआईएच), नागालैंड और राष्ट्रीय स्तरीय अभिकरण (एनएलए) के कार्यक्रमों में भारत सरकार का योगदान 100 प्रतिशत होगा।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

एमआईडीएच के अंतर्गत छह घटक हैं–

1. राष्ट्रीय बागवानी मिशन: राष्ट्रीय बागवानी मिशन (एनएचएम) एमआईडीएच की एक उपयोजना है जिसका क्रियान्वयन राज्य बागवानी मिशन (एसएचएम) द्वारा 18 राज्यों और 4 संघ क्षेत्रों के चुनिंदा जिलों में किया जाता है। इस उपयोजना के अंतर्गत बागवानी उत्पादों के उत्पादन, फसल परवर्ती प्रबंधन और विपणन मामलों को शामिल किया जाता है। इसमें प्रतियोगी बागवानी फसलों पर अधिक जोर देने के साथ प्रौद्योगिकी के प्रति भी दृष्टिकोण बदलने पर बल दिया गया है। राष्ट्रीय बागवानी मिशन को मई 2005 में प्रारंभ किया गया था। इस कार्यक्रम के अंतर्गत बागवानी उत्पादों के उत्पादन, फसल परवर्ती प्रबंधन और विपणन मामलों को शामिल किया जाता है।

2. पूर्वोत्तर एवं हिमालयी राज्य बागवानी मिशन (एचएमएनईएच): यह एमआईडीएच की एक उपयोजना है जिसे राज्य बागवानी मिशन (एचएचएम) द्वारा पूर्वोत्तर एवं हिमालयी राज्यों में क्रियान्वित किया जाता है। मिशन के क्रियान्वयन ने इन राज्यों में विभिन्न बागवानी फसलों (फल, सब्जी, मसाले, फसल पोधारोपण, औषधीय पौधे, सुगन्धित पौधे, जड़ें और ट्यूबर फसलें) को विकसित करने में मदद की है। बागवानी एकीकृत विकास प्रौद्योगिकी मिशन पूर्वोत्तर राज्यों में उत्पादन और उत्पादकता, पश्च कटाई संचालन, विपणन और बागवानी फसलों के प्रसंस्करण से संबंधित मुद्दे हल करने के लिए 2001-02 में शुरू किया गया था। इस मिशन में 2003-04 में तीन हिमालयी राज्यों अर्थात् हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर और उत्तराखंड शामिल किए गए। इसमें बागवानी विकास का पश्च और अग्र जुड़ाव के माध्यम से उत्पादन से उपभोग तक का सम्पूर्ण स्पेक्ट्रम शामिल है। इसके कार्यान्वयन के दौरान यह महसूस किया गया कि बागवानी क्षेत्र के सम्पूर्ण विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कुछ अतिरिक्त संघटक शुरू करने की आवश्यकता है। तदनुसार, कुछ नए संघटक जैसे उच्च सघनता पौधारोपण, सब्जी बीज उत्पादन, और बागवानी मशीनीकरण को इस मिशन में शामिल कर दिया गया। निवेश को बढ़ावा देने और लाभार्थियो को आय सृजन में सहायता देने के लिए लागत मानदण्डों के संशोधन के साथ अब इसका नाम बदलकर 'पूर्वोत्तर और हिमालयी राज्य बागवानी मिशन' (एचएमएनईएच) हो गया।

3. राष्ट्रीय बांस मिशन (एनबीएम): राष्ट्रीय बांस मिशन, एकीकृत बागवानी विकास मिशन (एमआईडीएच) की उपयोजनाओं में से एक है जिसका क्रियान्वयन सभी राज्यों और संघ क्षेत्रों में राज्य बांस विकास अभिकरणों (बीडीए)/वन विकास अभिकरण (एफडीए) द्वारा किया जाता है। इस मिशन के अंतर्गत लगभग एक हेक्टेयर भूमि पर बांस लगाने का उद्देश्य रखा गया है, जिससे बांस और इसके सहायक उद्योग में रोजगार और आय बढ़ाने में सहायता मिलेगी। योजना के अंतर्गत देश में बांस की फसल को एकीकृत करने तथा बांस की फसल के बाद के प्रबंधन और बाजार के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जाता है।

4. राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड (एनएचबी): राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड एमआईडीएच के अंतर्गत सभी राज्यों और संघ क्षेत्रों में विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन कर रहा है। राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड पहचान किए गए कुछ विशेष क्षेत्रों में बागानों की गुणवत्ता बढ़ाने और ऐसे क्षेत्रों को गतिशील बनाने, जो व्यावसायिक फसलों के विकास के लिए महत्वपूर्ण साबित हो, फसल के बाद के मूलभूत ढांचे का विकास, बागवानी के लिए डाटा बेस और बाजार सूचना तंत्र को सुदृढ़ बनाना, बागवानी प्रौद्योगिकी और बेहतर तरीकों के साथ विशेष किस्मों के विकसित उत्पादों के लिए विकास कार्यक्रम तैयार करना, किसानों को प्रशिक्षण देना और कृषि शास्त्र की बेहतरी के लिए नई प्रौद्योगिकी और प्रसंस्करण का प्रशिक्षण देने का काम करता है।

5. नारियल विकास बोर्ड (सीडीबी): नारियल विकास बोर्ड एमआईडीएच के अधीन देश में सभी नारियल उत्पादक राज्यों में विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन कर रहा है।

6. केंद्रीय बागवानी संस्थान (सीआईएच): यह बागवानी हेतु पूर्वोत्तर राज्यों में काम करता है। यह मानव संसाधन विकास और क्षमता निर्माण पर ध्यान देता है।

एकीकृत बागवानी विकास मिशन (एमआईडीएच) सभी बागवानी फसलों और किसानों के खेतों पर संरक्षित कृषि के लिए सूक्ष्म सिंचाई की दिशा में राष्ट्रीय सतत् कृषि मिशन (एनएमएसए) के साथ घनिष्ठ रूप से मिलकर कार्य करेगा।

एमआईडीएच कंसर मिशन और राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (आरकेवीवाई)/ राष्ट्रीय सतत् कृषि मिशन (एनएमएसए) द्वारा वित्तपोषित, वेजीटेबल इनिशिएटिव फॉर अर्बन क्लस्टर्स (वीआईयूसी) जैसी अन्य बागवानी सम्बद्ध गतिविधियों के लिए राज्य सरकारों/राज्य बागवानी मिशनों (एसएचएम) को तकनीकी परामर्श एवं प्रशासनिक मदद भी प्रदान करेगा।

एमआईडीएच के उद्देश्य:
- क्षेत्र आधारित प्रादेशिक रूप से विभेदित रणनीतियों के माध्यम से, वास् और नारियल समेत, बागवानी क्षेत्र के समग्र विकास को प्रोत्साहित करना, जिसमें अनुसंधान, तकनीकी प्रोन्नयन, विस्तार, फसल पश्चात् प्रबंधन, संसाधन एवं विपणन शामिल हैं।
- किसानों को कृषक समूहों में/उत्पादक कंपनियों/संगठनों में एकत्रीकरण को प्रोत्साहन देना जिससे अर्थव्यवस्था में 'स्केल एवं स्कोप' आ सके।
- बागवानी उत्पादन बढ़ाने, किसानों के संवर्धन, आय तथा पोषण सुरक्षा को मजबूत करना।
- जर्मप्लाज्म विधि द्वारा उत्पादन वृद्धि, सूक्ष्म सिंचाई के माध्यम से रोपण सामग्री और जल उपयोग दक्षता; और
- फसल कटाई के बाद के प्रबंधन व बागवानी में ग्रामीण युवाओं हेतु रोजगार सृजन के अवसर पैदा करना तथा दक्षता विकास का समर्थन।

मिशन की रणनीतियां: उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मिशन निम्न रणनीतियों को अपनाएगा–
- उत्पादक को उचित प्रतिफल सुनिश्चित करने के लिए उत्पादन पूर्व चरण, उत्पादन, पश्च फसल प्रबंधन, प्रोसेसिंग और विपणन को शामिल करते हुए एक समग्र उपागम को अपनाना।
- जल्दी खराब होने वाली खाद्य वस्तुओं को लंबे समय तक बनाए रखने के लिए शीत भण्डारण शृंखला पर विशिष्ट ध्यान देते हुए खेती, उत्पादन, पश्च-फसल प्रबंधन और संसाधन हेतु अनुसंधान एवं विकास को बढ़ावा देना।
- उत्पादकता में सुधार करना:
  (i) परम्परागत फसलों से रोपण कृषि, बागानों, फूलों, वेजीटेबल गार्डन और बांस रोपण की तरफ विविधीकृण करना;
  (ii) संरक्षित कृषि एवं सूक्ष्म खेती को शामिल करते हुए उच्च-तकनीकी बागवानी हेतु किसानों को उचित प्रौद्योगिकी का विस्तार करना; एवं
  (iii) वांस एवं नारियल को शामिल करते हुए बागान एवं रोपण कृषि के क्षेत्र में वृद्धि करना, विशेष रूप से उन राज्यों में जहां बागवानी के अंतर्गत कुल क्षेत्र कृषि क्षेत्र के 50 प्रतिशत से कम हो।
- पश्च फसल प्रबंधन, मूल्य वर्द्धन हेतु संसाधन और विपणन अवसंरचना का सुधार करना।
- सहयोगात्मक शैली अपनाना और राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, राज्य एवं उप-राज्य स्तरों पर सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में अनुसंधान एवं विकास, संसाधन एवं विपणन अभिकरणों के बीच साझेदारी, समझ एवं मतैक्य को प्रोत्साहित करना।
- किसानों को पर्याप्त प्रतिफल दिलाने के लिए एफपीओ और बाजार संग्रहकर्ताओं तथा वित्तीय संस्थानों के साथ उसके समझौतों को प्रोत्साहित करना।
- सभी स्तरों पर क्षमता निर्माण एवं मानव संसाधन विकास का समर्थन करना, जिसमें उचित रूप में कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों, पॉलीटेक्निक के स्नातक कोर्स के पाठ्यक्रम में परिवर्तन शामिल हैं।

पशुपालन, डेयरी उद्योग एवं मत्स्यिकी

पशुधन कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण रूप से सकल मूल्यवर्द्धन में योगदान करता है और लाखों लोगों को रोजगार प्रदान करता है।

विगत् छह दशकों में दुग्ध उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि के बावजूद हमारे पशुओं की उत्पादकता अभी भी कम है। हमारी विपणन प्रणालियां भी संतोषजनक रूप से आधुनिक अथवा विकसित नहीं है। इस क्षेत्र के अन्य मुद्दे हैं: निष्प्रभावी प्रजनन कार्यक्रम, गुणवत्ता वाले भोजन और चारे की सीमित उपलब्धता और वहनीयता, पशु

WWW.GRADESETTER.COM

SPECTRUM

WWW.GRADESETTER.COM

बड़ी, मध्यम, छोटी सिंचाई परियोजनाएं

योजना आयोग ने विभिन्न सिंचाई परियोजनाओं को बड़ी, मध्यम और छोटी परियोजनाओं के रूप में विभक्त किया है। बड़ी सिंचाई परियोजना के नियंत्रण के अधीन 10,000 हेक्टेयर, मध्यम सिंचाई परियोजना के नियंत्रण के अधीन 2,000 से 10,000 हेक्टेयर संचयी कृषि योग्य क्षेत्रफल है। छोटी सिंचाई परियोजना के नियंत्रण के अधीन 2,000 हेक्टेयर संचयी क्षेत्रफल है।

समन्वित जलसंभर प्रबंधन कार्यक्रम (आईडब्ल्यूएमपी)

समन्वित जलसंभर प्रबंधन कार्यक्रम (आईडब्ल्यूएमपी) भूतपूर्व कार्यक्रमों–सूखा संभावित क्षेत्र कार्यक्रम (डीपीएपी), मरु विकास कार्यक्रम (डीडीपी) और समन्वित बंजर भूमि विकास कार्यक्रम (आईडब्ल्यूडीपी)–का एक परिवर्तित कार्यक्रम है। यह समन्वय संसाधनों के अधिकतम उपयोग, धारणीय परिणामों एवं समन्वित नियोजन के लिए किया गया। यह योजना वर्ष 2009-10 के दौरान प्रारंभ की गई। इस योजना का मुख्य उद्देश्य मृदा, वानस्पतिक आच्छादन एवं जल जैसे अपघटय प्राकृतिक संसाधनों के विकास एवं संरक्षण द्वारा पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाए रखना है। उल्लेखनीय है कि अब यह योजना प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई) का एक घटक है।

त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रमः सिंचाई सम्भाव्यता में सृजन की दर में निरंतर गिरावट के परिप्रेक्ष्य में केंद्र सरकार द्वारा अपूर्ण सिंचाई योजनाओं को पूरा करने के लिए सहायता देने हेतु 1996-97 से त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम (एआईबीपी) प्रारंभ किया गया। इस कार्यक्रम के अंतर्गत योजना आयोग द्वारा अनुमोदित परियोजनाएं सहायता के लिए पात्र हैं। एआईबीपी के दिशा-निर्देशों में विशेष श्रेणी के राज्यों डीपीएपी/जनजातीय क्षेत्रों तथा ओडिशा के केवीके (कोरापुट, बोलंगीर और कालाहांडी) जिलों को अनुदान के रूप में परियोजना लागत की 90 प्रतिशत सहायता उपलब्ध कराने हेतु योजना में पुनः संशोधन किया गया। उल्लेखनीय है कि अब यह योजना प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई) का एक घटक है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई)

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई) को 2 जुलाई, 2015 को मंजूरी दे दी। इसमें पांच वर्षों (2015-16 से 2019-20) के लिए 50,000 करोड रुपए की राशि का प्रावधान किया गया है। जल संसाधन, रिवर डेवेलपमेंट एंड गंगा रिजुविनेशन (MoWR, RD & GR), मंत्रालय की ऐक्सीलेरेटेड इरीगेशन बेनेफिट प्रोग्राम (AIBP), भूमि संसाधन विभाग (DoLR) की इंटिग्रेटेड वाटरशेड मैनेजमेंट प्रोग्राम (IWMP) तथा कृषि व सहकारिता विभाग (DAC) की ऑन फॉर्म वॉटर मैनेजमेंट (OFWM), को पीएमकेएसवाई में समाहित किया गया है। इस योजना को कृषि, जल संसाधन और ग्रामीण विकास मंत्रालयों द्वारा कार्यान्वित किया जाएगा।

पीएमकेएसवाई के उद्देश्यः प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के व्यापक लक्ष्य हैं–

(i) खेत स्तर पर सिंचाई में निवेश को आकर्षित करने का प्रयास करना;

(ii) सिंचाई में निवेश में एकरूपता लाना;

(iii) 'हर खेत को पानी' के अंतर्गत कृषि योग्य क्षेत्र का विस्तार करने के लिए, खेतों में ही जल को इस्तेमाल करने की दक्षता बढ़ाना, ताकि पानी के अपव्यय को कम किया जा सके;

(iv) सही सिंचाई और पानी बचाने की तकनीक को अपनाना (हर बूंद अधिक फसल);

(v) कुआं-तालाबों को फिर से रीचार्ज करना और सतत् जल संरक्षण संव्यवहारों को प्रस्तुत करना;

(vi) मृदा एवं जल संरक्षण, भौम जल पुनरुत्पादन, बहते जल की रोकथाम, आजीविका विकल्प प्रदान करना और राष्ट्रीय ग्रामीण मिशन गतिविधियों की दिशा में जलसंभर उपागम का प्रयोग करते हुए वर्षा सिंचित क्षेत्रों के समन्वित विकास को सुनिश्चित करना;

(vii) किसानों एवं जमीनी स्तर के कार्यकर्ताओं के लिए जल संचय, जल प्रबंधन और फसल पंक्ति योजना से सम्बद्ध विस्तार गतिविधियों को प्रोत्साहित करना;

(viii) शहरी क्षेत्रों की परिधि में की जाने वाली कृषि हेतु उपचारित नगरपालिका अपशिष्ट जल के पुनर्प्रयोग की सुसाध्यता को बढ़ाना, और

(ix) सिंचाई में अधिकाधिक निजी निवेश को आकर्षित करना।

रणनीति एवं मुख्य क्षेत्रः उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए, पीएमकेएसवाई जल संसाधन, वितरण नेटवर्क, दक्ष खेत स्तर अनुप्रयोग, नवीन प्रौद्योगिकियों एवं सूचना की विस्तार सेवाएं, इत्यादि जैसी सिंचाई में आपूर्ति शृंखला के अंतिम समाधान पर ध्यान देकर रणनीति बनाएगा। पीएमकेएसवाई निम्न बातों पर ध्यान देगा–

(i) नए जल संसाधनों का सृजन; बंद हो चुके जल संसाधनों की मरम्मत, व्यवस्थित करना और पुनरुद्धार करना; जल मंदिर (गुजरात), खत्री, कूहल (हिमाचल प्रदेश); जावो (नागालैंड); इरी, अरेनिस (तमिलनाडु); डोंग्स (असम); कतास, वन्धास (ओडिशा और मध्य प्रदेश), इत्यादि जैसे ग्राम स्तर पर परम्परागत जल निकायों की क्षमताओं को बढ़ाना, भौम जल विकास, माध्यमिक एवं सूक्ष्म भण्डारण, जल संचय संरचनाओं का निर्माण करना;

(ii) जहां सिंचाई स्रोत (विश्वस्त और संरक्षित दोनों) उपलब्ध हैं या तैयार कर लिए गए हैं वहां वितरण नेटवर्क का विकास/वृद्धि करना;

(iii) भौम जल स्तर को सुधारने के लिए वैज्ञानिक नम्यता संरक्षण को बढ़ावा देना और जल बहाव नियंत्रण के उपाय करना ताकि किसानों के निम्न नलकूप/कुओं द्वारा रिचार्ज जल तक पहुंचने के अवसर उत्पन्न हो सकें;

(iv) खेत के भीतर भूमिगत पाइपिंग व्यवस्था, ड्रिप सिंचाई, धुरी सिंचाई, वर्षा गन एवं अन्य एप्लीकेशन उपकरण, इत्यादि जैसे दक्ष जल साधन एवं फील्ड एप्लीकेशन को प्रोत्साहित करना;

(v) पंजीकृत उपयोगकर्ता समूह/किसान संगठन/गैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से सामुदायिक सिंचाई को प्रोत्साहित करना; और

(vi) लघु एनीमेशन फिल्म के द्वारा विस्तार गतिविधियों, और जनसंचार अभियान, प्रदर्शनियों और फील्ड डेज के माध्यम से 'हर बूंद अधिक फसल' पर व्यापक जन-जागरूकता को शामिल करते हुए क्षमता-निर्माण, प्रशिक्षण एवं उन्मुख सत्र, प्रदर्शनों, फार्म स्कूल, जल क्षम और फसल प्रबंधन संव्यवहारों में कौशल विकास जैसी किसान उन्मुख गतिविधियां।

पीएमकेएसवाई के घटकः प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के घटक हैं–(i) त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम (एआईबीपी); (ii) हर खेत को पानी; (iii) हर बूंद अधिक फसल; एवं (iv) जलसंभर विकास।

नीरांचलः नीरांचल नेशनल वाटरशेड प्रोजेक्ट ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा 2016 से 2021 तक 6 वर्षों की अवधि के लिए कार्यान्वित की जा रही है। यह परियोजना 2012 में यूपीए सरकार द्वारा आरंभ की गई एवं अक्टूबर 2015 में एनडीए सरकार ने इसे 2142 करोड रुपए के बजट परिव्यय के साथ अनुमोदित किया। इसमें 50 प्रतिशत खर्च सरकार उठाएगी एवं बाकी 50 प्रतिशत विश्व बैंक द्वारा वित्त पोषित होगा। जनवरी 2016 में परियोजना हेतु सरकार ने विश्व बैंक के साथ एक ऋण समझौता किया, जिससे देश में कृषि उत्पादन में वृद्धि अपेक्षित है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई) के जलसंभर घटक के महत्वपूर्ण उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए और प्रत्येक खेत तक सिंचाई (हर खेत को पानी) सुनिश्चित करने और जल का दक्षतापूर्ण उपयोग (हर बूंद अधिक फसल) करने के लिए, नीरांचल को प्राथमिक रूप से निम्नलिखित चिंताओं को संबोधित करने के दृष्टिगत तैयार किया गया है:

(i) भारत में जलसंभर एवं वर्षा-सिंचित कृषि प्रबंधन संव्यवहारों में संस्थात्मक परिवर्तन लाना।

(ii) ऐसा तंत्र विकसित करना जो जलसंभर कार्यक्रमों और वर्षा सिंचित सिंचाई प्रबंधन संव्यवहारों का बेहतर ध्यान सुनिश्चित करे और अधिक समन्वय और मात्रात्मक परिणाम दें।

(iii) प्रोजेक्ट मदद बंद होने के बाद भी, कार्यक्रम क्षेत्रों में बेहतर जलसंभर प्रबंधन संव्यवहारों की सततता हेतु रणनीतियों को विभाजित करना।

(iv) समावेशन और स्थानीय सहभागिता के मंच पर, अग्र सम्पर्कों के माध्यम से आय और जलसंभर उपागम के द्वारा बेहतर क्षमता, आजीविका को समर्थन करना

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

नीरांचल पीएमकेएसवाई को बेहतर क्रियान्वयन परिणामों में बदलेगा। कार्यक्रम वर्षा जल के धरातलीय बहाव को कम करेगा, परियोजना क्षेत्र में बेहतर कवरेज सम्बद्ध कार्यक्रमों के माध्यम से भौम जल स्तर में वृद्धि करना और वर्षा सिंचित क्षेत्र में जल की बेहतर उपलब्धता करना जिसके परिणामस्वरूप वृद्धिकारक वर्षा सिंचित कृषि उत्पादकता होगी, और दुग्ध उत्पादन को बढ़ाना एवं फसलन को गहनता में वृद्धि करना।

नीरांचल पीएमकेएसवाई के जलसंभर घटक को तकनीकी सहायता प्रदान करके सुदृढ़ करेगी और इसकी प्रदायन क्षमता में वृद्धि करेगी।

कृषि आगतें

बीज

बीज कृषि उत्पादन का महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है, जिस पर अन्य आदानों का निष्पादन और दक्षता निर्भर करती है। उत्पादकता बढ़ाने के लिए विभिन्न कृषि-जलवायुवीय स्थितियों के लिए उचित गुणवत्ता वाले बीज और वहनीय कीमतों पर पर्याप्त मात्रा की आवश्यकता है। कृषि उत्पादन और उत्पादकता में सतत् वृद्धि के लिए फसलों की नई और उन्नत किस्मों का विकास, उत्पादन और किसानों को बीज की आपूर्ति तथा कुशल प्रणाली की आवश्यकता है। सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में भारतीय बीज उद्योग में प्रभावशाली विकास हुआ है और इससे कृषि उत्पादन में और अधिक विकास की संभावनाएं बनेंगी। बीज उद्योग की भूमिका, न केवल अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों की पर्याप्त मात्रा का उत्पादन करना है बल्कि किस्म संबंधी विविधता प्राप्त करना भी है।

कृषि और सहकारिता विभाग ने विभिन्न फसलों और राज्यों हेतु बीजों की आवश्यकता का पता लगाने के लिए राष्ट्रीय बीज योजना तैयार की है। इस योजना में बीज प्रतिस्थापन दर बढ़ाने के लिए गुणवत्ता बीज उत्पादन में कृषि और सहकारिता विभाग, राज्य सरकारें, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद/राज्य कृषि विश्वविद्यालय, बीज निगमों और बीज उद्योगों की सहभागिता और सहयोग परिकल्पित है। राष्ट्रीय बीज योजना में उपर्युक्त एजेंसियों को शामिल करते हुए बीज विकास, उत्पादन और आपूर्ति शृंखला परिकल्पित की गई है।

राष्ट्रीय बीज नीति, 2002: 18 जून, 2002 को केंद्रीय मंत्रिमंडल ने बीज उद्योग को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से नई बीज नीति को स्वीकृति प्रदान कर दी। इसमें पौधों की नयी प्रजातियों के विकास के लिए अनुसंधान को प्रोत्साहित करने पर बल दिया गया है। बीज क्षेत्र के समग्र विकास के लिए इस क्षेत्र में निवेश को बढ़ावा देने के उद्देश्य से बौद्धिक संपदा संरक्षण का प्रावधान किया गया है। इस नयी बीज नीति के अनुसार आनुवंशिकीय संवर्द्धित बीजों का आयात नेशनल ब्यूरो फॉर प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज के द्वारा ही किया जायेगा। नयी नीति में इस प्रकार के संवर्द्धित बीजों का विपणन भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) द्वारा दो वर्षों के परीक्षणों तथा जेनेटिक इंजीनियरिंग एप्रूवल कमेटी (GEAC) के अनुमोदन के बाद ही किए जाने का प्रावधान है।

नीति में आनुवंशिकीय संवर्द्धित तथा ट्रांसजेनिक बीजों के आयात के विपणन, नियमन व प्रमाणन तथा अन्य नियमों के उल्लंघन हेतु दंड का प्रावधान भी किया गया है।

विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organisation--WTO) के ट्रिप्स समझौते, जिसे भारत सरकार द्वारा अनुमोदित किया जा चुका है, के प्रावधानों के प्रति बाध्यता व्यक्त करते हुए भारत द्वारा 2003 में एक पौध विविधता एवं कृषक अधिकार अधिनियम अधिसूचित किया गया, जिसे 2007 में पारित कर कानून बना दिया गया। इस अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य हैं:

(i) सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में नई पौध किस्मों के अनुसंधान एवं विकास हेतु निवेश को प्रोत्साहित करना।

(ii) घरेलू एवं विदेशी निवेश के माध्यम से देश में बीज उद्योग की वृद्धि को सरल बनाना, ताकि भारतीय कृषकों हेतु उन्नत किस्म के बीजों की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके।

(iii) खेतिहर एवं संरक्षणकर्ता के रूप में किसानों की भूमिका की पहचान करना तथा देश की कृषि जैव-विविधता में परम्परागत, ग्रामीण एवं जनजातीय समूहों की पहचान करना तथा उन्हें सम्मानित करना।

इस अधिनियम के अंतर्गत किसानों के हितों की रक्षा के साथ-साथ अनुसंधानकर्ताओं के अधिकारों के रक्षार्थ प्रावधान किए गए हैं। इस अधिनियम के अंतर्गत सार्वजनिक निवेश की रक्षा हेतु भी प्रावधान किए गए हैं।

बेहद महत्वपूर्ण रूप से यह अधिनियम कृषकों को अधिकार प्रदान करके किसानों के अधिकारों की रक्षा करता है जबकि पौध उत्पादकों के अधिकारों के संरक्षण के लिए एक प्रभावी तंत्र प्रदान करता है। यह अधिनियम अनुसंधानकर्ताओं के अधिकारों की भी रक्षा करता है। यह व्यापक लोक हितों की रक्षा के प्रावधान भी करता है। किसानों के अधिकारों में उसके विभिन्न कृषि उत्पादों के संरक्षण, प्रयोग, बाँटने या विक्रय करने जैसे परम्परागत अधिकार भी शामिल हैं। इस अधिनियम के अंतर्गत नवम्बर, 2005 में पौध किस्में एवं कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण गठित किया गया।

मृदा स्वास्थ्य एवं उर्वरक

मृदा एक जीवित माध्यम है जो पादपों की संवृद्धि के लिए एक प्राकृतिक पोषक स्रोत के रूप में सदा प्रदान करती है। खनिज, जैविक तत्व, जल एवं वायु मृदा के तत्व हैं जो मिलकर पादप वृद्धि हेतु तत्व स्थापित करते हैं। मृदा का उसके प्रयोग के अनुसार वर्गीकरण एवं अध्ययन किया गया। प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन और मृदा परीक्षण के लिए मृदा सर्वेक्षणों को उर्वरक प्रयोग एवं प्रबंधन के हिस्से के तौर पर आयोजित किया गया।

भारत में, गहन कृषि के परिणामस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन में प्रभावी वृद्धि हुई जिससे बीजों की बेहतर किस्मों, उर्वरकों के अनुप्रयोग एवं सुनिश्चित सिंचाई ने बल प्रदान किया।

स्थान विशिष्ट पोषक प्रबंधन में उर्वरक प्रयोग दक्षता में वृद्धि के लिए उर्वरकों के मृदा परीक्षण आधारित अनुप्रयोग आवश्यक है। फर्टीगेशन जिसमें ड्रिप या छिड़काव द्वारा पानी में उर्वरक घोलकर खेतों में डाला जाता है ताकि पानी एवं उर्वरक का अधिकतम इस्तेमाल संभव हो।

जनवरी 2015 में सरकार ने निर्णय लिया था कि 100 प्रतिशत यूरिया उत्पादन नीम लेपित हो और घरेलू यूरिया उत्पादन का न्यूनतम 75 प्रतिशत उत्पाद को नीम लेपित होना आवश्यक बनाया गया, ताकि किसान इससे लाभान्वित हो सकें। नीम लेपित यूरिया की कम मात्रा की आवश्यकता होती है और यह उच्च फसल पैदावार प्रदान करता है। भूमिगत जल यूरिया के रिसने के कारण प्रदूषित हो जाता है और नीम लेपित यूरिया से प्रक्रिया धीमी हो जाती है क्योंकि नीम लेपित यूरिया में नाइट्रोजन पौधों को बेहद धीमे रूप से विमुक्त होती है। नीम लेपित यूरिया औद्योगिक प्रयोग के लिए सही नहीं है, इसलिएं उद्योगों को इसके अवैध आपूर्ति की संभावनाएं भी कम होंगी। नीम लेपित यूरिया के 50 किग्रा के बैग को मात्र 14 रुपए की अतिरिक्त लागत से किसान प्राप्त कर सकते हैं।

समन्वित पोषक प्रबंधन प्रभाग आवधिक मांग मूल्यांकन और सामयिक आपूर्ति, समन्वित पोषक प्रबंधन के प्रोत्साहन, जो कि मृदा आधारित, तर्कसंगत एवं जैविक खाद एवं जैव-उर्वरकों के सम्मिश्रण सहित रसायनिक उर्वरकों का संतुलित प्रयोग है, जैविक खेती के प्रोत्साहन और उर्वरकों की गुणवत्ता नियंत्रण के माध्यम से किसानों तक गुणवत्तापरक उर्वरकों की पर्याप्त उपलब्धता को सुनिश्चित कर पर बल देती है।

उर्वरकों का संतुलित उपयोग: सरकार द्वारा उर्वरकों के संतुलित और एकीकृत उपयोग के लिए केंद्र द्वारा प्रायोजित एक योजना लागू की गई है, जिसमें कार्बनिक खादों और जैव-उर्वरकों के साथ संतुलन कायम करते हुए मिट्टी परीक्षण के आधार पर उचित मात्रा में उर्वरकों के प्रयोग को लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया गया था। इस योजना के अंतर्गत नई मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं की स्थापना एवं प्रयोगशालाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए सहायता भी प्रदान की गई ताकि फसलों से संतुलित इस्तेमाल और शहरी कूड़े-कचरे से उपयोगी कार्बनिक खाद तैयार करने की अवधारणा का प्रदर्शन किया जा सके और इस बारे में किसानों को जागरूक किया जा सके। इस योजना को अक्टूबर 2000 से बृहद् प्रबंधन योजना के रूप में कर दिया गया। राज्य सरकारों द्वारा सभी गतिविधियां अपनी वार्षिक कार्य योजना के माध्यम से संचालित की जाती हैं।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

व्यापक नवीन यूरिया नीति 2015

केंद्र सरकार द्वारा आगामी चार वित्तीय वर्षों के लिए व्यापक नवीनतम यूरिया नीति 2015 को 13 मई, 2015 को अनुमति दी गई। नीति में यूरिया उत्पादन को स्वदेशी रूप से अधिकतम करने के बहुविध उद्देश्य रखे गए हैं और सरकार पर सब्सिडी का बोझ कम करने के लिए यूरिया यूनिट में ऊर्जा दक्षता को प्रोत्साहित करता है। ऊर्जा में बचत कार्बन फुटप्रिंट में कमी करेगी और इस प्रकार अधिक पर्यावरण हितैषी होगी। यह 30 यूरिया उत्पादन यूनिट द्वारा घरेलू यूरिया क्षेत्र को सुदृढ़ करेगा। अधिकाधिक ऊर्जा दक्ष बनकर, सब्सिडी बोझ को प्रासंगिक बनाएगा और उसी समय अपने उत्पादन में अधिकतम वृद्धि करके यूरिया इकाइयों को प्रेरित करेगी। यूरिया नीति राजकोष पर न्यूनतम वित्तीय बोझ डाले उचित अधिकतम खुदरा मूल्य (एमआरपी) पर किसानों को यूरिया की सामायिक आपूर्ति सुनिश्चित करेगी। यह यूरिया क्षेत्र में आयात पर निर्भरता में भी कमी करेगी।

यूरिया यूनिट विश्व में उपलब्ध सर्वोत्तम तकनीक को अपनाएगी और वैश्विक रूप से अधिक प्रतिस्पर्द्धात्मक बनेगी। नीति के परिणामस्वरूप आगामी चार वर्षों में संशोधित ऊर्जा उपभोग मापदंडों और आयात प्रतिस्थापन पर क्रमशः लगभग 2618 करोड़ की प्रत्यक्ष सब्सिडी बचत और 2211 करोड़ की अप्रत्यक्ष बचत (कुल बचत 4829 करोड़) होगी। यह आशा की गई कि इससे वार्षिक तौर पर लगभग 20 लाख/एमटी का अतिरिक्त उत्पादन होगा। नई यूरिया नीति से किसान, यूरिया उद्योग और सरकार लाभान्वित होगी। इससे पूर्व भारत सरकार ने गैस पूलिंग नीति अपनाई जिसके अंतर्गत सभी यूरिया इकाईयां एकसमान कीमतों पर गैस प्राप्त करेंगी।

सरकार द्वारा प्रतिमाह यूरिया सप्लायरों को यूरिया के मूवमेंट प्लान दिए जायेंगे, ताकि देश के सभी हिस्सों में यूरिया की सामयिक और पर्याप्त आपूर्ति की जा सके।

इन सब कदमों को उठाने से, भारत की यूरिया के आयात पर निर्भरता अत्यधिक कम होगी। भारत 310 लाख मीट्रिक टन की कुल यूरिया मांग का लगभग 80 लाख मीट्रिक टन यूरिया आयात करता है।

फास्फेटिक और पोटेसिक (पी एंड के) उर्वरकों के वितरण को कुछ कंपनियों के एकाधिकार को कम करके, पूरे देश में सुनिश्चित किया गया है।

सप्लायरों को तभी सब्सिडी का भुगतान किया जाएगा, जब उर्वरक जिलों में पहुंच जाएगा और खुदरा विक्रेताओं द्वारा उर्वरकों की प्राप्ति की पावती के पश्चात् ही सब्सिडी का अंतिम भुगतान किया जाएगा। गुणवत्ता प्रमाण-पत्र सम्बद्ध राज्य सरकार द्वारा उर्वरक की प्राप्ति के छह माह के भीतर दिया जाएगा। यदि गुणवत्ता में कमी पाई जाती है तो, उर्वरक सप्लायर को सब्सिडी का भुगतान नहीं किया जाएगा।

उर्वरक गुणवत्ता नियंत्रण तंत्र पोर्टल (एफक्यूसीएस): एफक्यूसीएस नमूना एकत्रण, परीक्षण और विश्लेषण रिपोर्ट बनाने और उनके संसाधन के लिए एनआईसी द्वारा विकसित एक वेब आधारित और कनफिगरेबल कार्यप्रवाह एप्लीकेशन है।

केंद्रीय उर्वरक गुणवत्ता नियंत्रण एवं प्रशिक्षण संस्थान (सीएफक्यूसी एंड टीआई) और क्षेत्रीय उर्वरक नियंत्रण प्रयोगशालाएं (आरएफसीएल) के उर्वरक निरीक्षक पत्तन पर आयातित उर्वरकों का उर्वरक (नियंत्रण) आदेश (एफसीओ) में उल्लिखित सैम्पलिंग प्रक्रिया के अनुरूप सैम्पल निकालते हैं, सैम्पल के साथ एक कोड संख्या जोड़ते हैं और फार्म J पर आयातक से पावती प्राप्त करते हैं। सैम्पल को फॉर्म K के साथ केंद्रीय कोडिंग कार्यालय (सीएफक्यूसी एंड आईटी) भेज दिया जाता है। तब केंद्रीय कोडिंग अधिकारी सैम्पल के साथ एक नया कोड लगाता है और विश्लेषण के लिए इसे प्रयोगशाला भेज देता है। यह सैम्पल की सुरक्षा एवं गोपनीयता सुनिश्चित करता है। सैम्पल को अनुभवी विश्लेषक द्वारा विश्लेषित किया जाता है और सम्बद्ध लैबोरेट्री इंचार्ज को रिपोर्ट सौंपता है। लैबोरेट्री से प्राप्त विश्लेषण रिपोर्ट पर, केंद्रीय कोडिंग कार्यालय वास्तविक कोड संख्या के संदर्भ में इसे डिकोड करता है और फॉर्म में विश्लेषण रिपोर्ट तैयार करता है। तत्पश्चात् सभी सम्बद्ध अभिकरणों को विश्लेषण रिपोर्ट भेज दी जाती है।

एफक्यूसीएस एप्लीकेशन उपर्युक्त सूचीबद्ध अधिकतर मानवीय गतिविधियों का संचालन का नेतृत्व करेगा और सैम्पल की स्थिति को ऑनलाइन जानने में मदद करेगा। सूक्ष्म निरीक्षकों को फॉर्म J में सैम्पल का ब्यौरा डालने के लिए इस एप्लीकेशन को मोबाइल पर उपलब्ध कराया जाएगा, जब वे पत्तन (पोर्ट) पर होते हैं। प्रथम चरण में, यह व्यवस्था सीएफक्यू एंड टीआई और इसकी तीन आरएल में क्रियान्वित की जाएगी। तत्पश्चात् इसे सभी राज्य गुणवत्ता नियंत्रण प्रयोगशालाओं तक विस्तारित किया जाएगा।

उर्वरक मृदा की कृषि उत्पादकता को बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किसानों को गुणवत्तापरक उर्वरकों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए 1957 में इसे अपरिहार्य वस्तु घोषित किया गया। इस दिशा में, देश में उर्वरकों की गुणवत्ता, व्यापार एवं वितरण को विनियमित करने के लिए अनिवार्य वस्तु अधिनियम (इसीए), 1955 की धारा 3 के अंतर्गत मार्च 1957 में उर्वरक (नियंत्रण) आदेश (एफसीओ) का गठन किया गया। उसके बाद एफसीओ का 1985 में संशोधन एवं पुनर्गठन किया गया।

वर्तमान में, देश में 78 अधिसूचित उर्वरक गुणवत्ता नियंत्रण लैबोरेट्री हैं।

जैव उर्वरक: जैव उर्वरक से तात्पर्य ऐसे सजीव जीव/जीवाणु से है, जो पौधों के उपयोग के लिए पोषक उपलब्ध कराते हैं। जैव उर्वरक एक वायुमंडलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण तथा मृदा में स्थित फॉस्फोरस को अधिक घुलनशील बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त जैव उर्वरक हार्मोंस और अम्लों का निर्माण कर पौधों को पोषण प्रदान करते हैं तथा मृदा की उत्पादकता बढ़ाते हैं। जैव उर्वरक नवीकरणीय संसाधन की श्रेणी में आते हैं तथा इनका पर्यावरण पर भी कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

जैव उर्वरकों की 'सतत् कृषि पद्धति', समेकित कीट पादप प्रबंधन तथा समेकित पादप पोषक प्रबंधन में प्रमुख भूमिका है। जैव उर्वरक पराक्रम्य शक्ति स्रोत के साथ-साथ पर्यावरण मित्र भी है। इनके उपयोग से किसी प्रकार का प्रदूषण नहीं फैलता। अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीव विशेषकर जीवाणु पौधों की जड़ों एवं उनके आस-पास के क्षेत्र में निवास कर सहजीवी प्रकार की सम्बद्धता स्थापित कर लेते हैं। ये पौधों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुंचाते हैं।

यद्यपि जैव उर्वरकों के प्रयोग से विभिन्न फसलों में अच्छी उपज व गुणवत्ता दृष्टिगोचर होती है। किन्तु इसके बावजूद भी जैव उर्वरक वर्तमान परिवेश में आम किसान तक नहीं पहुंच पाया है। जैव उर्वरक प्रौद्योगिकी के अंतर्गत, वातावरणीय समस्याएं, उत्पादन स्तर पर समस्याएं, विपणन स्तर पर समस्याएं, संसाधन स्तर पर समस्याएं, आदि आती हैं। निःसंदेह जैव उर्वरकों के उत्पादन के लिए लम्बे शोध एवं आधुनिक उपकरणों की आवश्यकता होती है जिनके अभाव में अच्छे जैव उर्वरकों का निर्माण नहीं किया जा सकता।

रासायनिक उर्वरकों की बढ़ती कीमत एवं अधिक समय तक खेतों में इनके प्रयोग से भूमि की उर्वरता लगातार क्षीण होते जाने की संभावनाओं के मद्देनजर इनके वैकल्पिक स्रोतों की खोज आवश्यक है। भूमि की उर्वरता को अधिक समय तक बनाए रखने के उद्देश्य से अब कृषि वैज्ञानिकों द्वारा रासायनिक उर्वरकों, कार्बनिक उर्वरकों एवं जैव उर्वरकों को एक साथ प्रयोग किए जाने की सलाह दी जा रही है। अनुसंधानों के फलस्वरूप यह सिद्ध किया गया है कि जैव उर्वरक, रासायनिक उर्वरकों के मुकाबले अधिक उपयुक्त, अधिक कारगर एवं सस्ते हैं तथा ये पुनः काम में लाए जा सकते हैं। राइजोबियम की दलहनों एवं अन्य लेग्यूमिनस पौधों (जैसे—सोयाबीन, मूंगफली) एवं चारे की फसलों के लिए काफी कारगर पाया गया है। इसी प्रकार, धान की फसलों में भी ब्लू ग्रीन एल्गी एवं कुछ विशेष प्रकार के जीवाणुओं की सहायता से नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीनों द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण संभव हो सका। जैव उर्वरकों की सफलता के मद्देनजर इनके विकास एवं उपयोग की राष्ट्रीय परियोजना लागू की गई, जिसका उद्देश्य इन उर्वरकों के उत्पादन, वितरण एवं उपभोग को बढ़ावा देना है। इसके अंतर्गत जैव उर्वरकों के उपयोग के संबंध में प्रशिक्षण के लिए प्रदर्शन कार्यक्रम आयोजित किए जाने का प्रावधान है। इसके अंतर्गत इस उर्वरक की गुणवत्ता परीक्षण की भी व्यवस्था की गई है। इस परियोजना के तहत राष्ट्रीय जैव उर्वरक केंद्र, गाजियाबाद बनाया गया। इसके अतिरिक्त बंगलुरू, भुवनेश्वर, हिसार, इम्फाल, जबलपुर तथा नागपुर में छह क्षेत्रीय केंद्र स्थापित किए गए हैं। इन केंद्रों में जैव उत्पादों के अतिरिक्त जैव उर्वरकों के कल्चर एकत्र करने की भी सुविधा उपलब्ध है। इनमें बड़ी संख्या में अच्छे किस्म के सूक्ष्म जीवों की प्रजातियां संग्रहित हैं।

नील हरित शैवाल ने दक्षिण भारतीय चावल उत्पादक क्षेत्रों, विशेष रूप से तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, और कर्नाटक में लोकप्रियता हासिल की है। नील हरित शैवाल में प्रकाश संश्लेषण और जैविकीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण की दो योग्यताएं होती हैं। चावल के पौधे द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण को शैवाल द्वारा कम किया जाता है। यह, हालांकि, उत्तर-पूर्वी और मध्य भारत में विपरीत मौसम दशाओं के कारण लोकप्रिय नहीं हुआ।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

जैव उर्वरक का विभिन्न फसलों की नाइट्रोजन आवश्यकता में वृद्धि करने में सीमित भूमिका है। ये रासायनिक उर्वरकों को प्रतिस्थापित नहीं कर सकते।

जैविक कृषि नीति 2005 जैविक कृषि के हित में प्राकृतिक संसाधनों के तकनीकी रूप से प्रदत्त, मितव्ययी, पर्यावरण-हितैषी बेहतरीन नीति है।

जैविक कृषि

भारत में जैविक कृषि पद्धति नवीन नहीं है, अपितु प्राचीन समय से खेती करने और फसल बढ़ाने की ऐसी क्रियाएं की जाती रही हैं जिससे मृदा स्वास्थ्य बना रहे। ऐसा लाभकारी सूक्ष्मजीवियों (जैव उर्वरकों) के साथ जैविक अपशिष्ट (फसल, जंतुओं एवं जलीय स्रोतों से) एवं अन्य जैविकीय पदार्थों का प्रयोग करके किया गया। यह पर्यावरण-हितैषी एवं निम्न प्रदूषणकारी कृषि पद्धति है। संयुक्त राज्य कृषि विभाग (यूएसडीए) के जैविक कृषि पर अध्ययन दल के अनुसार, "जैविक कृषि एक पद्धति है जो सिंथेटिक आगतों (जैसे उर्वरक, कीटनाशक, हॉरमोन्स इत्यादि) का प्रयोग नहीं करती और फसल चक्रण, फसल अवशेष, जंतु खाद, खेती से इतर जैविक अपशिष्ट, प्रोथक गतिशीलता एवं पादप संरक्षण की जैविकीय पद्धति का अधिकतम विस्तार करती है"। खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) के अनुसार, "जैविक खेती एक अद्वितीय उत्पादन प्रबंधन व्यवस्था है जो जैवविविधता, जैविकीय चक्रों एवं मृदा जैविकीय कार्य सहित कृषि-पारितंत्र स्वास्थ्य को प्रोत्साहित एवं विस्तारित करती है, और यह सभी कृत्रिम आगतों को छोड़कर कृषीय अवशिष्ट, जैविकीय एवं यांत्रिक पद्धतियों का प्रयोग करके की जाती है"।

विभिन्न संस्थानों के शोधों में फलों, सब्जियों आदि में डीडीटी जैसे कीटनाशकों की कुछ मात्रा पाई गई है। कई अन्य देशों में तो इस रसायन पर पूर्ण प्रतिबंध ही लगा दिया गया है। विशेषज्ञों का यह मानना रहा है कि भोजन के साथ यदि ये रसायन लगातार हमारे शरीर में पहुंचते रहें, तो कैंसर एवं दृष्टिदोष जैसे रोग होने की पूरी संभावना होती है। फलस्वरूप, बिना रसायनों के प्रयोग से पैदा किए जाने वाले खाद्य पदार्थों की मांग देशभर में निरंतर बढ़ती जा रही है। इसी मांग को देखते हुए देश के कुछ उद्यमी जापान, जर्मनी आदि देशों से जैव-कृषि पद्धति की जानकारी प्राप्त कर इस दिशा में आगे आने लगे हैं।

कृषि में पहले से ही प्रयुक्त जैविक तकनीक के कुछ उदाहरण के रूप में कॉटन (बोलवर्म) तथा कॉर्न (कॉर्न बोरर) में कीटों की सुरक्षा एवं नए खर-पतवार नियंत्रक शामिल हैं। इन तकनीकों के आर्थिक लाभ कृषकों के लिए पहले से ही प्रमाणित हो चुके हैं। जैव कृषि में तकनीकों के प्रयोग के इतिहास एवं अनुभव अत्यंत व्यापक है। आनुवंशिक रूप से प्रथम संवर्द्धित पौधे 1982 में उगाए गए हैं। प्रथम फील्ड टेस्ट 1986 में आयोजित किया गया था। इसके अतिरिक्त, जैव तकनीक द्वारा कम से कम 32 एंजाइम उत्पन्न किए गए हैं, जो मान्य हैं।

भारत में अभी जैव कृषि का बेहद सीमित दायरा बना हुआ है। इस संबंध में अभी भी देश की जनता में जागरूकता नहीं आ पायी है। देश के पश्चिमी एवं दक्षिणी हिस्सों में यह जागरूकता अवश्य आयी है। लेकिन जैविक कृषि के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा इसकी अधिक लागत का होना ही है। रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग के बिना उगायी गई फसल की लागत रसायनों के उपयोग से उपजाई गयी फसल की अपेक्षा 20-25 प्रतिशत अधिक होती है। साथ ही, रसायनों के छिड़काव नहीं होने के कारण ऐसे उत्पाद शीघ्र ही सड़ने लगते हैं। चूंकि बाजार में ऐसे उत्पादों की मांग बहुत अधिक नहीं है। अतः वृहद पैमाने पर इसका उत्पादन कर इसकी लागत को कम करना भी संभव नहीं है। अतः यह व्यवसाय तभी बढ़ेगा, जब इसकी मांग में अपेक्षित वृद्धि हो।

भारत में जैविक कृषि पर ध्यान राष्ट्रीय जैविक कृषि कार्यक्रम (एनपीओएफ) 2004-05 के प्रारंभ के साथ बढ़ा। जैविक कृषि का प्रोत्साहन राष्ट्रीय बागवानी मिशन (एनएचएम) एवं राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (आरकेवीवाई) के अंतर्गत भी किया गया। एनपीओएफ का क्रियान्वयन राष्ट्रीय जैविक कृषि केंद्र, गाजियाबाद और इसके क्षेत्रीय केंद्रों द्वारा किया जाता है। एनपीओएफ के उद्देश्य हैं–

- मानव संसाधन विकास, तकनीकी हस्तांतरण, गुणवत्तापरक जैविक एवं जैविकीय आगतों का उत्पादन एवं संवर्द्धन सहित सभी पणधारियों की तकनीकी क्षमता निर्माण के माध्यम से देश में जैविक खेती का संवर्द्धन करना।
- प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से जागरूकता सृजन एवं प्रचार करना।
- उर्वरक नियंत्रण आदेश की जरूरतों के मुताबिक जैव-उर्वरकों एवं जैविक उर्वरकों के विश्लेषण हेतु गुणवत्ता नियंत्रण प्रयोगशाला के तौर पर नोडल अभिकरण का कार्य करना।
- अनुसंधान एवं प्रौद्योगिकी में प्रगति को ध्यान में रखते हुए मानकों की पुनरावृत्ति एवं प्रोटोकॉल का परीक्षण करना और गुणवत्ता नियंत्रण के तहत् शेष जैविक आगतों को लाना।
- शोध एवं बाजार विकास के समर्थन द्वारा जैविक आगत संसाधन प्रबंधन एवं तकनीकी विकास करना।
- उत्पादन इकाई के लिए आपूर्ति हेतु जैव उर्वरकों, जैवनियंत्रक, अपशिष्ट निपटान जीवों के राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय कल्चर संग्रहण बैंकों का प्रबंधन करना।
- सहभागितामूलक गारंटी तंत्र के नाम से ज्ञात कम लागत प्रमाणीकरण तंत्र द्वारा जैविक कृषि का प्रोत्साहन करना।

सरकार राष्ट्रीय सतत् कृषि मिशन (एनएमएसए), परम्परागत कृषि विकास योजना (पीकेवीवाई), राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (आरकेवीवाई), एकीकृत बागवानी विकास कार्यक्रम (एमआईडीएच), राष्ट्रीय तिलहन एवं ऑयल पाम मिशन (एनएमओओपी), आईसीएआर का जैविक कृषि पर नेटवर्क प्रोजेक्ट के अंतर्गत विभिन्न योजनाओं/कार्यक्रमों के माध्यम से जैविक कृषि को बढ़ावा दे रही है।

इसके अतिरिक्त, भारत सरकार परम्परागत कृषि विकास योजना (पीकेवीवाई) नामक संगुच्छ आधारित कार्यक्रम द्वारा किसानों को जैविक कृषि करने के लिए प्रोत्साहित कर रही है। जिसके परिणामस्वरूप मृदा स्वास्थ्य भी बेहतर होगा। यह किसानों को खेती के पर्यावरण-हितैषी अवधारणा अपनाने को प्रोत्साहित करेगी और पैदावार सुधारने हेतु उर्वरकों और कृषि रसायनों पर उनकी निर्भरता को कम करेगी।

पीकेवीवाई के उद्देश्यः
- किसानों के समूहों के परम्परागत कृषि विकास योजना के अंतर्गत जैविक कृषि करने के लिए प्रोत्साहित या अभिप्रेरित किया जाएगा। 50 एकड़ जमीन रखने वाले 50 या अधिक किसान एक संगुच्छ बनाकर इस योजना के अंतर्गत जैविक कृषि करेंगे।
- इस तरीके से तीन वर्षों के भीतर 10,000 संगुच्छ बनाए जाएंगे जो जैविक कृषि के अंतर्गत 5 लाख एकड़ क्षेत्र को लाएंगे। प्रमाणीकरण पर व्यय की किसान की जिम्मेदारी नहीं होगी।
- फसल पैदा करने हेतु बीज और उत्पाद को बाजार तक पहुंचाने के लिए प्रत्येक किसान को प्रति एकड़ 20,000 रुपए तीन वर्षों में प्रदान किए जाएंगे।
- परम्परागत संसाधनों के प्रयोग द्वारा जैविक कृषि को प्रोत्साहित किया जाएगा और जैविक उत्पादों को बाजार के साथ जोड़ा जाएगा।
- यह किसानों की सहभागिता द्वारा जैविक उत्पाद के घरेलू उत्पादन और प्रमाणन में वृद्धि करेगा।

भारत में जैविक खेती को देश के विभिन्न हिस्सों में पोषकों के विविध प्राकृतिक जैविक रूप में उपस्थित रहने के कारण परम्परागत कृषि संव्यवहारों में प्रयोग किय जाता है। भारतीय जलवायविक विविधता और निम्न आगत लागत भी पूरे वर्ष बड़ी संख्या में फसलों की वृद्धि में मदद करती है।

जैविक कृषि में मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और ओडिशा बेहतरीन कार्य कर रहे फसलों में, कपास एकमात्र बड़ी फसल है जो कुछ क्षेत्र के 40 प्रतिशत पर की ज है जिसके बाद चावल, दाल, तिलहन और मसालों का स्थान आता है। भारत विश्व में सबसे बड़ा जैविक कपास उत्पादक समझा जाता है।

जैविक कृषि नीति 2005: भारत में कृषि क्षेत्र ने विगत् 65 वर्षों में प्रगति की है। हरित क्रांति ने भारत को खाद्यान्न की कमी वाले देश से संपन्न देश में तब्दील कर दिया। लेकिन इस समयावधि के दौरान रसा अतार्किक एवं अंधाधुंध उपयोग ने दीर्घकाल में कृषि की सततता पर प्रश्न कर दिया जिससे सतत् उत्पादन पर ध्यान देने का आह्वान किया गया जो पारितंत्रीय और आर्थिक मामलों को मिलकर देखेगा।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

मृदा स्वास्थ्य और मानव स्वास्थ्य पर रसायनों के अत्यधिक प्रयोग के प्रतिकूल प्रभाव को मानते हुए, एक समन्वित प्रबंधन तंत्र की आवश्यकता महसूस हुई। क्योंकि जैविक कृषि मानव स्वास्थ्य, मृदा और पर्यावरण स्वास्थ्य का ध्यान रखती है और पर्यावरण हितैषी है, सततता का एक विकल्प प्रतीत हुई। इसलिए जैविक कृषि ने भारत सरकार का ध्यान आकर्षित किया।

जैविक कृषि नीति के उद्देश्य: जैविक कृषि नीति के निम्न उद्देश्य हैं–

- सूक्ष्म जीवों, मृदा वनस्पति, पादपों एवं जन्तुओं को शामिल करते हुए कृषि के भीतर जैविक चक्र का विस्तार एवं प्रोत्साहन द्वारा मृदा उर्वरता बनाए रखना।
- जैविक कृषि हेतु उचित फसल एवं क्षेत्रों की पहचान करना।
- संव्यवहारों के जैविक पैकेज का विकास करना।
- जैविक खेती के लिए बीज प्राप्त करने के लिए जैविक खेतों का प्रतिमान बनाना।
- गुणवत्तापरक जैविक आगत के उत्पादन एवं आपूर्ति का विश्वास दिलाना।
- कीट एवं रोग नियंत्रण हेतु जैविकीय तंत्र को अपनाना।
- खरपतवार प्रबंधन हेतु जैविकीय एवं यांत्रिक पद्धतियों को अपनाना।
- जैविक कृषि से सम्बद्ध परम्परागत एवं स्वदेशी ज्ञान का उपयोग करना।
- जैविक कृषि की दिशा में किसानों के बीच जागरूकता फैलाना।
- जैविक उत्पाद के लिए घरेलू बाजार का विकास करना।
- गुणवत्तापरक उत्पाद के उत्पादन के माध्यम से किसानों की आय बढ़ाना।
- ग्रामीण रोजगार अवसरों का सृजन करना।
- विशेष रूप से घरेलू बाजार के लिए, प्रमाणीकरण व्यवस्था का सरलीकरण करना और पर्याप्त प्रमाणीकरण अभिकरणों को मान्यता प्रदान करना।
- समूह प्रमाणन को प्रोत्साहित करना।
- पारितंत्रीय संतुलन और आर्थिक स्थिरता के आधार के रूप में पादप एवं जंतु प्रजातियों की विविधता बनाए रखना।
- पशुओं की स्थिति में सुधार करना जो उनके अंतर्भूत व्यवहार के सभी पहलुओं के निष्पादन को संभव करेगा।
- विभिन्न जैविक आगत एवं जैविक उत्पाद के लिए नियामक तंत्र का विकास करना।

सहभागिता गारंटी व्यवस्था–इंडिया पोर्टल (पीजीएस-इंडिया): सहभागिता गारंटी व्यवस्था जैविक उत्पादों के प्रमाणन की एक प्रक्रिया है जो यह सुनिश्चित करता है कि जैविक उत्पादों और उनकी गुणवत्ता हेतु निर्धारित मानकों के अनुरूप कृषि उत्पादन प्रक्रिया को बनाए रखना सुनिश्चित करता है। यह चिन्हित लोगों या कथन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। घरेलू जैविक बाजार की वृद्धि के लिए और छोटे एवं सीमांत किसानों तक जैविक प्रमाणन की सरल पहुंच सुनिश्चित करने के लिए सहभागिता गारंटी व्यवस्था–इंडिया पोर्टल नामक एक विकेन्द्रित जैविक खेती प्रमाणीकरण तंत्र को भारत सरकार के कृषि मंत्रालय (कृषि एवं सहयोग विभाग) द्वारा 15 जुलाई, 2015 को लागू किया गया। यह एक लागत-प्रभावी, कृषि हितैषी और सरल योजना है।

यह एक गुणवत्ता का भरोसा दिलाने वाला कदम है जो प्रमाणन तंत्र में उत्पादकों/कृषकों/व्यापारियों और उपभोक्ताओं की सक्रिय सहभागिता के साथ एक स्थानीय रूप से प्रासंगिक योजना है। इस समूह प्रमाणन तंत्र को परम्परागत कृषि विकास योजना (पीकेवीवाई) का सहयोग प्राप्त है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड (एसएचसी): मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना का अनुमोदन 12वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान क्रियान्वित करने के लिए 2014-15 में किया गया। यह योजना सभी राज्यों में चलाई जा रही है। एसएचसी में केंद्र-राज्य के बीच वित्त पोषण 75:25 के अनुपात में रखा गया है। योजना का क्रियान्वयन राज्य सरकारों के माध्यम से किया गया है। सभी राज्य इसके लिए अर्ह हैं। किसानों के प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन में पंचायतों को संलग्न किया गया है। यह योजना देश में मृदा परीक्षण शालाओं, मृदा स्वास्थ्य कार्डों को जारी करने और पोषक प्रबंधन संव्यवहारों के विकास को बढ़ावा देगी।

कार्ड जो कि एक रिपोर्ट होती है तथा जिस पर महत्वपूर्ण जानकारियां, जैसे–मिट्टी में स्थूल पोषक तत्व, माध्यमिक अथवा द्वितीयक पोषक तत्व, सूक्ष्म पोषक तत्व और वांछित मापक, दी जाएगी। कार्ड के साथ-साथ एक परामर्श नोट होगा जिसमें वे सुधारात्मक उपाय दिए जाएंगे जिसको अपनाकर कोई किसान अपनी मिट्टी के स्वास्थ्य को सुधारकर बेहतर फसल प्राप्त कर सकता है।

इस प्रणाली की परिकल्पना मिट्टी के स्वास्थ्य पर एक राष्ट्रीय डाटाबेस का निर्माण करना है जिसको भविष्य में अनुसंधान एवं योजना में उपयोग किया जा सके। नमूनों (Samples) को रबी व खरीफ की फसल की कटाई के बाद एकत्र किया जाता है जब खेत में कोई फसल खड़ी नहीं होती। नमूनों को राज्य प्रयोगशालाओं में भेजा जाता है अथवा मोबाइल प्रयोगशालाओं में परखा जाता है।

भारत में मौजूदा नाइट्रोजन-फॉस्फोरस-पोटाशियम (NPK) खपत अनुपात अधिमानित अनुपात 4:2:1 से भटका हुआ है। राज्यों में उर्वरक की खपत में काफी अस्थिरता दिखाई देती है। यद्यपि, उर्वरकों के असंतुलित प्रयोग के कारण देश के अधिकांश भागों में प्राथमिक पोषक तत्वों (अर्थात् NPK), द्वितीयक पोषक तत्वों (जैसे कि सल्फर), तथा सूक्ष्म-पोषक तत्वों (बोरोन, जिंक, कॉपर, आदि) का अभाव हो गया है। SHC यह सुनिश्चित करेगा कि किसान आवश्यकतों से अधिक उर्वरकों का प्रयोग करके अनावश्यक रूप से धन का व्यय न करें। रासायनिक उर्वरकों के मितव्ययता से प्रयोग करने से उत्पादन की लागत भी कम होगी। एकीकृत पोषक तत्व प्रणाली को बढ़ावा देने से रासायनिक उर्वरकों की खपत में कमी की अपेक्षा है तथा इससे सरकार के राजकोषीय दबाव में भी कमी होगी। फर्टिलाइजर सेक्टर पर देश की कुल सब्सिडी एवं बिजली खपत का महत्वपूर्ण भाग व्यय होता है। भारत विभिन्न प्रकार के उर्वरकों की बड़ी मात्रा का, मांग पूरी करने हेतु, आयात करता है। मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरक के प्रयोग से आयात बिल कम होगा और यह प्रति यूनिट अधिक पैदावार सुनिश्चित भी करेगा।

समयावधि में, SHC भूमि प्रबंधन द्वारा प्रभावित मृदा स्वास्थ्य में परिवर्तन को भी निर्धारित कर सकता है।

योजना के उद्देश्य: मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के उद्देश्य निम्नलिखित हैं– (i) देश के सभी किसानों को प्रत्येक तीन वर्ष पर मृदा स्वास्थ्य कार्ड जारी करना, ताकि उर्वरता संव्यवहारों में पोषक कमी या ह्रास को संबोधित करने का आधार प्रदान किया जा सके; (ii) क्षमता निर्माण, कृषि छात्रों की संलग्नता और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (आईसीएआर)/राज्य कृषि विश्वविद्यालयों (एसएयू) के साथ प्रभावी गठजोड़/संपर्क द्वारा मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं (एसटीएल) के कार्य को सुदृढ़ करना; (iii) सभी राज्यों में समान नमूने लेने के लिए मानकीकृत प्रक्रियाओं सहित मृदा उर्वरता से सम्बद्ध बाधाओं की पहचान करना और लक्षित जिलों में तालुका/खण्ड स्तरीय उर्वरक अनुशंसाएं तैयार और विश्लेषित करना; (iv) पोषकों के इस्तेमाल में दक्षता बढ़ाने के लिए जिलों में मृदा परीक्षण आधारित पोषक प्रबंधन का विकास और प्रोत्साहन करना; (v) पोषक प्रबंधन संव्यवहारों के संवर्द्धन हेतु जिले एवं राज्य स्तरीय कर्मचारीगणों और प्रगतिशील किसानों की क्षमताओं का निर्माण करना।

एसएचसी के घटक: इस योजना के निम्न पांच घटक हैं–1. *मृदा स्वास्थ्य कार्ड:* पादप पोषकों के अनुप्रयोग हेतु अनुशंसाओं के साथ मृदा उर्वरता पर सूचना प्रदान करने के लिए सभी किसानों को मृदा स्वास्थ्य कार्ड का आवधिक वितरण करना; 2. *मृदा विश्लेषण हेतु प्रशिक्षण:* मृदा रासायनज्ञों, छात्रों/जेआरएफ को मृदा विश्लेषण हेतु एक-सप्ताह का प्रशिक्षण देना; 3. *पोषक अनुशंसाओं के पैकेज हेतु वित्तीय मदद:* किसानों को पोषक कमियों को दूर करने के सही उपायों को अपनाने हेतु वित्तीय मदद प्रदान करना और उनके फसलन पद्धति के लिए संतुलित एवं समन्वित पोषक प्रबंधन को लोकप्रिय बनाना; 4. *क्षमता निर्माण और नियमित निगरानी और मूल्यांकन:* राज्य कृषि विश्वविद्यालयों/भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् संस्थानों के साथ तकनीकी और लाइन स्टाफ के लिए राज्यों द्वारा ओरिएन्टेशन कार्यक्रम आयोजित करना; 5. *मिशन प्रबंधन:* मिशन प्रबंधन के लिए, प्रोजेक्ट प्रबंधन टीम (पीएमटी) का गठन करना।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड पोर्टल: मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के अंतर्गत उर्वरक अनुशंसाओं के साथ मृदा नमूनों के पंजीकरण, मृदा नमूनों के परीक्षण परिणामों की रिकॉर्डिंग और मृदा स्वास्थ्य कार्ड (एसएचसी) का सृजन करने के लिए मृदा स्वास्थ्य कार्ड पोर्टल विकसित किया गया। यह एक एकल, मितव्ययी, एकात्मक वेब आधारित

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

सॉफ्टवेयर है। यह एक कार्य आधारित एप्लीकेशन है जिसमें मुख्य मॉड्यूल हैं: (i) मृदा नमूना पंजीकरण, (ii) मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं द्वारा परीक्षण परिणाम एंट्री, (iii) मृदा परीक्षण फसल प्रत्युत्तर (एसटीसीआर) और सामान्य उर्वरक अनुशंसाओं पर आधारित उर्वरक अनुशंसाएं, (iv) उर्वरक अनुशंसाओं और सूक्ष्म पोषक सुझावों के साथ मृदा स्वास्थ्य कार्ड बनाना, और (v) निगरानी प्रगति हेतु एमआईएस मॉड्यूल।

यह स्थानों के लिए जनगणना कोड की तरह एकसमान कोड को अपनाने हेतु प्रोत्साहित करता है। इस पोर्टल में सैम्पल ट्रैकिंग विशेषता है और किसानों को एसएमएस तथा ई-मेल के माध्यम से सैम्पल पंजीकरण और मृदा स्वास्थ्य कार्ड बनाने के बारे में सूचना प्रदान करता है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड पोर्टल का उद्देश्य या तो भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (आईसीएआर) द्वारा विकसित मृदा परीक्षण फसल प्रत्युत्तर (एसटीसीआर) या राज्य सरकारों द्वारा प्रदत्त सामान्य उर्वरक अनुशंसाओं (जीएफआर) पर आधारित मृदा स्वास्थ्य कार्ड जारी करना है। परीक्षण परिणामों पर आधारित, इन अनुशंसाओं को पोर्टल द्वारा स्वतः गणना की जाएगी। पोर्टल द्वारा सूक्ष्म पोषकों संबंधी सुझाव भी दिए जाएंगे। पोर्टल भविष्य में अनुसंधान एवं नियोजन में मृदा स्वास्थ्य पर जानकारी के प्रयोग हेतु एकल राष्ट्रीय डाटाबेस तैयार करेगा।

कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिए उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। उर्वरक तीन प्रकार के होते हैं—नाइट्रोजन, फास्फेट व पोटाश। इनका उपयोग मिट्टी की प्रकृति के अनुसार किया जाता है। भारत में नाइट्रोजन, फॉस्फेट व पोटाश (N : P : K) का आदर्श अनुपात 4 : 2 : 1 है। आदर्श अनुपात में किसान उर्वरक उपयोग करे, इसे सुनिश्चित करने के लिए सरकार को जागरूकता अभियान चलाने के साथ-साथ उर्वरकों की कीमतें इस प्रकार निर्धारित करनी चाहिए कि वे आदर्श अनुपात को बढ़ावा दें।

मृदापरीक्षक मृदा परीक्षण किट: मृदापरीक्षक, कृषि सेवा प्रदायन के त्वरित, वहनीय, वैज्ञानिक एवं मितव्ययी प्रणाली की जरूरत को पूरा करने के लिए आईसीएआर एवं अन्य संस्थानों द्वारा किसानों के लिए विकसित की गई एक चालित लघु-प्रयोगशाला है। इस परियोजना को फरवरी 2015 में प्रारंभ किया गया।

मृदापरीक्षक कृषकों को मृदा परीक्षण सेवा प्रदान करने की एक डिजिटल चालित लघु प्रयोगशाला/मृदा परीक्षण किट है जिसमें मृदा नमूना उपकरण, जीपीएस, संतुलन, शेकर, हॉट प्लेट एवं एक स्मार्ट मृदा उपकरण, मृदा मापदंडों को निर्धारित करने एवं उर्वरक पोषक अनुशंसाओं को दिखाने के लिए यंत्र, होते हैं।

मृदापरीक्षक सभी महत्वपूर्ण मृदा मापदंडों—मृदा पीएच, ईसी, जैविक कार्बन, मौजूद नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, सल्फर एवं सूक्ष्मपोषकों—को निर्धारित करता है। यह एसएमएस के माध्यम से फसल एवं मृदा विशिष्ट उर्वरक की अनुशंसाएं भी सीधे किसानों के मोबाइल पर भेजता है। यह उच्च रूप से मृदा स्वास्थ्य कार्ड के अनुरूप है।

पौध संरक्षण

फसल-उत्पादन के लक्ष्य हासिल करने में पौध-संरक्षण की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। पौध संरक्षण के महत्वपूर्ण घटकों में समन्वित कीट प्रबंधन को प्रोत्साहन, फसल पैदावार को कीटों और बीमारियों के दुष्प्रभाव से बचाने के लिए सुरक्षित और गुणवत्तायुक्त कीटनाशकों की उपलब्धता सुनिश्चित करना, ज्यादा पैदावार देने वाली नई फसल प्रजातियों को तेजी से अपनाए जाने के लिए संगरोधन (क्वारन्टीन) उपायों को सुचारू बनाना शामिल है। इसके अंतर्गत बाहरी कीटों के प्रवेश की गुंजाइश समाप्त करना और पौध-संरक्षण कौशल में महिलाओं को अधिकारिता प्रदान करने सहित मानव संसाधन विकास पर भी ध्यान दिया जाता है।

भारत में कीट प्रबंधन के आधुनिकीकरण और सुदृढ़ीकरण के प्रति दृष्टिकोण घटक: (क) समन्वित कीट प्रबंधन को प्रोत्साहन।

(ख) टिड्डी-नियंत्रण और अनुसंधान।

(ग) पौध-संरक्षण का प्रशिक्षण।

(घ) कीटनाशक अधिनियम का कार्यान्वयन।

दसवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान इन चारों योजनाओं को मिलाकर एक योजना बना दी गई थी, जिसका नाम था—भारत में कीट प्रबंधन के आधुनिकीकरण और सुदृढ़ीकरण के प्रति दृष्टिकोण।

कृषि यंत्रीकरण

कृषि एवं खेती की प्रक्रिया में मशीनीकरण का अर्थ जमीन पर उन कार्यों के लिए मशीन के इस्तेमाल से है जो परम्परागत खेती में बैलों, घोड़ों और दूसरे भारवाही पशुओं या मनुष्यों के श्रम द्वारा संपन्न किए जाते हैं। मशीनीकरण आंशिक और पूर्ण दोनों प्रकार का हो सकता है। जब खेती में पुराने औजारों के साथ-साथ कुछ आधुनिक मशीनों का भी प्रयोग होने लगता है तो मशीनीकरण आंशिक होता है। इसके विपरीत जब पशु-श्रम को पूरी तरह हटाकर मशीनें इस्तेमाल की जाने लगती हैं तो मनुष्य के श्रम की आवश्यकता कम रह जाती है। उत्तरी अमेरिका के देशों और पश्चिमी यूरोप के देशों में श्रम का अभाव है और पूंजी की प्रचुरता है। यह स्थिति कृषि में मशीनीकरण के लिए उपयुक्त है। भारत जैसे विकासशील देशों में जहां पूंजी की कमी है और श्रम की प्रचुरता है, केवल आंशिक मशीनीकरण ही हो सका है। मशीनीकरण के परिणामस्वरूप उत्पादन एवं श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होती है, कृषि उत्पादन की लागत में कमी आती है, परम्परागत कृषि व्यावसायिक कृषि में परिवर्तित होती है जिससे आय में वृद्धि होती है तथा वास्तविक आर्थिक अधिशेष में वृद्धि होती है। भारत में पहली तीन योजनाओं के दौरान खेती में मशीनों का प्रयोग बेहद सीमित था। 1966 में नई कृषि युक्ति को अपनाने के बाद से मशीनीकरण की गति में तेजी में आई। पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश जैसे क्षेत्रों में जहां बड़े पैमाने पर नई कृषि युक्ति अपनाई गई, मशीनीकरण को काफी प्रोत्साहन मिला।

कृषि उपकरणों को संशोधित बनाने, किसानों को अपने ट्रैक्टर, पावर पिलर, हारवेस्टर और अन्य मशीनें खरीदने में समर्थ बनाने, कस्टम हायर सेवाओं की उपलब्धता, मानव संसाधन विकास की समर्थन सेवाएं, परीक्षण मूल्यांकन और अनुसंधान एवं विकास के जरिए पारंपरिक एवं अदक्ष उपकरणों को बदलने के लिए रणनीतियां और कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। कृषि मशीनों के निर्माण के लिए व्यापक उद्योग आधार भी विकसित किया गया है। संस्थानिक क्रेडिट के अलावा विस्तार एवं प्रदर्शन के जरिए तकनीकी रूप से उन्नत उपकरणों को भी प्रस्तुत किया गया है। संसाधन संरक्षण के लिए उपकरण भी किसानों द्वारा अपनाये जा रहे हैं। कृषि के सूक्ष्म प्रबंध, तिलहन, दलहन और मक्का के लिए प्रौद्योगिकी मिशन, बागवानी के लिए प्रौद्योगिकी मिशन, कपास के लिए प्रौद्योगिकी मिशन और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन जैसी केंद्र प्रायोजित विभिन्न योजनाओं के तहत् किसानों को निर्धारित कृषि उपकरण और मशीनें खरीदने के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है।

समष्टि कृषि प्रबंधन जैसी कई सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाओं के अंतर्गत किसानों को चिन्हित कृषिगत आगतें एवं यंत्र खरीदने के लिए वित्तीय मदद प्रदान की जाती है।

विस्तार गतिविधियां

जब तक प्रौद्योगिकी, अनुसंधान एवं नवोन्मेष किसानों तक नहीं पहुंचते, कृषि प्रगति नहीं कर सकती। विस्तार सेवाओं के सुधार में वर्तमान प्रयासों में निम्न शामिल हैं—

- कृषि प्रौद्योगिकी प्रबंधन एजेंसी (आत्मा) के रूप में विस्तार तंत्र को किसान उन्मुख एवं जवाबदेह बनाने के लिए नवोन्मेषी एवं विकेन्द्रीकृत संस्थागत प्रबंधन प्रदान करना;
- विस्तार प्रयासों में ऊर्जावान पद्धति मुहैया कराने के लिए विभिन्न रूपों में सार्वजनिक-निजी भागीदारी प्रोत्साहित करना;
- कृषि विस्तार के लिए जनसंचार सहायता में वृद्धि करना;
- किसानों को विशेषज्ञों की सलाह उपलब्ध कराने के लिए एक टोल फ्री नम्ब के माध्यम से पूरे देश में किसान कॉल सेंटरों का संचालन करना;
- कृषि-व्यवसाय विकास में कृषि स्नातकों द्वारा किसानों को शुल्क सहित सल एवं अन्य सहायता सेवाएं प्रदान करना तथा कृषि-क्लीनिक स्थापित करना;
- कृषि नीतियों एवं कार्यक्रमों में लिंग संबंधी चिंताओं को मुख्यधारा में ल
- भारत सरकार ने मई 2015 में 'डीडी किसान' —भारत का किसान को स पहला टेलिविजन चैनल है जो किसान को मौसम, वैश्विक बाजार इत्यादि में ब के बारे में सूचित करता है—चैनल शुरू किया, ताकि किसान पहले से योज

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

सके और समय पर सही निर्णय ले सके। चैनल प्रगतिशील किसानों के प्रयासों को भी प्रमुखता से रखेगा, ताकि उनके नवाचारों को पूरे भारत में देखा और समझा जा सके;

- जिला स्तर पर कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके) और कृषि तकनीक प्रबंधन एजेंसी (आत्मा) की स्थापना करना; और
- उद्यमियों के एग्री-क्लिनिक और एग्री-बिजनेस केंद्रों (एसीएबीसी), एग्री मेलों और प्रदर्शनियों, किसान एसएमएस पोर्टल, डीडी किसान टीवी चैनल और सामुदायिक रेडियो स्टेशन के माध्यम से किसानों को सूचना प्रदान करना।

राष्ट्रीय कृषि विस्तार एवं प्रौद्योगिकी मिशन (एनएमएईटी): कृषि और सहकारिता विभाग की ऐसी 17 विभिन्न परियोजनाएं थीं जो 11वीं योजना अवधि के दौरान कृषि पद्धतियों में सुधार इत्यादि कृषि प्रौद्योगिकी का प्रचार-प्रसार कर रही थीं। संशोधित विस्तार सुधार योजना को 2010 में प्रारम्भ किया। इसका उद्देश्य विस्तार मशीनरी को सुदृढ़ बनाना एवं इन योजनाओं को कृषि प्रौद्योगिकी प्रबंध एजेंसी (ATMA) के अंतर्गत रखकर इनका उपयोग तालमेल हेतु किया जा सके। कृषि विस्तार एवं प्रौद्योगिकी पर राष्ट्रीय मिशन (NMAET) इन योजनाओं के विलय के माध्यम से इस उद्देश्य की दिशा में अगले कदम के रूप में परिल्पित किया गया तथा इस मिशन को फरवरी 2014 में तैयार किया गया। राजग (एनडीए) सरकार ने इस मिशन में कई और योजनाओं को सम्मिलित किया।

इस परियोजना का उद्देश्य, प्रौद्योगिकी प्रसार हेतु नई संस्थागत व्यवस्था के माध्यम से, विस्तार प्रणाली को किसान आधारित बनाना तथा किसानों के लिए अधिक जवाबदेह बनाना है। इसका लक्ष्य कृषि विस्तार को पुनर्गठित करना एवं सुदृढ़ करना है जिससे किसानों को उपयुक्त प्रौद्योगिकी व उन्नत कृषि पद्धतियां प्रदान की जा सकें। इस लक्ष्य की प्राप्ति व्यापक प्रत्यक्ष मुलाकातों, सभाओं व बैठकों द्वारा, एवं सूचनाओं के आदान-प्रदान, सूचना व संचार तकनीक (ICT) के प्रयोग, आधुनिक व उपयुक्त प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाकर, क्षमता निर्माण, मशीनीकरण को बढ़ावा देकर, उत्तम बीजों की उपलब्धता, पौध संरक्षण द्वारा, तथा किसानों को हित समूहों के व कृषक उत्पादक संगठनों के निर्माण हेतु प्रोत्साहित करके की जाती है।

मिशन को राज्य सरकारों के माध्यम से कार्यान्वित किया जाता है। हालांकि कुछ घटकों, जैसे कीटनाशक पंजीकरण व संगरोध विनियमन, राष्ट्रीय संस्थानों, मास मीडिया, किसान कॉल सेंटर, एसएमएस पोर्टल, आदि केंद्र सरकार के माध्यम से लागू हो रहे हैं।

गैर सरकारी संगठन (NGOs), पैरा एक्सटेंशन कार्यकर्ता, कृषक संगठन, इत्यादि को किसानों का मार्गदर्शन करने, प्रशिक्षित करने हेतु प्रोत्साहित किया जाता है जिससे कृषि उत्पादकता में सुधार किया जा सके। राष्ट्रीय कृषि विस्तार एवं प्रौद्योगिकी मिशन को 2014-15 से पुनर्संरचित रूप में शुरू किया गया। एनएमएईटी के अंतर्गत 4 उपमिशन हैं: (i) कृषि विस्तार पर उपमिशन (एसएमएई); (ii) बीज एवं पौधरोपण सामग्री पर उपमिशन (एसएमएसपी); (iii) कृषि यंत्रीकरण पर उपमिशन (एसएमएएम); और (iv) पौध संरक्षण एवं पौध संगरोधन पर उपमिशन (एसएमपीपी)।

जबकि इन चार उपमिशनों को प्रशासनिक सुविधा के दृष्टिगत एनएमएईटी में शामिल किया गया है लेकिन ये एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। इन चार उपमिशनों में एक साझा सूत्र है—विस्तार और प्रौद्योगिकी।

इस मिशन का उद्देश्य किसानों तक उचित प्रौद्योगिकी एवं बेहतर कृषि संव्यवहारों के प्रदायन को सुनिश्चित करने के लिए कृषि विस्तार को सुदृढ़ एवं पुनर्संरचित करना है।

मिशन के उद्देश्य एवं रणनीतिः मिशन के उद्देश्य एवं रणनीतियां इस प्रकार हैं—

कृषि विस्तार पर उपमिशन (एसएमएई): कृषि विस्तार पर उपमिशन कृषि सम्बद्ध क्षेत्रों में जागरूकता फैलाने और उचित तकनीकियों के प्रयोग को बढ़ाने पर ध्यान देगा। अतीत में हासिल उपलब्धियों को विस्तार के काम में लगे कार्यकर्ताओं के वर्धित कार्य के माध्यम से संचित एवं सुदृढ़ किया जाएगा। एग्री-क्लीनिक्स एंड एग्री-बिजनेस केंद्र योजना (एसीएबीसी) और आगत डीलरों हेतु कृषि विस्तार सेवाओं में डिप्लोमा (डीएईएसआइ) के अंतर्गत प्रशिक्षित कार्मिक भी किसानों को विस्तार सेवाएं प्रदान करेंगे। पीको प्रोजेक्टर्स, कम लागत की फिल्मों, हाथ में रखे जाने वाले उपकरणों, मोबाइल आधारित सेवाएं, किसान कॉल सेंटर (केसीसी) इत्यादि जैसे सूचना संप्रेषण की अंतर्क्रियात्मक एवं नवोन्मेषी पद्धतियों का इस्तेमाल करना। आत्मा-एटीएमए (कृषि तकनीक प्रबंधन अभिकरण) और बीटीटी (ब्लॉक तकनीक टीम) जैसे संस्थानों के माध्यम से ग्राम स्तर पर विभिन्न कार्यक्रमों एवं योजनाओं के अंतर्गत विस्तार प्रयासों में परिवर्तन एवं विविधता लाना।

बीज एवं पौधरोपण सामग्री पर उपमिशन (एसएमएसपी): गुणवत्तापरक बीजों को अपनाना कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने का एक अत्यधिक लागत प्रभावी उपाय है। उपमिशन में शामिल हस्तक्षेप किसानों को बोने के लिए आपूर्ति किए जाने वाले एकल बीजों की समस्त शृंखला का समावेश करता है और बीज शृंखला में महत्वपूर्ण स्टेकहोल्डर्स को भी शामिल करता है और क्षेत्र के विकास हेतु एक सक्षम पर्यावरण उत्पन्न करने के लिए अवसंरचना को भी मदद प्रदान करता है। यह आकस्मिक स्थिति में बीज उपलब्धता को सुनिश्चित करता है। अंतरराष्ट्रीय व्यापार में भारत से बीजों के निर्गमन को सुसाध्य बनाना और 2020 तक भारत का हिस्सा 10 प्रतिशत करना जैसाकि नवीन बीज नीति में निश्चित किया गया है।

एसएमएसपी पौध किस्मों, किसानों और पौधे उगाने वालों के अधिकारों के संरक्षण और पौधों की नई किस्मों के विकास हेतु प्रोत्साहित करने के लिए एक प्रभावी व्यवस्था को स्थापित करने के क्रम में पौध किस्म एवं किसान अधिकार संरक्षण प्राधिकरण (पीपीवीएफआरए) को सुदृढ़ करने पर भी बल देता है।

कृषि यंत्रीकरण पर उपमिशन (एसएमएएम): छोटे एवं सीमांत किसानों तक और ऐसे क्षेत्रों तक जहां कृषि श्रमिक की उपलब्धता निम्न है, कृषि यंत्रीकरण की पहुंच बढ़ाना। उच्च तकनीक एवं उच्च कीमत वाले कृषि उपकरणों हेतु केंद्र खोलना तथा प्रदर्शन और क्षमता निर्माण गतिविधियों के माध्यम से स्टेकहोल्डर्स के बीच जागरूकता सृजित करना। पूरे देश में अवस्थित मान्यता प्राप्त परीक्षण केंद्रों पर निष्पादन परीक्षण और मानकीकरण को सुनिश्चित करना।

पौध संरक्षण एवं पौध संगरोधन पर उपमिशन (एसएमपीपी): एनएमएईटी में शामिल किया गया एसएमपीपी उपमिशन समन्वित कीट प्रबंधन के प्रसार द्वारा वैज्ञानिक एवं पर्यावरण हितैषी तकनीकियां अपनाकर फसल को रोग मुक्त रखकर कृषि उत्पादन में वृद्धि करता है। कीट प्रबंधन को सुदृढ़ एवं आधुनिक बनाने की यह पद्धति पौध संरक्षण के इस महत्वपूर्ण पहलू को लक्षित करती है और कीटनाशकों की नियामकीय जरूरतों को भी शामिल करती है। भारत में पौध संगरोधन सुविधाओं के सशक्तिकरण एवं आधुनिकीकरण घटक नियामकीय प्रकृति के है जिसमें विदेशी कीट के आगमन और फैलाव को रोकना है जो फसल के लिए हानिकारक है।

खाद्य पदार्थों और पर्यावरणीय प्रतिदर्शों में कीटनाशक अवशेषों की मौजूदगी की निगरानी को भी इस उपमिशन में शामिल किया गया है। इस घटक हेतु राष्ट्रीय पौध स्वास्थ्य प्रबंधन संस्थान (एनआईपीएचएम) क्षमता निर्माण कार्यक्रम के द्वारा विविध एवं बदलते कृषि-जलवायविक दशाओं, कीटनाशक प्रबंधन, और जैव सुरक्षा में पर्यावरणीय रूप से सतत् पौध स्वास्थ्य प्रबंधन संव्यवहारों को बढ़ावा देगा। एनएमएईटी के सभी चार उप मिशनों (एसएमएसपी, एसएमएई, एसएमएएम और एसएमपीपी) में शामिल किसान कौशल प्रशिक्षण और क्षेत्र विस्तार आत्मा (एटीएमए) के माध्यम से चलने वाली एक समान किसान संबंधी गतिविधियों के साथ शामिल होंगी। जैव-सुरक्षा में उदीयमान चुनौतियों एवं व्यापार के वैश्वीकरण के दृष्टिगत स्वच्छता एवं फाइटो सेनैटरी मामलों को उद्घाटित करने के साथ पौध संगरोधन, कीट निगरानी, कीट जोखिम विश्लेषण, कीट आगमन प्रबंधन इत्यादि पर विशेष ध्यान देने के साथ पौध जैव सुरक्षा में समर्पित पेशेवरों को निर्मित करने के लिए क्षमता निर्माण कार्यक्रम आयोजित किए गए।

संस्थात्मक कारक

संस्थात्मक कारक शब्द से उस विशेष व्यवस्था का बोध होता है, जिसके अंतर्गत भूमि स्वामित्व एवं प्रबंधन किया जाता है। स्वामित्व एवं प्रबंधन द्वारा कृषि उत्पादकता और क्षमता पर सीधा प्रभाव डाला जाता है। सरकार द्वारा भू-सुधारों के माध्यम से संस्थात्मक विकास पर बल दिया गया है। एक भू-सुधार कार्यक्रम में निम्न बिंदुओं पर जोर दिया जाता है:

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

(i) बिचौलियों की समाप्ति;
(ii) पट्टा सम्बंधी सुधार (काश्तकारी अवधि की सुरक्षा आदि);
(iii) सीमांकन एवं पुनर्वितरण;
(iv) समेकन, तथा;
(v) भूमि अभिलेखों में अद्यतन सूचनाओं का समावेशन।

बिचौलियों की समाप्तिः कृषि क्षेत्र में बिचौलियों की उपस्थिति और उनके हानिकारक प्रभावों को समझ लिया गया था इसलिए स्वतंत्रता के पश्चात राज्य विधानसभाओं ने इनकी समाप्ति के लिए अधिनियम पारित किये। बिचौलियों की समाप्ति से सम्बंधित प्रथम अधिनियम मद्रास में 1948 में पारित किया गया था। इसके पश्चात मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, सौराष्ट्र व बंबई में कानून बनाये गये। वर्तमान में सभी राज्यों में इस प्रकार के अधिनियम प्रभावी हैं।

काश्तकारी सुधारः काश्तकारों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—*प्रथम,* वे हैं जिनके काश्तकारी अधिकार स्थायी और पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्राप्त होते हैं। वास्तव में ये जमींदार को लगान अदा करने वाले छोटे भू-स्वामी ही हैं। *दूसरे,* इच्छाधीन काश्तकार होते हैं, जो भू-स्वामी की इच्छाधीन काश्तकारी करते हैं। *तीसरे,* उप-काश्तकार हैं, जो किसी अन्य काश्तकार से भूमि प्राप्त करते हैं। स्थायी काश्तकारों के सापेक्ष उप-काश्तकार और इच्छाधीन काश्तकारों की स्थिति अत्यधिक कमजोर है।

काश्तकारी सुधारों को इच्छाधीन काश्तकार, उप-काश्तकार और खेतिहर मजदूरों को ध्यान में रख कर प्रभावी बनाया गया था। इसके अंतर्गत लगान का नियमन किया गया, काश्त अधिकार को सुरक्षा प्रदान की गई और काश्तकारों के लिए भू-स्वामित्व अधिकार दिलवाने की व्यवस्था की गई।

काश्तकारी सुधारों के अंतर्गत निम्नलिखित तीन मुख्य नीतियां हैं—(i) लगान के नियमन, (ii) काश्त-अधिकार की सुरक्षा, और (iii) काश्तकारों को भूमि पर मालिकाना अधिकार।

लगान का नियमनः पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजना में सिफारिश की गई कि अधिकतम लगान उत्पादन का 1/5 अथवा 1/4 होना चाहिए। पंजाब, हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, तमिलनाडु तथा आंध्र प्रदेश के कुछ क्षेत्रों को छोड़कर सब राज्यों में इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया गया है।

काश्त-अधिकार की सुरक्षाः काश्तकारों की भूमि से बेदखली रोकने के लिए अधिकतर राज्यों में कानून बनाए गए हैं। इन कानूनों के तीन मुख्य उद्देश्य हैं—(i) बेदखली न हो, (ii) यदि भू-स्वामी को भूमि लौटाई जाती है तो केवल खुद-काश्त के लिए ही लौटाई जाए, तथा (iii) भूमि भू-स्वामी को लौटाने की स्थिति में भी काश्तकार के पास कुछ भूमि छोड़ दी जाए।

देश के सभी काश्त-संबंधी कानूनों में उन लोगों को काश्तकार माना गया है जो लगान के बदले किसी अन्य व्यक्ति की भूमि पर खेती करते हैं। परंतु कुछ राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल में बंटाईदारों को काश्तकार नहीं माना गया है। इस प्रकार काश्त-अधिकार की सुरक्षा से संबंधित कानूनों से इन्हें कोई लाभ नहीं हो पाया है।

काश्तकारों को मालिकाना अधिकारः विभिन्न योजनाओं के दस्तावेजों में कहा गया कि काश्तकारों को भूमि पर स्वामित्व अधिकार प्रदान किए जाएं अर्थात् जिस भूमि पर वे खेती करते हैं उन्हें उस भूमि का मालिक बना दिया जाए।

भूमि सुधारों को लागू करने के उपायों में जोतों की अधिकतम सीमा का निर्धारण एक महत्वपूर्ण कदम था। इन्हें ग्रामीण क्षेत्र में आय-असमानताओं को कम करने, कृषि में रोजगार को बढ़ावा देने और भूमि-साधन का न्यायपूर्ण वितरण सुनिश्चित करने के उद्देश्य से लागू किया गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात बहुसंख्यक लघु किसानों व खेतिहर मजदूरों की भूमि संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक था कि भूमिपतियों के लिए अधिकतम जोत सीमा निर्धारित कर उनसे अतिरिक्त भूमि लेकर ऐसे किसानों में वितरित कर दी जाये।

कृषि जोतों की सीमाबंदीः भूमि सुधारों कार्यक्रमों में जोतों की सीमाबंदी को काफी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। दरअसल यह मांग की तुलना में सीमित मात्रा में उपलब्ध भूमि को कृषि कार्य में लगे विभिन्न उत्पादकों के बीच न्यायपूर्ण ढंग से बांटने का उपाय है। डी.आर. गाडगिल ने सामाजिक न्याय की दृष्टि से भी जोतों की सीमाबंदी को उपयोगी बताया है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आय और सम्पत्ति के वितरण में असमानताएं अपने आप में ठीक नहीं हैं। कल्याणकारी समाज में इन्हें दूर किया जाना चाहिए। जोतों की सीमाबंदी ग्रामीण क्षेत्र में असमानता को दूर करने का एक कारगर उपाय है।

विभिन्न राज्यों के कानूनों में एकरूपता लाने के लिए जुलाई 1972 में मुख्यमंत्रियों की एक बैठक बुलाई गई। इस बैठक में हुए विचार-विमर्श के आधार पर उच्चतम सीमा के बारे में नई नीति बनाई गई। इस नीति की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित थीं—

(i) उच्चतम सीमा को जल उपलब्धि वाले क्षेत्रों में 18 एकड़ तथा असिंचित क्षेत्रों में 54 एकड़ तक सीमित कर दिया गया।
(ii) उच्चतम सीमा निर्धारण के लिए परिवार को इकाई माना जाएगा।
(iii) उच्चतम सीमा कानूनों से रियायतों व छूटों को कम किया जाएगा।
(iv) बेनामी हस्तांतरणों को रोकने के दृष्टिकोण से कानून को पहले की किसी अवधि से लागू माना जाएगा।
(v) न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से बाहर करने के लिए इन कानूनों को संविधान की नौवीं सूची में शामिल कर दिया गया है। इसलिए अब जिन लोगों से भूमि ली जाएगी वे मौलिक अधिकारों के हनन का बहाना लेकर न्यायालयों में नहीं जा सकेंगे।

इस नीति के परिप्रेक्ष्य में सभी राज्यों में (गोवा तथा उत्तर-पूर्व के राज्यों को छोड़कर) अधिकतम सीमा कानून पारित किए। परंतु इन कानूनों का सही ढंग से कार्यान्वयन नहीं हुआ। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अनुसार, अब तक 30 लाख हेक्टेयर भूमि को अतिरिक्त घोषित किया जा सका है जो भारत के निवल बोए गए क्षेत्र का मात्र 2 प्रतिशत है। इस भूमि का भी लगभग 30 प्रतिशत वितरित नहीं किया जा सका है क्योंकि वह कानूनी विवादों में फंसा है। इसके अलावा, बेनामी व चोरी छुपे किए गए आदान-प्रदानों के कारण भूमि के काफी बड़े हिस्से पर सीमाबंदी से अधिक भूमि पर कुछ लोगों ने कब्जा जमा रखा है।

चकबंदी एवं पुनर्वितरणः भारत में जोत का औसत आकार बहुत छोटा है। 2010-11 में यह मात्र 1.16 हेक्टेयर था। 67 प्रतिशत जोतें अनार्थिक जोतें (एक हेक्टेयर से कम जोत) हैं। परिचालन जोतों में लगभग 10 प्रतिशत अर्द्ध-मध्यम जोत (2 से 4 हैक्टेयर), लगभग 4 प्रतिशत मध्यम जोत (4 से 10 हैक्टेयर), लगभग 0.7 प्रतिशत बड़ी जोत (10 और 10 हैक्टेयर से अधिक) स्थापित हैं। उप-विभाजन एवं विखण्डन की समस्या के समाधान के लिए सरकार ने कई कदम उठाये, जिसमें चकबंदी एक महत्वपूर्ण कदम था। चकबंदी के अंतर्गत किसानों के विभिन्न स्थलों में बिखरे जोतों के स्थान पर उसे एक सुसंहत जोत प्रदान करने का निर्णय लिया गया। इसका उद्देश्य साधनों के अनुकूलतम प्रयोग द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि और आय असमानताओं में कमी करना था। सुसंहत जोत प्रदान करने के दौरान क्षेत्रफल के अतिरिक्त भूमि की उत्पादकता एवं सिंचाई साधनों की उपलब्धता को भी ध्यान में रखकर ग्राम भू-स्वामियों के मध्य पुनः वितरण किया जाता था।

सहकारी खेतीः भूमि के उपविभाजन से जनित समस्याओं का समाधान केवल सहकारी खेती द्वारा ही किया जा सकता है। इसके अधीन वे छोटे व सीमांत किसान जिनके पास बहुत छोटी कृषि जोतें हैं अपनी भूमि मिलाकर मिलजुल कर खेती करते हैं। उल्लेखनीय है कि भारत में 82 प्रतिशत जोतों का आकार 2 हेक्टेयर से भी कम है और उनके पास परिचालन क्षेत्र का केवल 39 प्रतिशत है। इन छोटी जोतों पर खेती लाभदायक नहीं हो सकती। परंतु यदि ये किसान अपनी भूमि, संसाधन, उपकरणों इत्यादि को मिलाकर संयुक्त रूप से खेती करते हैं तो उन्हें बड़े पैमाने पर खेती के सभी लाभ मिल सकते हैं।

प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं में भारत में सहकारी खेती को प्रोत्साहित करने के लिए कई सुझाव दिए गए। सरकार ने सहकारी समितियों को कई तरह की रियायतें व सहायता प्रदान की जैसे वित्तीय सहायता, आर्थिक अनुदान, तकनीकी सहायता, उन्नत किस्म के बीजों की सस्ती दरों पर आपूर्ति, उर्वरकों की व अन्य आवश्यक सामग्री की आपूर्ति इत्यादि। कुल मिलाकर देखा जाए तो भारत में सहकारिता का प्रयोग विफल रहा। यह इस बात से स्पष्ट है कि कृषित भूमि के आधे प्रतिशत से भी कम भूमि पर सहकारी खेती को अपनाया गया। जहां तक सहकारी समितियों की कार्यप्रणाली व वास्तविक कामकाज का प्रश्न है, ऐसा पाया गया है कि बहुत सी

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

हरित क्रांति

आजादी के समय खाद्यान्नों की स्थिति गंभीर बनी हुई थी। खाद्यान्नों की आपूर्ति की तुलना में मांग अधिक थी। मांग एवं आपूर्ति के मध्य अंतर को आयात व राशनिंग के माध्यम से पूरा करने के प्रयास किये गये। प्रथम योजना काल में कृषि को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया था। मानसून की अनुकूल स्थिति व अधिक महत्व दिये जाने के कारण, कृषि उत्पादन में पहले योजना काल में वृद्धि हुई। दूसरी योजना के दौरान भारी मात्रा में खाद्यान्नों का आयात करना पड़ा। दूसरी योजना के दौरान 1956 में भारत ने अमेरिका से पी.एल. 480 समझौता किया, जिसके अंतर्गत खाद्यान्न आयात किये जाने की योजना थी। भारत सरकार की मांग-आपूर्ति के मध्य अंतर को आयात के माध्यम से पूरा करने की नीति चौथी योजना के अंत तक जारी रही। परंतु सरकार को खाद्यान्नों के लिए विदेशी स्रोतों पर निर्भरता के खतरों का अनुभव होने लगा था, इसलिए सरकार ने घरेलू आपूर्ति बढ़ाने के उपाय करने आरंभ कर दिये थे।

खाद्यान्नों की घरेलू आपूर्ति बढ़ाने की दिशा में सरकार का प्रयास पारंपरिक कृषि व्यवहारों के स्थान पर आधुनिक तकनीक व फार्म व्यवहारों को लाने का था। इसके साथ-साथ भूमि सुधारों को लागू करने एवं प्रेरक मूल्य नीति अपना कर खाद्य आपूर्ति में वृद्धि करने की योजना भी थी।

कृषि क्षेत्र में अल्प उत्पादकता को दूर करने का एक उपाय पूंजी की मात्रा में वृद्धि कर उत्पादन तकनीक में परिवर्तन लाना था। इसी बीच मैक्सिको में गेहूं की नई किस्म सामने आई, जिसने विकासशील देशों के मध्य आशा की किरण जागृत की। नार्मन बोरलाग ने उन्नत बीज प्राप्त करने की दिशा में विशेष कार्य किया। नार्मन बोरलाग को हरित क्रांति का जनक भी कहते हैं।

भारत में अभी तक भू-सुधारों पर बल दिया जा रहा था एवं भू-सुधारों के माध्यम से सृजित शक्तियों द्वारा खाद्यान्न आपूर्ति बढ़ाने की संभावना व्यक्त की जा रही थी। उन्नत बीज, उर्वरक, कीटनाशकों व सिंचाई पर आधारित नवीन पद्धति को पहले-पहल पायलट योजना के रूप में वर्ष 1960-61 में 'गहन कृषि जिला कार्यक्रम' के चयनित सात जिलों में लागू किया गया। उत्पादकता वृद्धि के इस प्रथम प्रयास के उत्साहवर्द्धक परिणामों के फलस्वरूप इस योजना को 1965 में गहन कृषि जिला कार्यक्रम द्वारा 114 जिलों में लागू किया गया।

रासायनिक उर्वरकों, उन्नत बीजों व कीटनाशकों पर आधारित नवीन कृषि रणनीति को 1966-67 में एक पैकेज कार्यक्रम के रूप में लागू किया गया। वर्ष 1967-68 से हरित क्रांति की शुरूआत हुई।

हरित क्रांति का अध्ययन दो चरणों में किया जा सकता है:

प्रथम चरण (1966-67 से 1980-81): हरित क्रांति के प्रथम चरण में इसका प्रभाव कुछ क्षेत्रों तक सीमित रहा। उन्नत बीज कार्यक्रम को गेहूं, चावल, मक्का, बाजरा व ज्वार तक सीमित रखा गया तथा अन्य गैर-खाद्यान्न फसलें इससे दायरे से बाहर थीं। हरित क्रांति का सर्वाधिक लाभ गेहूं के उत्पादन को मिला, जिससे उत्पादन व उत्पादकता दोनों में वृद्धि हुई। चावल के उत्पादन में बहुत कम वृद्धि हुई व मोटे अनाज (ज्वार, बाजरा, मक्का) का उत्पादन या तो स्थिर रहा या उसमें अनियमित व धीमी वृद्धि हुई। हरित क्रांति का कोई भी लाभ दालों को प्राप्त नहीं हो सका यहां तक कि दालों की उत्पादकता में कमी आई।

द्वितीय चरण (1980-81 से 1996-97): द्वितीय चरण 1980-81 से आरंभ होता है। इस काल में नवीन प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं। प्रथम काल में जहां चावल व तिलहन का निष्पादन अच्छा नहीं रहा था, वहीं दूसरे काल में इनका निष्पादन बेहतर रहा। इस काल में चावल व तिलहन के उत्पादन में वृद्धि दर क्रमशः 3.35 प्रतिशत व 5.81 प्रतिशत थी जो प्रथम काल की (चावल व तिलहन क्रमशः 2.22 प्रतिशत व 0.98 प्रतिशत) वृद्धि दर से कहीं अधिक थी। इसी प्रकार की प्रवृत्ति उत्पादकता में भी दृष्टिगोचर होती है। चावल की प्रथम व द्वितीय काल में वृद्धि क्रमशः 1.45 प्रतिशत व 2.82 प्रतिशत रही, वहीं तिलहन के लिए यह 0.68 व 2.49 प्रतिशत रही। दूसरी ओर प्रथम काल में हरित क्रांति के वाहक गेहूं के लिए द्वितीय काल में उत्पादन व उत्पादकता वृद्धि दर क्रमशः 3.62 प्रतिशत व 2.91 प्रतिशत (प्रथम काल में उत्पादन में 5.65 प्रतिशत व उत्पादकता में 2.62 प्रतिशत की वृद्धि दर दर्ज की गई थी) की रहीं। द्वितीय काल में दालों के उत्पादन एवं उत्पादकता में भी वृद्धि देखने को मिली। अन्य फसलों के उत्पादन (केवल ज्वार को छोड़कर) व उत्पादकता में वृद्धि हुई। इस प्रकार द्वितीय काल में उत्पादन व उत्पादकता के संदर्भ में विभिन्न फसलों के मध्य आय अंतर में कमी आई।

हरित क्रांति के प्रभाव

हरित क्रांति के निम्नलिखित प्रभाव सामने आये:

- हरित क्रांति के माध्यम से देश खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में सफल रहा।
- हरित क्रांति के प्रभाव से संचित गेहूं उत्पादक क्षेत्रों को सापेक्षतया अधिक लाभ पहुंचा है, जिससे क्षेत्रीय असमानताओं में वृद्धि हुई है।
- हरित क्रांति के अंतर्गत अधिक पूंजी निवेश जरूरी होने के कारण समृद्ध किसान ही इससे लाभान्वित हुये परंतु समय के साथ लघु व सीमांत किसानों को संस्थानिक वित्त प्रवाह बढ़ने से बढ़ी उत्पादकता का लाभ उन्हें भी प्राप्त हुआ है, परंतु अंतः वैयक्तिक असमानताओं में सुनिश्चित रूप से वृद्धि हुई है।
- हरित क्रांति के माध्यम से कृषि श्रमिकों की मौद्रिक आय में वृद्धि हुई है।
- वर्ष 1967-68 से 1980-81 के मध्य हरित क्रांति का लाभ गेहूं व एक स्तर तक चावल को मिला। इन दोनों के उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि हुई जबकि अन्य फसलों के उत्पादन व उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई। परंतु 1980-81 के बाद के काल में हरित क्रांति के लाभ सभी फसलों को प्राप्त हुये।
- 1980-81 के बाद के काल में उत्पादन वृद्धि में उत्पादकता वृद्धि का बड़ा योगदान रहा है।
- हरित क्रांति के दौरान भारतीय कृषि क्षेत्र में ट्यूबवैल, पम्प सैट, उर्वरक, ड्रिलर व हार्वेस्टर कम्बाइन का प्रयोग बढ़ा है, जो स्पष्टतः भारतीय कृषि की आधुनिक तकनीकों के प्रयोग की ओर उन्मुखता का परिचायक है। हरित क्रांति ने भारतीय कृषि के आधुनिकीकरण का मार्ग प्रशस्त किया।
- कृषि क्षेत्र में ऊर्जा का उपभोग बढ़ा है।
- 1980-81 से पूर्व के हरित क्रांति काल में हरित क्रांति के लाभ पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश इत्यादि राज्यों तक सीमित रहे परंतु 1960-81 के बाद के काल में हरित क्रांति का प्रसार पूर्वी क्षेत्र में हुआ और उड़ीसा, बिहार, बंगाल में तीव्र खाद्यान्न वृद्धि दर दर्ज की गई।
- हरित क्रांति ने जहां एक ओर उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि की है वहीं दूसरी ओर पारिस्थितिकी पर भी विपरीत प्रभाव डाला है। सिंचाई सुविधाओं के बिना जल निकास की व्यवस्था करने से मिट्टी में क्षारीयता बढ़ी है। कीटनाशकों के अवैज्ञानिक प्रयोग से मानव व पर्यावरण के लिए अनेक खतरे बढ़ गये हैं। मिट्टी उर्वरता व मिट्टी संरचना के संरक्षण के लिए बिना प्रभावी कदम उठाये सघन कृषि पर बल दिया जा रहा है जिससे खेतों के रेगिस्तान में परिवर्तित होने का खतरा बढ़ा है।

दूसरी हरित क्रांति

दूसरी हरित क्रांति मुख्य रूप से भोजन की आवश्यकता और पृथ्वी पर बढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण की मांग को पूरा करने हेतु कृषि उत्पादन में एक परिवर्तन है। इसे खाद्य पदार्थों की बढ़ती कीमतों, और अन्य कारकों के बीच खाद्य पदार्थों की ढ़ती मांग के प्रत्युत्तर के तौर पर शुरू किया गया।

भारत में, जैसाकि प्रथम हरित क्रांति ने खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित किया चूंकि ा में भोजन की अत्यंत कमी थी। दूसरी हरित क्रांति का उद्देश्य निर्धनों के लिए त् आजीविका का सृजन करना है और लाभकारी स्व-रोजगार के सृजन से निर्धनता लन करना है। जहां प्रथम हरित क्रांति का उद्देश्य बेतहाशा उत्पादन करना था, हरित क्रांति लोगों द्वारा उत्पादन को प्रोत्साहित करने का लक्ष्य रखती है।

दूसरी हरित क्रांति में फसल प्रतिरूप, विविधीकरण, पश्च-फसल हानियों को रोकना, सतत् संव्यवहार, मृदा एवं जल संरक्षण इत्यादि शामिल किया गया है। इसमें जैव-उर्वरकों, जैव-कीटनाशी, एवं जैविक खेती को प्रोत्साहित करने का भी समावेश किया गया है। इसमें अवसंरचना, भण्डारण, और मूल्य-वर्द्धन कृषि संसाधन के सुधार के तत्व भी शामिल हैं।

कृषि क्षेत्र में 4 प्रतिशत की सतत् संवृद्धि स्वनिर्धारित करते हुए, भारत सरकार ने 2015-16 के अपने बजट में उच्च उत्पादकता और एक 'प्रोटीन क्रांति' पर जोर देने के साथ एक तकनीकी-वाहक दूसरी हरित क्रांति की घोषणा की।

दूसरी हरित क्रांति ने कृषि उत्पादन में बढ़ोत्तरी करते हुए लघु एवं सीमांत किसानों

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

और भूमिहीन किसानों के लिए रोजगार सृजन पर बल दिया। जैसाकि इन परिवारों के पास अधिकतर बंजर एवं निम्न उर्वर भूमि है, जो सिंचाई से वंचित है, ऐसी भूमियों में बेहतर प्रयोग पर ध्यान दिया जाना चाहिए। जैसाकि ऐसी भूमियां उच्च पैदावार प्रदान और नकदी फसल की गहन फसल के लिए उचित नहीं हैं, शुष्क भूमि बागवानी और एगी-चारागाह को प्रमुखता दी जानी चाहिए। वृक्षारोपण की फसल प्रकृति के प्रतिकूल प्रभावों में भी बनी रहती है और किसी प्रकार का भारी नुकसान नहीं होता। वृक्ष की खेती पूरे वर्ष रोजगार प्रदान करती है और मृदा अपरदन और वर्षा जल बहाव को भी रोकती है। वृक्ष की खेती को प्रोत्साहन मृदा उर्वरता में भी वृद्धि करेगी और भौम जल स्तर में बढ़ोतरी करेगी। इसलिए, ऐसे कार्यक्रम जीवन गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं और पर्यावरण का संरक्षण करते हैं।

पशुपालन भी समान रूप से महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसे वेहतर मदद की आवश्यकता है। उत्तम गुणवत्ता के पशु और चारे, विशेष रूप से लघु कृषकों एवं भूमिहीनों को मितव्ययी मूल्य उत्पादन करने में मदद करने, की आपूर्ति में सुधार की सफलतम तकनीकियां भी हैं। खाने योग्य झाड़ियों और पौधों का प्रोत्साहन, विकेन्द्रीकृत सम्पूर्ण चारा उत्पादन एवं झाड़ियों की स्थापना, पोषणात्मक गुणवत्ताओं के सुधार हेतु कृषि उपोत्पादों के उपचार की तकनीकी मदद प्रदान करके लोकप्रिय बनाना चाहिए। पशुओं के वेहतर स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिए रोकथाम एवं उपचारात्मक स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं को प्रदान करने हेतु पशुचिकित्सा संबंधी वेहतर फील्ड नेटवर्क स्थापित करके मोबाइल सेवाओं के माध्यम से हमारी पशु स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली को सुधारने की आवश्यकता है, जिसका दुग्ध उत्पादन की लागत और गुणवत्ता पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। पशु जैविक खाद का मुख्य स्रोत हैं, पशुपालन को कृषि का एक अभिन्न अंग होना चाहिए।

कृषि समृद्धि सुनिश्चित करने के लिए, ग्रामीण जनमानस, विशेष रूप से वे जो पिरामिड के सवसे निचले पायदान पर हैं, को शामिल करना, सहभागी किसानों, विशेष रूप से महिलाओं, की क्षमताओं का निर्माण करने की आवश्यकता है।

कृषि में 4 प्रतिशत की वार्षिक उच्च वृद्धि दर विभिन्न स्तरों पर अनेक राज्यों और एजेंसियों द्वारा किए गए कृषि सुधारों की गुणवत्ता तथा मांग में सुधार करके ही प्राप्त की जा सकती है। इन सुधारों का उद्देश्य सतत आधार पर तथा समग्र ढांचे में संसाधनों के प्रभावी प्रयोग और मृदा, जल तथा पारिस्थितिकी के संरक्षण पर होना चाहिए। ऐसे समग्र ढांचे में जल, सड़कों और विद्युत जैसी ग्रामीण आधारभूत संरचना का वित्त पोषण शामिल होना चाहिए।

11वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र में इस प्रकार के समग्र ढांचे पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला गया तथा कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए अग्रलिखित नीति का सुझाव दिया गया—(i) सिंचित क्षेत्र की वृद्धि दर को दुगुना करना; (ii) जल प्रबंधन में सुधार करना, वर्षा जल का संचयन तथा जल संभर विकास; (iii) निम्नस्तरीय भूमि का पुनरुद्धार करना तथा मृदा गुणवत्ता पर ध्यान देना; (iv) प्रभावी विस्तार के माध्यम से ज्ञान के अंतर को पाटना; (v) उच्च मूल्य वाली उपज, फल, सब्जियां, फूल, जड़ी-बूटी, मसाले, औषधीय पौधे, बांस, वायो-डीजल जैसी विभिन्न प्रकार की फसलें उगाना। किंतु ऐसा करते समय खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित किये जाने के लिए पर्याप्त उपाय किये जाने चाहिए; (vi) पशुपालन और मत्स्यपालन को बढ़ावा देना; (vii) वहनीय दरों पर आसान ऋण उपलब्ध कराना; और (viii) प्रोत्साहन ढांचा और बाजारों की कार्यप्रणाली को सुधारना; (ix) कृषि सुधार संबंधी मुद्दों पर फिर से ध्यान देना।

भारत में कृषि पर किया जाने वाला अनुसंधान एवं विकास व्यय इसके उच्च सामाजिक प्रतिलाभ के बावजूद अंतरराष्ट्रीय मानकों से कम है। क्षेत्र विशिष्ट बीजों तथा उनके प्रयोग का विकास विशेष रूप से जल की प्रचुरता वाली पूर्वी पट्टी में होने से इन क्षेत्रों में उपज के स्तरों को बढ़ा सकता है। अनुसंधान एवं विकास में वर्षा-पोषित और सूखा संभावित क्षेत्रों, सूखा रोधी और जैव-प्रौद्योगिकी अनुप्रयोगों के लिए जिम्मेदार फसलों तथा जैव-प्रौद्योगिकी, जिसमें वृद्धि और निर्यात की संभावना हो, आदि पर ध्यान दिया जाना चाहिए। उचित क्रियान्वयन किए जाने से, कृषक समूह, पंचायती राज संस्थाओं और निजी क्षेत्रों की भागीदारी से आजीविका सुरक्षा बढ़ाने के लिए जुलाई 2006 में शुरू की गई राष्ट्रीय कृषि नवीकरण परियोजना अग्रणी कृषि विज्ञानों में मूल और नीतिगत अनुसंधान को सुदृढ़ करने में काफी सहायक होगी।

दूसरी हरित क्रांति को पूरी तरह से नवीन पद्धति और समग्र तौर पर प्रौद्योगिकियों के नए समुच्चय पर चलाए जाने की आवश्यकता है। जलवायु परिवर्तन, न केवल भारत पर अपितु पूरे विश्व पर अपना शिकंजा कस रहा है और खाद्य आपूर्ति को खतरा पैदा कर रहा है। कृषि के लिए अपरिहार्य दुर्लभ प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण कभी भी अधिक महत्वपूर्ण नहीं रहा।

'यथार्थ कृषि' की नई पद्धति मुख्य समाधान हो सकती है। हरित क्रांति के संदर्भ में अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि बीज-पानी-उर्वरक तकनीक पर आधारित यह व्यवस्था अपने चरम विंदु पर पहुंच गई है एवं उत्पादकता में और अधिक वृद्धि कर पाना अब इस तकनीक से संभव नहीं होगा। इसके साथ ही हरित क्रांति के पर्यावरण पर प्रभावों को देखते हुए भी उत्पादकता वृद्धि के वैकल्पिक मार्गो की खोज की जा रही है। इसी का परिणाम है यथार्थ कृषि।

यथार्थ कृषि में मृदा-प्रबंधन, किस्म संवर्द्धन, जल प्रबंधन, समेकित कीट नियंत्रण, टिशू कल्चर, जेनेटिक इंजीनियरिंग एवं समेकित बीज प्रबंधन जैसे विभिन्न विषयों के समन्वय के माध्यम से कृषि कार्य किया जाता है। यथार्थ कृषि विधि भूमि व जल के वैज्ञानिक आयोजन पर आधारित होती है जिसके अंतर्गत प्रकृति की सेवाओं व प्राकृतिक पूंजी स्टॉक पर एक साथ ध्यान दिया जाता है। प्राकृतिक पूंजी स्टॉक में मिट्टी व मिट्टी के पोषक तत्व, जैव-विविधता, जल, खनिज, वन व सागर इत्यादि आते हैं। प्रकृति की सेवाओं में जल-चक्र, पोषण-चक्र कृषि-वानिकी इत्यादि आते हैं।

यथार्थ कृषि के अंतर्गत कृषि विज्ञान, मृदा विज्ञान, कीट विज्ञान, मौसम विज्ञान, पादप क्रिया विज्ञान, पादप रोग विज्ञान, पारिस्थितिकी विज्ञान व अर्थशास्त्र इत्यादि क्षेत्रों के अनुसंधान कार्यो से लाभ उठाया जाता है। भविष्य में मानव की मूलभूत आवश्यकताओं को, पर्यावरण को विना क्षति पहुंचाये पूरा करने की दिशा में यथार्थ कृषि आशा की किरण है। वर्तमान बीज- जल-उर्वरक आधारित तकनीक संवहनीय विकास की दिशा में नहीं ले जाती है। परंतु यथार्थ तकनीक के माध्यम से संवहनीय विकास संभव है।

कुछ ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जिन पर दूसरी हरित क्रांति के दौरान विचार किए जाने की आवश्यकता है—

(i) संसाधनों का वेहतर प्रयोगः जैसाकि वढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए भूमि की उत्पादकता वढ़ाए जाने की आवश्यकता है, यह सुझाव दिया गया कि वंजर भूमि को सड़क निर्माण, कृषि-संसाधन उद्योगों और भण्डारण सुविधाओं के निर्माण हेतु उपयोग किया जाए, जो कृषि उत्पाद के संसाधन और विक्री कं लिए आवश्यक हैं। इसके अलावा मौजूदा खेती तकनीकियों के परिणामस्वरूप पानी की वर्वादी होती है। भारत को जल संरक्षण प्रौद्योगिकियों को अपनाने की आवश्यकता है, जैसाकि कई विकसित देश कर रहे हैं। यह कम पानी वाले कृषि क्षेत्रों में मदद करेगा, और पर्यावरणीय रूप से अधिक सतत् होगा।

(ii) मनोवृत्ति में परिवर्तनः किसान परम्परागत रूप से यह विश्वास करते हैं कि उनकी भूमिका फसल उगाने तक सीमित है। उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन उन्हें यह समझने या महसूस करने में मदद करेगा कि उनके कार्य का क्षेत्र अनाज उत्पादन से खाद्य संसाधन और विपणन तक वढ़ सकता है। इसके लिए, सेवाओं में नई प्रौद्योगिकियों पर जोर देना चाहिए।

भारत में दूसरी हरित क्रांति को अन्य स्टेकहोल्डर्स की मदद के साथ केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा चलाए जाने वाले विभिन्न मिशनों/कार्यक्रमों के माध्यम से क्रियान्वित किया जा रहा है।

समितियों का प्रबंध अत्यंत असंतोषजनक रहा है। बहुत-सी समितियों में व्यापक भ्रष्टाचार है तथा आम सदस्यों की समस्याओं को अनदेखा करके केवल कुछ धनी व प्रभावी जमींदार सदस्यों के हितों का ध्यान रखा जाता है। इस भ्रष्ट व अक्षम प्रबंध व्यवस्था से क्षुव्ध होकर बहुत से सदस्यों ने सहकारी समितियों की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया है तथा वापिस वैयक्तिक कृषि की ओर लौट गए।

भू-अभिलेखों का कंप्यूटरीकरणः वर्ष 1988-89 में भू-अभिलेखों के कंप्यूटरीकरण के लिए केंद्र से 100 प्रतिशत सहायता प्राप्त केंद्र प्रायोजित एक योजना विभिन्न राज्यों के आठ जिलों में प्रायोगिक परियोजना के रूप में शुरू की गई थी। इस योजना का उद्देश्य भू-अभिलेखों के रख-रखाव में सुधार की मैनुअल प्रणाली की मुश्किलों को दूर कर भूमि रिकार्डों को अद्यतन बनाना और विभिन्न उपयोगकर्ता समूहों की जरूरतों को पूरा करना था।

भारत में भूमि सुधारों का मूल्यांकन

अधिकतर राज्यों में खुद देख-रेख को स्वयं-काश्त का हिस्सा मान लिया गया। गांव में भू-स्वामी की मौजूदगी भी अनिवार्य नहीं थी। इसमें भू-स्वामी द्वारा स्वयं देख-रेख करने का प्रावधान नहीं था। भू-स्वामी के परिवार के किसी भी सदस्य द्वारा देख-रेख को काफी मान लिया गया। यह भूमि सुधारों के उद्देश्यों के विल्कुल विपरीत था।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

न केवल स्वयं-काश्त की परिभाषा दोषपूर्ण थी अपितु स्वयं-काश्त के लिए मध्यस्थों को बहुत बड़ी जमीन अपने पास रखने की अनुमति दी गई। इस प्रकार जमींदारों को अपने लिए बड़ी भूमि रखने की छूट मिल गई जो जमींदारी उन्मूलन के उद्देश्यों के बिल्कुल विपरीत था।

जोतों की सीमाबंदी के कानूनों से बचने के लिए जमींदारों ने काफी बड़ी भूमि अपने परिवार के सदस्यों के नाम हस्तांतरित कर दी। इस प्रकार के हस्तांतरण को रोकने के लिए किसी प्रकार के गंभीर प्रयास नहीं किए गए। उल्लेखनीय है कि राज्यों में, विशेष रूप से पश्चिम बंगाल एवं उत्तर प्रदेश में, बंटाई के आधार पर कृषि करने वालों को 'काश्तकार' का दर्जा नहीं दिया गया। हालांकि ये काफी बड़ी भूमि पर 'काश्त' करते थे। इसलिए इनके अधिकारों के संरक्षण के लिए काश्त सुधार से संबंधित कानूनों का प्रयोग नहीं किया जा सका। काश्तकारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर थी कि वे भू-स्वामियों की शक्ति का किसी भी तरह सामना नहीं कर सकते थे इसलिए उन्होंने स्वेच्छा से भूमि त्याग दी। जैसाकि स्पष्ट है कि, कोई भी कानून काश्तकारों की मदद नहीं कर सकता यदि वे स्वयं ही अपनी भूमि का त्याग कर दें। काफी समय तक इस प्रकार की व्यवस्था रोकने का कोई कानून नहीं था।

किसी भी कानून की सफलता के लिए यह अनिवार्य है कि सरकार में उसे लागू करने की राजनैतिक इच्छा एवं संकल्प हो। भूमि सुधार जैसे कानूनों की सफलता के लिए सरकार में अत्यधिक साहस व कार्यान्वयन का जोश होना चाहिए क्योंकि इन कानूनों का लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्रों के संपत्ति-संबंधों में आमूल परिवर्तन करना होता है। भारत में भूमि सुधारों के क्षेत्र में बहुत कम उपलब्धि इस बात को सिद्ध करती है कि राज्य सरकारें भूमि सुधार कानूनों को लागू करने के लिए बेहद उत्सुक नहीं थी और मात्र प्रगतिवादी व समाजवादी मुखौटा पहनकर राजनैतिक लाभ अर्जित करना चाहती थीं। गौरतलब है कि भूमि सुधारों जैसे प्रगतिवादी कानूनों को बनाने और उनका सही कार्यान्वयन करने के लिए कठोर राजनैतिक निर्णयों और प्रभावी राजनैतिक समर्थन, नियंत्रण तथा दिशा-निर्देश की आवश्यकता होती है। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में जो सामाजिक-आर्थिक स्थितियां मौजूद हैं उन्हें देखते हुए भूमि सुधारों के क्षेत्र में तब तक कोई खास प्रगति होने की उम्मीद नहीं है जब तक कि उपयुक्त जनैतिक इच्छा न हो।

राजनैतिक इच्छा के अभाव के साथ ही प्रशासनिक तंत्र की उदासीनता पर विचार करना आवश्यक है। प्रशासनिक तंत्र की उदासीनता राजनैतिक इच्छा के ाव से पैदा होती है। महत्वपूर्ण है कि 1973 में पंजाब की स्थिति पर प्रकाशित रण सिंह समिति की रिपोर्ट ने इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया था कि नों एवं अन्य खेतिहर मजदूरों के लिए खाली की गई भूमि को प्रमुख राजनेताओं सरकारी अधिकारियों ने बहुत कम कीमत देकर हड़प लिया। इससे सिद्ध होता भूमि सुधारों को कार्यान्वित करने की जिन लोगों को जिम्मेदारी सौंपी गई थी स्वयं ही उसे विध्वंस कर दिया। इस प्रकार भूमि सुधारों के प्रभावी क्रियान्वयन ति के लिए ईमानदारी पूर्वक समग्र एवं समावेशी विकास करना होगा।

कृषि ऋण

सफलता या असफलता एक स्तर तक वित्त की उपलब्धता पर निर्भर करती न की आवश्यकता को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—समय ।

धार पर किसान की वित्त की आवश्यकता को अल्प, मध्यम व दीर्घकाल कर सकते हैं। बीज, उर्वरक, कृषि उत्पादों के विपणन, श्रमिकों की त्यादि के लिए आवश्यक वित्त को अल्पकालीन वित्त की श्रेणी में रखा कि किसान 12-15 माह के लिए प्राप्त करता है। मध्यकालीन ऋण 5 माह से पांच वर्ष की अवधि के लिए होता है। मध्यावधि ऋण ु कृषि यंत्र खरीदने, पशु खरीदने, कुएं की खुदाई या मरम्मत के लिए दीर्घावधि ऋण 5-20 वर्ष का होता है, जो सामान्यतः कीमती कृषि नरी (ट्रैक्टर, हार्वेस्टर इत्यादि) खरीदने या भूमि में स्थाई सुधार के है।

कृषि वित्त के स्रोतों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है— संस्थानिक वित्त एवं गैर-संस्थानिक वित्त। संस्थानिक वित्त स्रोतों के अंतर्गत सरकार, सहकारी एवं वाणिज्यिक बैंक, भूमि विकास बैंक इत्यादि आते हैं जबकि गैर-संस्थानिक वित्त स्रोतों के अंतर्गत महाजन, किसान के संबंधी, समृद्ध जमींदार एवं कमीशन एजेंट आते हैं।

कृषि साख वाणिज्य बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एवं सहकारी बैंकों के माध्यम से उपलब्ध कराया जाता है। अल्पकालीन ऋण व्यवस्था में ग्राम स्तर पर प्राथमिक कृषि साख समितियां (PACS), जिला स्तर पर केंद्रीय जिला सहकारी बैंक (DCCB) व राज्य स्तर पर राज्य सहकारी बैंक (SCB) होते हैं। दीर्घकालीन ऋणों को भूमि विकास बैंकों द्वारा प्रदान किया जाता है।

प्राथमिक कृषि ऋण समिति

समिति की स्थापना ग्राम स्तर पर 10 या इससे अधिक ग्रामीणों द्वारा की जा सकती है। समिति में प्रवेश पाने का अधिकार सभी ग्रामवासियों को समान रूप से प्राप्त है। समिति का प्रत्येक सदस्य समिति की हानियों में बराबर का हिस्सेदार होता है। समिति के लाभों का ग्राम विकास कार्यों में प्रयोग किया जाता है। समिति अल्प ब्याज पर, एक वर्ष की अवधि तक के ऋण प्रदान करती है। प्राथमिक कृषि ऋण समिति के कार्यों को सदस्यों द्वारा निर्वाचित एक निकाय द्वारा संपन्न किया जाता है। समिति में अध्यक्ष, एक सचिव एवं एक कोषाध्यक्ष होता है।

भारत में ग्रामीण क्षेत्र की ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति करने का सबसे कारगर माध्यम प्राथमिक कृषि ऋण समितियां ही हैं। वाणिज्यिक बैंकों या अन्य माध्यमों से इन ग्रामों की ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति संभव नहीं है। प्राथमिक कृषि ऋण समितियों को गठित करना सरल है एवं इनका प्रबंधन भी ग्रामीणों के हाथों में रहता है, साथ ही इनके प्रबंधन में व्यय भी कम होता है इसलिए वर्तमान और भविष्य में ग्रामीण ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन के रूप में प्राथमिक कृषि ऋण समितियां अंतिम उपाय हैं। ये भारत के 99.7 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों को सेवाएं प्रदान करती हैं। प्राथमिक कृषि समितियां ग्राम स्तर पर कार्य करती हैं, इनके ऊपर जिला स्तर पर केंद्रीय सहकारी बैंक या जिला सहकारी बैंक, प्राथमिक कृषि ऋण समितियों के संघ के रूप में कार्य करता है। जिला या केंद्रीय सहकारी बैंक, प्राथमिक कृषि ऋण समितियों को ग्राम स्तर पर ऋण प्रदान करने के लिए कोष प्रदान करता है। केंद्रीय सहकारी बैंक, प्राथमिक कृषि ऋण समिति और राज्य सहकारी बैंक के मध्य वित्तीय अंतर्वर्ती की भूमिका निभाते हैं। केंद्रीय सहकारी बैंक के वित्त और प्रबंध की व्यवस्था निजी व्यक्तियों द्वारा की जाती है। केंद्रीय सहकारी बैंक को तीन स्रोतों से निधि प्राप्त होती है। पहला, स्वयं की हिस्सा पूंजी और रक्षित निधि, दूसरे, जनता द्वारा केंद्रीय सहकारी बैंक में जमा कराया धन, तीसरे राज्य सहकारी बैंक से प्राप्त ऋण। दूसरे स्रोत से इन बैंकों को अधिक धन नहीं प्राप्त हो पाया है और ये बैंक आम जनता की बचतों को आकर्षित करने में असफल ही रहे हैं।

सहकारी ऋण संरचना के शीर्ष पर राज्य सहकारी बैंक होते हैं। राज्य सहकारी बैंक, भारतीय रिजर्व बैंक से ऋण लेकर केंद्रीय सहकारी बैंकों को ऋण प्रदान करते हैं। राज्य सहकारी बैंक का कार्य केवल प्राथमिक कृषि ऋण समिति, केंद्रीय सहकारी बैंक और भारतीय रिजर्व बैंक के मध्य कड़ी का कार्य करना ही नहीं है बल्कि सहकारी उद्यमों और सहकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देना भी है।

सहकारी ऋण प्रणाली वर्तमान में अनेक समस्याओं से ग्रसित है और यह अपेक्षित दायित्वों को निभा पाने में विफल रही है। सहकारी ऋण संस्थाओं से यह अपेक्षा की गई थी कि वे ग्रामीण क्षेत्र में ऋण के प्रमुख स्रोत के रूप में सामने आयेंगे। परंतु सहकारी ऋण संस्थाओं द्वारा कुल कृषि का थोड़ा-सा अनुपात ही प्रदान किया जा रहा है। साथ ही सहकारी ऋण प्रणाली के प्रत्येक स्तर पर बकाया ऋण मात्रा काफी अधिक है और अधिकांश उधार समितियां कमजोर हैं। सहकारी समितियों से ऋण प्राप्त करने में न सिर्फ कृषकों को कठिनाई होती है बल्कि उन्हें समय पर व पर्याप्त मात्रा में ऋण भी प्राप्त नहीं हो पाता है। सहकारी समितियां काश्तकारों, फसल सहभाजकों, भूमिहीन किसान मजदूरों तथा ग्रामीण दस्तकारों को ऋण प्रदान करने में लगभग असफल रही हैं। सीमांत कृषक इन संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने में अपेक्षाकृत अधिक सफल हुए हैं।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

उपभोक्ता सहकारी समितियां

उपभोक्ता सहकारी समितियों की स्थापना का उद्देश्य आम उपभोक्ता को आवश्यक वस्तुओं की उचित कीमतों पर आपूर्ति करना एवं शोषणकारी व्यापारिक व्यवहारों से रक्षा करना है। उपभोक्ता सहकारिताएं न सिर्फ उचित मूल्य पर बेहतर गुणवत्ता की वस्तुएं उपलब्ध कराने में सफल रही हैं अपितु वे कीमतों के व्यवहार पर अंकुश लगाने में कामयाब रहीं हैं। द्वितीय योजना के पश्चात से उपभोक्ता सहकारिताएं सार्वजनिक विपणन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। आज उपभोक्ता सहकारिताएं सार्वजनिक वितरण प्रणाली का अटूट हिस्सा बन चुकी हैं। उपभोक्ता सहकारिताओं को मजबूत करना व उनको देश भर में फैलाना उपभोक्ताओं के हित में है।

उपभोक्ता सहकारिता प्रणाली ग्राम, जिला, राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर क्रमशः प्राथमिक उपभोक्ता सहकारी समिति, केंद्रीय उपभोक्ता सहकारी स्टोर, राज्य उपभोक्ता सहकारी फेडरेशन और राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी फेडरेशन के माध्यम से कार्य करती हैं। दिल्ली में उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सुपर बाजार की स्थापना 1966 में की गई थी।

बहुउद्देशीय सहकारी समितियां

सहकारी आंदोलन की सीमित सफलता के कारणों के विश्लेषण में यह बात सामने आयी कि कृषक जीवन का अभिन्न अंग बने बिना सहकारी आंदोलन सफल नहीं हो सकता है। इसके लिए आवश्यक था कि सहकारी समितियां ऋण उपलब्ध कराने वाली संस्था के सीमित दायरे से निकल कर कृषक आवश्यकताओं के अधिकाधिक पहलुओं से संबद्ध होकर कृषकों की सहायता के लिए आगे आयें। बहुउद्देशीय सहकारी समितियों या सेवा सहकारी समिति की स्थापना करने का सुझाव सर्वप्रथम 1937 में रिज़र्व बैंक के कृषि ऋण विभाग ने दिया था। 1954 में अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण रिपोर्ट में भी छोटी-छोटी सहकारी समितियों को मिलाकर बहुउद्देशीय सहकारी समितियां बनाने का सुझाव दिया गया था। 1959 में अखिल भारतीय कांग्रेस ने सेवा सहकारी समितियों की स्थापना के विचार को स्वीकार किया।

भारत में सेवा सहकारिता समितियों की व्यवहारिकता के सामाजिक एवं आर्थिक कारण उपस्थित हैं। भारतीय किसान पूर्व में साहूकारों व महाजनों पर ऋण आवश्यकताओं के साथ-साथ बीज, कृषि उपकरणों के लिए भी निर्भर रहा करता था। वह अपनी उपज भी महाजन व साहूकारों को बेचता था। भारतीय ग्रामों में व्याप्त निर्धनता, अशिक्षा व परंपरावादी मानसिकता के कारण आवश्यक है कि एक ही समिति किसानों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करे। किसानों की आवश्यकताओं को एकीकृत और अतःसम्बंधी मान कर हल किये जाने की आवश्यकता है।

एकीकृत कृषि सहयोग योजना (आईएसएसी)

एकीकृत कृषि सहयोग योजना (आईएसएसी) 11वीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत चलाई जाने वाली दो योजनाओं—सहकारिताओं के विकास हेतु राष्ट्रीय को-ऑपरेटिव विकास निगम (एनसीडीसी) के सहयोग कार्यक्रम; और सहकारिता शिक्षा एवं प्रशिक्षण—के विलय का परिणाम है। यह योजना 2014-15 से पुनर्संरचित रूप में चलाई गई है। यह केंद्र क्षेत्र की योजना है। आईएसएसी पूरे देश में चलाई जा रही है। 12वीं पंचवर्षीय योजनान्तर्गत इसके लिए 920 करोड़ रुपए का आबंटन किया गया है।

आईएसएसी के दो घटक हैं—(i) असिस्टेंट टू नेशनल को-ऑपरेटिव डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन (एनसीडीसी) प्रोग्राम्स फॉर डेवलपमेंट ऑफ को-ऑपरेटिव्स; (ii) को-ऑपरेटिव एजुकेशन एंड ट्रेनिंग।

आईसीएसी के उद्देश्यः (i) सहकारिताओं की कृषि-संसाधन, खाद्यान्नों का प्रसंस्करण, आगत आपूर्ति, कमजोर वर्गों की सहकारिताओं का विकास, सहकारिताओं का कम्प्यूटरीकरण इत्यादि गतिविधियों के वित्तीयन हेतु एनसीडीसी को सहायता प्रदान करना।

(ii) लोगों के बीच सहकारिता को लेकर जागरूकता का विकास करना।

(iii) सहकारिता कार्मिकों और राज्य सरकार के अधिकारियों को सहकारिताओं में काम करने की शिक्षा एवं प्रशिक्षण जरूरतों को पूरा करना।

आईएसएसी की मुख्य विशेषताएंः (i) सहकारिता विपणन संरचना का पुनरुद्धार करना।

(ii) सहकारिताओं की गतिविधियों का विविधीकरण तथा मूल्य वर्द्धन हेतु सहकारिताओं की क्षमता निर्माण करना।

(iii) सहकारिताओं को भण्डारगृह/शीत भण्डारगृह सुविधाओं से सज्जित करना।

(iv) व्यवसाय प्रचालनों को पूरा करना।

(v) डेयरी, पोल्ट्री, मत्स्यन, जूट, हथकरघा और कीटपालन जैसे सम्बद्ध क्षेत्रों में गतिविधियां बेहतर करना।

(vi) एकीकृत क्षेत्र विकास में निम्न स्तर पर सहकारिताओं को शामिल करना।

(vii) एनसीडीसी के विशिष्ट कार्यक्रमों एवं योजनाओं के माध्यम से सहकारी रूप से अत्यंत पिछड़े/अल्प विकसित राज्यों में और दुर्बल वर्गों के सहकारिताओं की मदद करना।

कृषि सहयोग विभाग (डीएसी) एनसीडीसी को सहकारी रूप से विकसित, अल्प विकसित, अत्यंत पिछड़े राज्यों में प्रोजेक्ट की लागत का क्रमशः 15 प्रतिशत, 20 प्रतिशत और 25 प्रतिशत वित्तीयन करेगा। प्रोजेक्ट की शेष लागत एनसीडीसी द्वारा आवधिक ऋण/कार्यशील पूंजी ऋणों के रूप में स्वयं के स्रोतों से पूरा करेगा।

भूमि विकास बैंक

भूमि विकास बैंक दीर्घावधि (लगभग 20 वर्ष अधिकतम) ऋण प्रदान करते हैं। ये बैंक किसान की भूमि बंधक रखते हैं। भूमि विकास बैंक, सहकारी साख संरचना के भाग हैं। हालांकि ये अधिकांशतः तमिलनाडु, कर्नाटक व आंध्र प्रदेश में ही अवस्थित हैं। भूमि विकास बैंकों के पूंजी के स्रोत हैं—शेयर कैपिटल, सदस्यों तथा गैर-सदस्यों द्वारा जमा पूंजी, ऋण-पत्रों का निर्गमन, ऋण, सरकार द्वारा सब्सिडी की अदायगी।

वाणिज्यिक बैंक

वाणिज्यिक बैंक कृषि को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष वित्त उपलब्ध कराते हैं। ये बैंक कृषि गतिविधियों के लिए अल्प व मध्यम काल के लिए प्रत्यक्ष ऋण प्रदान करते हैं। कृषि क्षेत्र को वाणिज्यिक बैंक अप्रत्यक्ष वित्त, प्राथमिक कृषि साख समितियों को उर्वरक व अन्य आगत खरीदने के लिए ऋण उपलब्ध कराते हैं।

वाणिज्यिक बैंकों ने किसानों को कृषि आगतों को खरीदने और नई प्रौद्योगिकियों को अपनाने में सक्षम बनाया है। वाणिज्यिक बैंकों के प्रयास से भी निजी कृषि निवेश में वृद्धि हुई है। बैंक विस्तार ने कृषि क्षेत्र के विकास एवं आधुनिकीकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालांकि, वाणिज्यिक बैंकों की कुछ समस्याएं हैं। ग्रामीण ऋण के विविधीकरण एवं तीव्र विस्तार के कारण सेवाओं की गुणवत्ता खराब हुई है। अधिकांश संख्या में शाखाओं में भी काम की उच्च लागत आती है। इन बैंकों की वसूली स्थिति भी बेहद कमजोर है। ऋण की उपलब्धता में भौगोलिक अंतर को, जिसे सहकारी सोसायटी नहीं भर पाई, अभी तक पर्याप्त रूप से वाणिज्यिक बैंक नहीं भर पाए हैं। यहां पर एक ओर वाणिज्यिक बैंकों के बीच और दूसरी ओर सहकारी बैंकों और लीड बैंकों के बीच समन्वय का भी अभाव है। ग्रामीण क्षेत्र में वाणिज्यिक बैंकों को समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ग्रामीण बैंकों की अधिकाश शाखाएं घाटे में चल रही हैं क्योंकि शाखाएं अधिक हैं और लेनदेन कम है जिससे बैंकों का ओवरहेड व्यय अधिक हो जाता है इसका एक और कारण अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में वस्तु-विनिमय (barter system) का प्रचलन होना भी है। ओवरड्यू तथा ऋण माफी (सरकार द्वारा) बैंकों की क्षति को और बढ़ा देती है। अधिकांश बैंक पूंजी पर्याप्तता अनुपात को बनाए रखने में भी असमर्थ हैं। जमा पूंजी को जुटाने (Deposit mobilisation) के क्षेत्र में, वाणिज्यिक बैंकों को इस तरह म्युचुअल फंड, आवास वित्त निगमों, पट्टे पर देने और निवेश कंपनियों के रूप में गैर-बैंकिंग वित्तीय मध्यवर्ती संस्थाओं से कड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इन मध्यवर्ती संस्थाओं की बैंकों की तुलना में उच्च ब्याज दर होती है। सहकारी ऋण समितियों के साथ समन्वय की समस्या भी है। सुधारोत्तर काल (Post-reform) में ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित बैंकों की काफी शाखाओं को बंद करना पड़ा तथा छोटे ऋण लेने वाले छोटे किसानों को परेशानी का सामना करना पड़ा। वाणिज्यिक बैं[क] प्रमुख क्षेत्रों को ऋण देने के लक्ष्यों को प्राप्त कर लेते हैं लेकिन कृषि क्षेत्र को ऋ[ण]

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

के लक्ष्य कभी पूर्ण रूप से हासिल नहीं हो पाते। समृद्ध किसान ही इस प्रकार के ऋण एवं वित्त को हासिल कर पाते हैं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

कृषि एवं ग्रामीण विकास में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। ये बैंक ग्रामीण क्षेत्र में कृषि व्यापार, उद्योग व अन्य उत्पादक गतिविधियों के लिए ऋण उपलब्ध कराते हैं।

1975 के एक अध्यादेश के प्रावधानों तथा बाद में 1976 के क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम के अंतर्गत क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (RRB) की स्थापना की गई। इनका लक्ष्य ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विकसित करना तथा ग्रामीण व कृषि क्षेत्र के संस्थागत ऋण को संवर्धित करने की दृष्टि से 'सहकारी ऋण संरचना' के एक अनुपूरक चैनल का सर्जन करना था। इनका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के अपेक्षाकृत असेवित (unserved) वर्गों, जैसे कि छोटे व सीमांत किसानों, खेतिहर मजदूरों व सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों, की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करना था।

भारत सरकार, संबंधित राज्य सरकार एवं क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के प्रायोजक बैंक ने मिलकर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (RRBs) की शेयर पूंजी में क्रमशः 50 प्रतिशत, 15 प्रतिशत तथा 35 प्रतिशत का योगदान दिया था। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के संचालन का क्षेत्र एक राज्य में अधिसूचित कुछ जिलों तक ही सीमित है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (RRBs) के पूंजी स्रोतों में सम्मिलित हैं—स्वाधिकृत निधि, जमा धन तथा, नाबार्ड, प्रायोजक बैंकों सिडबी व राष्ट्रीय आवास बैंक आदि अन्य स्रोतों से प्राप्त कर्ज।

वर्ष 2001 में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त वी.एस. व्यास समिति ने ग्रामीण ऋण प्रणाली में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की प्रासंगिकता और इसको व्यवहार्य बनाने के लिए विकल्प की जांच की। इसकी अनुशंसाओं के आधार पर बेहतर बुनियादी ढांचे, कम्प्यूटरीकरण, अनुभवी कार्यबल, विज्ञापन व विपणन प्रयासों के माध्यम से बेहतर ग्राहक सेवा प्रदान करने को दृष्टिगत रख, एक समेकित प्रक्रिया व कार्यविधि को आरम्भ किया गया। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (RRBs) के एकीकरण व संयोजन को दो चरणों में किया गया तथा प्रथम चरण में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (RRBs) की संख्या में काफी कमी आई। संयोजन व पुर्नसंरचना के द्वितीय चरण, जो कि 2012 से चल रहा है, में विभिन्न प्रायोजक बैंकों के अधीन, एक राज्य में भौगोलिक रूप से व्यापक आरआरवी (RRBs) को संयोजित करके मात्र एक आरआरवी (मध्यम आकार के राज्यों में) तथा दो या तीन आरआरवी (बड़े आकार के राज्यों में) कर दिया गया।

के.सी. चक्रवर्ती समिति ने 2010 में सभी (RRBs) की वित्तीय स्थितियों की समीक्षा की तथा 82 में से 40 (RRBs) के पुनर्पूंजीकरण की सिफारिश की। शेष (RRBs) इस स्थिति में थे कि CRAR के वांछित स्तर को अपने आप प्राप्त कर सके। केंद्र सरकार तथा अन्य शेयरधारकों ने समिति की सिफारिशों को मानते हुए RRBs के पुनर्पूंजीकरण का फैसला लिया और इसके लिए 2200 करोड़ रुपए तक के फंड का प्रावधान किया। अधिकांश सुधारात्मक कदम RRBs को सक्षम बनाते हैं कि वे बिना किसी पर बोझ बने पूंजी की वसूली कर सके तथा साथ-साथ ग्रामीणों को ऋण प्रदान के मूल मिशन को भी बनाए रखे।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (संशोधन) अधिनियम, 2015: क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (संशोधन) अधिनियम 2015, फरवरी 2016 से लागू हुआ। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का पूंजी आधार बढ़ाने, उनकी क्षमता में सुधार लाने के उद्देश्य से 1976 के ग्रामीण क्षेत्रीय बैंक अधिनियम में संशोधन किए गए।

मूल अधिनियम में प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (आरआरवी) के लिए प्राधिकृत पूंजी 5 करोड़ रु. की गई थी। 25 लाख रुपए से कम की प्राधिकृत पूंजी निषेध थी। संशोधन अधिनियम द्वारा प्राधिकृत पूंजी 2000 करोड़ रुपए कर दी गई है और यह भी कहा गया है कि प्राधिकृत पूंजी 1 करोड़ रुपए से कम नहीं होनी चाहिए।

मूल अधिनियम के अनुसार, 50 प्रतिशत हिस्सेदारी केंद्र सरकार, 15 प्रतिशत संबंधित राज्यों और 35 प्रतिशत प्रायोजक बैंकों की होती थी। संशोधन अधिनियम के अनुसार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक केंद्र सरकार, राज्य सरकार तथा प्रायोजित बैंक को छोड़कर दूसरे स्रोतों से पूंजी जुटा सकता है, लेकिन केंद्र सरकार और प्रायोजित बैंक की संयुक्त शेयर पूंजी 51 प्रतिशत से कम नहीं होने पाए। यदि संबंधित राज्य सरकार की शेयर पूंजी 15 प्रतिशत से कम की जानी हो तो उससे सलाह मशविरा किया जाए।

मूल अधिनियम के तहत् प्रायोजक बैंकों से वित्तीय सहायता जारी रहने का प्रावधान किया गया है। इन प्रायोजक बैंकों के लिए आवश्यक था कि वे (i) बैंकों की शेयर पूंजी की सदस्यता लें; (ii) अपने कर्मचारियों की कुशलता को बढ़ाएं; (iii) पहले पांच साल प्रबंधन तथा वित्तीय सहायता उपलब्ध कराएं। इस संशोधन अधिनियम द्वारा पांच साल की सीमा को समाप्त कर दिया गया है।

मूल अधिनियम में बोर्ड के निदेशकों का कार्यकाल दो साल से अधिक नहीं था। संशोधन अधिनियम में बोर्ड के निदेशकों का कार्यकाल 2 वर्ष से बढ़ाकर 3 वर्ष कर दिया गया है।

संशोधन अधिनियम में यह प्रावधान भी जोड़ा गया है कि हिस्सेदारों की कुल इक्विटी हिस्सा पूंजी के योग पर ही हिस्सेदारों द्वारा निदेशक का चुनाव हो सकता है। यदि शेयरहोल्डर को इक्विटी शेयर पूंजी 10 प्रतिशत या इससे कम जारी की जाती है, तो इन शेयरहोल्डरों द्वारा एक निदेशक का चुनाव किया जाएगा। दो निदेशकों के चुनाव के लिए 10 प्रतिशत से 25 प्रतिशत इक्विटी शेयर और तीन निदेशकों के लिए 25 प्रतिशत या इससे ऊपर इक्विटी शेयर पूंजी जारी करने का प्रावधान रखा गया है। आवश्यकतानुसार केंद्र सरकार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का प्रभावी कार्यकरण सुनिश्चित करने हेतु निदेशक बोर्ड के लिए एक अधिकारी की नियुक्ति कर सकती है।

मूल अधिनियम के तहत् प्रत्येक वर्ष 31 दिसंबर को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की क्लोजिंग का प्रावधान था। संशोधन अधिनियम में वित्तीय वर्ष एक समान रखने के उद्देश्य से तिथि 31 मार्च कर दी गई है।

नाबार्ड

कृषि एवं ग्रामीण विकास हेतु राष्ट्रीय बैंक (नाबार्ड) ग्रामीण क्षेत्रों व कृषि को साख प्रदान करने वाली सर्वोच्च संस्था है। इसकी स्थापना 12 जुलाई, 1982 को की गई थी। नाबार्ड को रिजर्व बैंक के अधीन कृषि साख विकास, ग्रामीण आयोजन, साख विक्रय और कृषि पुनर्वित्तीय विकास निगम के कार्यों को सौंपा गया है। नाबार्ड का गठन शुरुआत में 100 करोड़ रुपए की पूंजी से किया गया था। भारत सरकार और आरबीआई के बीच शेयर पूंजी में संशोधन करने के दृष्टिगत 31 मार्च, 2015 को इसकी चुकता पूंजी 5,000 करोड़ रुपए की गई। जिसमें भारत सरकार का हिस्सा 4,980 करोड़ रुपए (99.60 प्रतिशत) और भारतीय रिजर्व बैंक का हिस्सा 20 करोड़ रुपए (0.40 प्रतिशत) रखा गया।

ग्रामीण आधारिक संरचना विकास फंड (आरआईडीएफ)

1995-96 में दो हजार करोड़ रुपये का पहला ग्रामीण आधारिक संरचना विकास फंड (आरआईडीएफ) स्थापित किया गया जिसका उद्देश्य राज्य सरकारों तथा राज्य सरकारों के अधीन कार्यरत निगमों को वित्तीय साधन उपलब्ध कराना था ताकि वे विभिन्न ग्रामीण आधारिक परियोजनाओं को पूरा कर सकें। इस योजना को वार्षिक आधार पर लागू रखा गया है। आरआईडीएफ के अंतर्गत कई उद्देश्यों के लिए ऋण दिए जाते हैं जैसे सिंचाई परियोजनाएं, जलसंभर प्रबंधन, ग्रामीण सड़कों व पुलों का निर्माण इत्यादि।

राज्य भूमि विकास बैंक (एसएलडीबी) राज्य को-ऑपरेटिव कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (एससीएआरडीबी) के ऋण-पत्रों में निवेश

यह केंद्रीय योजना है जिसका प्रारंभ 1966-67 में किया गया था। इस योजना का कोई घटक नहीं है। वर्ष 2014-15 के लिए इसमें 25 करोड़ रुपए का आवंटन किया गया है। यह योजना देश के उन सभी राज्यों और केंद्र शासित क्षेत्रों में चलाई जा रही है जहां एसएलडीबी या एससीएआरडीबी मौजूद हैं। यह योजना नाबार्ड के माध्यम से एसएलडीबी/एससीएआरडीबीटी द्वारा जारी ऋण-पत्रों में निवेश करके क्रियान्वित की गई है। इसमें पंचायती राज संस्थाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका होगी।

केंद्र और सम्बद्ध राज्य सरकारों द्वारा प्रदत्त कुल प्रवाह और संतुलन का 95 प्रतिशत तक नाबार्ड योगदान देगा और विशेष विकास ऋण-पत्रों के संदर्भ में यह 50 : 50 के अनुपात में होगा। सामान्य ऋण-पत्रों के संदर्भ में, भारत सरकार/राज्य

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

सरकारों प्रत्येक का कुल फ्लोटेशन के 10 प्रतिशत का हिस्सा होगा और शेष योगदान एसआईसी, बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों द्वारा किया जाएगा।

योजना के उद्देश्य एवं विशेषताएं: • एसएलडीबी/एससीएआरडीबी द्वारा ऋण-पत्र जारी करके किसानों को दीर्घावधिक ऋण प्रदान करने के लिए संसाधन जुटाना।

• ऋण-पत्रों को लघु सिंचाई, बागवानी, पौधारोपण, खेत यंत्रीकरण, कम्पाउण्ड दीवार, पशुओं के लिए शिविर, फार्म हाउस, गैर-कृषि क्षेत्र, पशुपालन, ग्रामीण भण्डारगृह, ग्रामीण आवास, भूमि सुधार, इत्यादि हेतु जारी करना।

• एसएलडीबी/एससीएआरडीबी द्वारा जारी ऋण-पत्रों में नाबार्ड, सम्बद्ध राज्य सरकारों और भारत सरकार द्वारा निवेश किया जाएगा।

किसान क्रेडिट कार्ड योजना

किसान क्रेडिट कार्ड योजना वर्ष 1998-99 में वाणिज्यिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों से प्राप्त ऋण को सुसाध्य बनाने के लिए प्रारंभ की गई थी।

योजना का कार्यान्वयन पूरे देश में व्यापक संस्थागत क्रेडिट फ्रेमवर्क द्वारा, जिसमें वाणिज्यिक बैंक, RRBs तथा सहकारी संस्थाओं को सम्मिलित किया गया है तथा इसे कृषकों व बैंकरों का व्यापक समर्थन प्राप्त है।

किसान क्रेडिट कार्ड के माध्यम से किसानों को ऋण सुविधा मिलती है जिससे समय रहते किसान खेती के लिए उपकरण, बीज, एवं जीवन संबंधी जरूरी कार्यों को पूर्ण कर पाता है। किसान क्रेडिट कार्ड (केसीसी) के अंतर्गत किसानों को एक क्रेडिट कार्ड एवं पासबुक उपलब्ध कराई जाती है, जिसमें उपभोक्ता का नाम, पता, जमीन की जानकारी, उधार की अवधि, वैधता अवधि, इत्यादि सूचनाएं होती हैं और यह परिचय-पत्र के रूप में भी काम करता है।

किसान क्रेडिट कार्ड के फायदे—(i) किसान क्रेडिट कार्ड एक बेहद सरल प्रक्रिया है जिसे सुगमता से अनपढ़ या कम साक्षर व्यक्ति भी समझ सकता है और उसका इस्तेमाल कर सकता है; (ii) केसीसी के अंतर्गत किसान को प्रत्येक वर्ष ऋण की प्रक्रिया नहीं करनी पड़ती (iii) किसान क्रेडिट कार्ड के कारण बिना किसी चिंता के अपने खेत के लिए बीज, खाद और कीटनाशक खरीद सकता है, (iv) केसीसी ऋण अदा करने का समय किसान की सुविधानुसार अर्थात् फसल के बिकने के बाद तक होता है, (v) किसान क्रेडिट कार्ड के माध्यम से किसान बैंक की किसी भी शाखा से धन ले सकता है।

किसान क्रेडिट कार्ड के लिए वे सभी किसान आवेदन कर सकते हैं जो कि स्वयं के खेत में कृषि उत्पादन में हो या अन्य किसी खेत में कृषि का कार्य करते हैं या किसी भी तरह के फसल उत्पादन से जुड़े हों। वे एकल या सम्मिलित क्रेडिट कार्ड प्राप्त कर सकते हैं। किसान क्रेडिट कार्ड के लिए किसान को बैंक के संचालन क्षेत्र में होना जरूरी है।

किसान क्रेडिट कार्ड के अंतर्गत बीज, उर्वरक, फसल कटाई के बाद का खर्च, जानवरों का खर्च, अन्य कृषि संबंधी गतिविधियों में लगने वाला खर्च, किसान के घर की आवश्यकताओं के साथ कार्यशील पूंजी का उत्पादन, मत्स्य पालन, इत्यादि के लिए लघु अवधि के ऋण उपलब्ध कराता है।

केसीसी के अंतर्गत दी जाने वाली ऋण की राशि कृषि योग्य क्षेत्र, पूर्व उत्पादन, जमीन की उर्वरकता एवं खेती को पुनः कृषि योग्य बनाने में लगने वाली लागत, इत्यादि पर निर्भर करती है।

केसीसी के अंतर्गत ऋण सुविधाः • प्रथम वर्ष के लिए अल्पावधि क्रेडिट सीमा निश्चित की गई है जोकि फसलों की खेती, प्रस्तावित फसल पद्धति पर निर्भर करती है।

• फसलों की देख-रेख का खर्च, उनका बीमा, किसानों की संपत्ति का बीमा एवं दुर्घटना बीमा।

• आने वाले प्रत्येक 1-5 वर्ष में ऋण 10 प्रतिशत बढ़ाकर दिया जाएगा और अल्पावधि क्रेडिट सीमा को पांचवें वर्ष में बढ़ाकर 150 प्रतिशत तक किया जाएगा।

• कृषि औजार/उपकरण इत्यादि पर निवेश होने वाली क्रेडिट राशि और एक वर्ष की अवधि के भीतर लौटाई गई राशि की जानकारी केसीसी की सीमा निर्धारित करते समय देखी जाती है।

• अल्पावधि ऋण पांच वर्ष के लिए दिया जाएगा एवं अनुमानित निवेश ऋण केसीसी की अधिकतम अनुमेय सीमा के तौर पर इंगित की जाएगी।

• केसीसी धारकों को एटीएम-कम-डेबिट कार्ड दिया जाएगा, साथ ही इसका इस्तेमाल भी सिखाया जाएगा।

• केसीसी सीमा 3 लाख होने पर प्रोसेसिंग शुल्क माफ कर दिया जाता है।

• केसीसी अकाउंट प्रति वर्ष दी गई शर्तों के अंतर्गत नवीनीकृत किए जाने चाहिए।

• योग्य फसलों को फसल बीमा योजना के अंतर्गत शामिल किया जाएगा जो कि राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना के अंतर्गत आएगा।

अधिकतम क्रेडिट सीमा 3 लाख है। ऐसे कृषक जिनका क्रेडिट स्कोर अच्छा है उन्हें ब्याज दर में सब्सिडी दी जा सकती है तथा उनकी क्रेडिट सीमा भी बढ़ाई जा सकती है। किसानों को अपने कर्ज का भुगतान फसल कटाई के बाद उसको बेच कर करना होता है। सामान्यतः किसानों की 12 महीने की ऋण अवधि होती है। यदि किसान की फसल किसी सीजन में नुकसान हो जाती है तो ऋण अवधि को चार या अधिक वर्षों के लिए बढ़ाया जा सकता है। इसका निर्णय क्रेडिट कार्ड जारी करने वाला बैंक कार्ड धारक की रेटिंग के आधार पर करता है।

यह योजना क्रेडिट कार्ड धारकों के प्रत्यक्ष हिंसक, तथा बाह्य कारण से हुई दुर्घटना के कारण हुई मृत्यु अथवा स्थायी विकलांगता के जोखिम को भी कवर करती है।

'RuPay' एक भारतीय घरेलू कार्ड योजना है जो राष्ट्रीय भुगतान कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया (NPCI) द्वारा प्रकल्पित एवं प्रारम्भ की गई। इसका सृजन भारतीय रिजर्व बैंक की, भारत में घरेलू तथा भुगतान की बहुस्तरीय प्रणाली बनाने संबंधी आकांक्षा को पूर्ण करने हेतु किया गया है। 'RuPay' सभी भारतीय बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं के इलेक्ट्रॉनिक भुगतान की सुविधा देता है तथा भारत में मास्टरकार्ड एवं वीसा के साथ प्रतिस्पर्धा करता है। नाबार्ड ने जनवरी 2013 में 'स्पेशल प्रोजेक्ट यूनिट—किसान क्रेडिट कार्ड (SPU-KCC) की स्थापना की तथा इसे अधिकृत किया कि यह देशभर के क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों एवं सहकारी बैंकों को 'RuPay KCC' जारी करने के लिए प्रेरित करे। एक व्यापक लक्ष्य यह है कि एक कैशलेस अर्थ तंत्र विकसित किया जाए जिससे कृषक वर्ग को भी देश के शहरी क्षेत्र की भांति अद्यतन बैंकिंग सुविधाएं प्रदान की जा सकें।

स्व-सहायता संगठनों व बैंकों का अनुबंधन कार्यक्रम

आमतौर पर SHG लघु उद्यमियों का एक समूह होता है जिसमें सब स्वेच्छा से थोड़े-थोड़े पैसों को जोड़कर एक कॉमन फंड में योगदान करते हैं, जिससे आपात स्थिति की जरूरतों में परस्पर सहायता की जा सके। ये अपने स्रोतों से पैसा इकट्ठा करते हैं जिससे समूह मजबूत बन सके एवं प्रत्येक व्यक्ति को स्वरोजगार मिल सके। सामूहिक बुद्धिमत्ता व साथियों का दबाव यह सुनिश्चित करता है कि कर्ज का उपयोग सही प्रकार से हो और पुनर्भुगतान समय पर हो, इस प्रकार किसी जमानत की आवश्यकता नहीं रहती।

स्वयं सहायता समूह (SHG)—बैंक लिंकेज योजना (SBLP) को एस.के. कालिया समिति की सिफारिशों पर चलाया गया। SBLP योजना के अधीन काफी सारे SHG ने स्वयं की पूंजी को इकट्ठा करके बैंकों से उधार लिया एवं नियमित पुर्नभुगतान का अच्छा ट्रैक रिकार्ड स्थापित किया। SBLP के अंतर्गत, SHG को बैंकों द्वारा वित्त पोषण, बढ़ावा देना तथा मार्गदर्शन किया जा सकता है; बैंकों द्वारा वित्तपोषण तथा सरकारी एजेंसियों अथवा एनजीओ द्वारा संवर्धित हो सकती हैं; अथवा एनजीओ द्वारा संवर्धित व एनजीओ/औपचारिक संस्थाओं का उपयोग मध्यवर्ती एजेसियों के रूप में करते हुए बैंकों द्वारा वित्त पोषित हो सकता है। SBLP में वाणिज्यिक बैंकों, सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की सक्रिय भागीदारी होती रही है।

कृषि बीमा

किसानों को कृषि उत्पादन पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों तथा इनके परिणामस्वरूप होने वाली क्षति से किसानों को सुरक्षित करने के प्रयास निरंतर किए जा रहे हैं।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना

न्यूनतम समर्थन मूल्यों में बिना ज्यादा वृद्धि किए बार-बार होने वाली कृषि आपदाओं के प्रभाव को कम करने के लिए एनडीए सरकार ने जनवरी 2016 में प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (PMFBY) की घोषणा की। इस योजना का कार्यान्वयन 2016 की खरीफ फसल से किया गया। इस योजना के आरम्भ के साथ ही पूर्ववर्ती योजनाएं,

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

भारतीय कृषि बीमा निगम लिमिटेड

कृषि बीमा के लिए कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन एक अलग संगठन का गठन 20 दिसंबर, 2002 से भारतीय कृषि बीमा निगम (एआईसीआईएल) के नाम से किया गया। इस प्रयोजन के लिए भारतीय सामान्य बीमा निगम (जीआईसी) के तहत सार्वजनिक क्षेत्र की चार सामान्य बीमा कंपनियों—(i) नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (ii) न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (iii) ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (iv) यूनाइटिड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड तथा नाबार्ड (एनएबीआरबी) से पूंजी जुटाई गई।

यथा—राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (NIAS) तथा संशोधित राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (MNIAS) को समाप्त कर दिया गया। अपितु, मौसम आधारित कृषि बीमा योजना (WBCIS) तथा नारियल एवं ताड़ बीमा योजना जारी रहेगीं। हांलाकि WBCIS के तहत् देय प्रीमियम को PMFBY के सममूल्य पर लाया गया। चूंकि PMFBY, ने पहले की NAIS तथा MNAIS को स्थापनापन्न करके लाई गई हैं अतः कोई सेवा कर लागू नहीं होगा।

यह योजना, उन किसानों, जिन्होंने ऋण लिया है, पर प्रीमियम के दबाव को तो कम करेगा ही साथ ही विपरीत मौसम द्वारा हानि से भी बचाव करेगा।

यह भी निर्णय किया गया है कि बीमा क्लेम की भुगतान प्रक्रिया को सरल तथा तीव्र बनाया जाए जिससे किसानों को फसल बीमा योजना से संबंधित किसी परेशानी का सामना न करना पड़े। इस योजना को संबंधित राज्य सरकारों की मदद से भारत के प्रत्येक राज्य में कार्यान्वित किया जाएगा। योजना भारत सरकार के कृषि एवं कृषक कल्याण मंत्रालय द्वारा प्रबंधित की जाएगी।

लक्ष्यः योजना का लक्ष्य राष्ट्रीय आपदा, कीटों द्वारा नुकसान तथा फसल रोग के परिणामस्वरूप किसी भी अधिसूचित फसल के खराब होने पर किसानों को बीमा सुरक्षा तथा वित्तीय सहायता प्रदान करना, किसानों की आय को स्थिर रखना जिससे कि कृषि प्रक्रिया सतत रूप से जारी रह सके; किसानों को प्रेरित करना कि वे कृषि के नवीन व आधुनिक तरीकों को अपनाए; कृषि क्षेत्र में ऋण के प्रवाह को सुनिश्चित करना है।

कम प्रीमियमः किसानों के द्वारा खरीफ फसलों के लिए एकसमान रूप से 2 प्रतिशत प्रीमियम देना होगा तथा यह रबी फसलों के लिए 1.5 प्रतिशत होगा। वार्षिक व्यवसायिक अथवा बागान फसलों के मामले में प्रीमियम का भुगतान मात्र 5 प्रतिशत अथवा कुल प्रीमियम का 50 प्रतिशत होगा। इस प्रकार किसानों द्वारा देय प्रीमियम की दर काफी कम होगी। शेष प्रीमियम का भुगतान सरकार द्वारा किया जाएगा। जिससे कि राष्ट्रीय आपदा की स्थिति में किसानों को हुए फसल के नुकसान की भरपाई पूरी बीमा राशि प्रदान करके की जा सके। सरकारी सब्सिडी की कोई ऊपरी सीमा नहीं रखी गई है, यहां तक कि यदि शेष राशि 90 प्रतिशत भी है तो भी सरकार द्वारा इसे वहन किया जाएगा। (प्रीमियम की शेष राशि का वहन, पूर्ववर्ती योजनाओं की तरह, केंद्र सरकार व राज्य सरकारों द्वारा किया जाएगा।)

शामिल किए गए किसानः सभी किसान चाहे वे पट्टेदार, जोतदार अथवा बंटाईदार हों और यदि वे अधिसूचित क्षेत्रों में अधिसूचित फसलों की खेती कर रहे हैं तो उन्हें कवरेज का लाभ मिलेगा। वे किसान जिन्होंने ऋण नहीं लिया है उन्हें भूमि रिकार्ड के दस्तावेजों को जमा करना अथवा संबंधित राज्य सरकारों द्वारा स्वीकृत कोई और दस्तावेजों को जमा कराना होता है। सभी किसान जो अधिसूचित फसलों हेतु वित्तीय संस्थाओं द्वारा मौसमी संचालन ऋणों का लाभ उठा रहे हैं उन्हें अनिवार्य रूप से कवरेज मिलेगा। गैर ऋणी किसानों के लिए यह योजना ऐच्छिक है। अनुसूचित जाति व जनजातियों, महिला कृषकों को इस योजना का अधिकतम कवरेज मिल सकें इसके लिए विशेष प्रयास किए जाएंगे। इसके अंतर्गत बजट का आवंटन व उपयोग राज्य में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/सामान्य वर्ग तथा महिलाओं की भूमि के अनुपात में होगा। इन फसल बीमा योजनाओं के कार्यान्वयन तथा किसानों से फीडबेक प्राप्त करने हेतु पंचायती राज संस्थाओं को भी सम्मिलित किया जा सकता है।

सम्मिलित की गई फसलेंः सम्मिलित की गई फसलें हैं—खाद्य फसलें (अनाज, बाजरा, जौ, ज्वार तथा दालें); तिलहन; तथा वार्षिक व्यावसायिक/वार्षिक बागवानी फसलें।

जोखिम कवरेजः योजना के अंतर्गत फसलों के स्तर एवं फसलों की क्षति को करने वाले निहित जोखिम हैं: बोवाई/रोपण में बाधा संबंधित जोखिम—कम वर्षा अथवा प्रतिकूल मौसमी परिस्थितियों के कारण बीमित क्षेत्र में बुआई व फसल रोपण में रुकावट आती है; खड़ी फसल (बुआई से कटाई)—रोके न जा सके जोखिमों के कारण पैदावार में होने वाली हानि की भरपाई के लिए व्यापक जोखिम बीमा प्रदान किया जाता है, इस प्रकार के रोके न जा सकने वाले रिस्क हैं—सूखा, बाढ़ व जलप्लावन, कीटों द्वारा फसल नष्ट तथा रोग, आग, बिजली गिरना, भू-स्खलन, आंधी, तूफान, चक्रवात, झंझावात, आदि; फसल कटाई के बाद की क्षति हैं—यह कवरेज फसल कटाई के दो सप्ताह तक ही उपलब्ध रहता है तथा उन्हीं परिस्थितियों में होता है जबकि फसल कटाई के पश्चात सूखने के लिए खेत में छोड़ी गई हो एवं बेमौसमी वर्षा, चक्रवातों, चक्रवाती वर्षा से कटी हुई फसल को क्षति हो; स्थानीय आपदा—जब क्षति किसी स्थानीय आपदा जैसे भूस्खलन, बाढ़, ओलावृष्टि के कारण किसी अलग-थलग से क्षेत्र में हो।

बीमे का लाभ उन परिस्थितियों में हुई क्षति में नहीं मिलेगा जब क्षति युद्ध के कारण, स्वयं के जोखिम, न्यूक्लियर जोखिम, दंगे, दुर्भावनापूर्ण क्षति, चोरी अथवा दुश्मनों द्वारा पहुंचाई क्षति, पालतू अथवा जंगली पशुओं द्वारा चराई या क्षति तथा अन्य निवारण किए जा सकने वाले कारणों से हो।

बीमे की इकाईः बड़े पैमाने पर हुई आपदा में प्रत्येक अनुसूचित फसल हेतु योजना का कार्यान्वयन 'क्षेत्र अप्रौच आधार' (परिभाषित क्षेत्रों) पर किया जाना है। बीमा इकाई को ऐसे क्षेत्र के साथ मैपिंग किया जा सकता है जिसका किसी अनुसूचित फसल के लिए समरूप रिस्क प्रोफाइल हो। निश्चित विपदा की वजह से स्थानीय आपदा जोखिम एवं फसल कटाई के बाद की क्षति के लिए मूल्यांकन की इकाई प्रत्येक किसान का प्रभावित बीमा क्षेत्र होगा।

नियंत्रणः बीमा कंपनियों के कार्यों का संपूर्ण नियंत्रण कृषि तथा कृषक कल्याण मंत्रालय द्वारा किया जाता है। मंत्रालय ने AIC तथा कुछ निजी बीमा कंपनियों को सरकार द्वारा प्रायोजित कृषि फसल बीमा योजनाओं में भागीदारी के लिए नामित किया है। निजी कंपनी के चुनाव का कार्य राज्यों पर छोड़ा गया। एक राज्य के लिए एक बीमा कंपनी होगी। कार्यान्वयन एजेंसी का चुनाव तीन वर्ष तक के लिए किया जा सकता है; अपितु, राज्य सरकार/केंद्र शासित प्रदेश तथा बीमा कंपनी यदि चाहे तो शर्तों पर पुनः बातचीत कर सकती है।

मौजूदा 'फसल बीमा पर राज्य स्तरीय समन्वय समिति' (SLCCCI), संबंधित राज्य में योजनाओं की निगरानी के लिए उत्तरदायी होगी। जबकि, राष्ट्रीय स्तर पर योजना की निगरानी, संयुक्त सचिव (ऋण) की अध्यक्षता में राष्ट्रीय स्तरीय निगरानी समिति (NLMC), कृषि समन्वय तथा कृषक कल्याण विभाग (DAC & FW) द्वारा होगा।

प्रौद्योगिकी समर्थनः प्रौद्योगिकी के प्रयोग को काफी स्तर तक प्रोत्साहित किया जाएगा। फसल कटाई के डाटा को अपलोड करने व तस्वीरें खींचने के लिए स्मार्ट फोन, GPS तकनीक तथा रिमोट सेंसिंग ड्रोन का उपयोग किया जाएगा जिससे क्लेम भुगतान में देरी को कम किया जा सके। भारतीय सरकार ने बीमा पोर्टल की भी शुरुआत की है जिससे किसानों की सूचनाओं का प्रसार अच्छी तरह से हो, पारदर्शिता आए, बेहतर समन्वय एवं बेहतर प्रशासन हो। एक एन्ड्राएड आधारित फसल बीमा एप्लिकेशन की शुरुआत भी की गई।

पूर्ववर्ती योजनाओं से भिन्नताः PMKBY बीमा के संपूर्ण कवरेज को देती है जबकि संशोधित NAIS योजना में इसकी एक सीमा बांधी गई थी। यह स्थानीय रिस्क जैसे बाढ़ को भी सम्मिलित करती है जो कि पहले की योजनाओं में सम्मिलित नहीं थी। यह फसल कटाई के बाद होने वाली क्षति को भी कवरेज देता है; NAIS इसे कवरेज नहीं देता तथा MNAIS मात्र तटीय क्षेत्रों को सम्मिलित करता है।

यह योजना उन किसानों पर प्रीमियम के भार को कम करेगी जिन्होंने कृषि के लिए ऋण लिया है। NAIS तथा MNAIS में प्रीमियम 3.5-8 प्रतिशत था। सरकार द्वारा सब्सिडी की कोई ऊपरी सीमा नहीं है। पहले प्रीमियम दर की एक ऊपरी सीमा थी। अब इस सीमा को हटा दिया गया है तथा किसानों को पूरी बीमित राशि का क्लेम बिना कटौती के मिलेगा।

मौसम आधारित फसल बीमा योजना

मौसम आधारित फसल बीमा योजना (WBCIS) का लक्ष्य प्रतिकूल मौसमी पैरामीटर जैसे कम वर्षा, तापमान, आद्रता, ठंड, इत्यादि की वजह से संभावित फसल में नुकसान से वित्तीय हानि द्वारा उत्पन्न मुश्किलों को कम करना है। सभी किसान जिसमें वे

WWW.GRADESETTER.COM